महादेवी वर्मा साहित्यः वाद-विवाद-संवाद

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की हिन्दी विषय में डी. फिल की उपाधि के लिए प्रस्तुत)

शोध प्रबन्ध
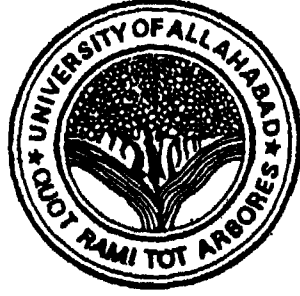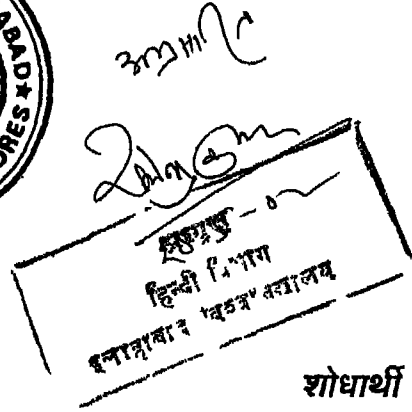
शोध निर्देशक

प्रो० मालती तिवारी

प्रोफेसर एव पूर्व अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

शोधार्थी

शालिनी त्रिपाठी

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

मई, २००२

अनुक्रमणिका

भूमिका

भूमिका

'महादेवी वर्मा साहित्य वाद-विवाद-सवाद' यह विषय डी0एस0ए0 के अन्तर्गत मेरे लिए चुना गया, जो मेरी रुचि के भी सर्वथा उपयुक्त था। प्रारम्भ में छायावाद मे वृहत्त्रयी की ही कल्पना की गई है, जिसमें जयशकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और सुमित्रानन्दन पन्त रहे हैं। महादेवी वर्मा इस काव्यान्दोलन से सबसे अन्त में जुड़ती हैं और चतुष्टयी की कल्पना को साकार करती हैं। हमे एक विचित्र विरोधाभास छायावादी कवियों के मध्य मिलता है कि जहाँ प्रारम्भिक तीनो कवि आलोचना के घेरे में रहते हुए अपने काव्य को प्रतिष्ठा दिलवाने में समर्थ हो जाते हैं, वही महादेवी के काव्य को आज भी वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती जिसकी वे सहज अधिकारिणी हैं। आखिर महादेवी को साहित्य-जगत में वह केन्द्रीयता क्यों नही प्राप्त होती जो अन्य कवियो को समय-समय पर मिलती रही। महादेवी के काव्य की जब भी चर्चा की जाती है तो निरन्तर प्रचलन मे रहने वाली कुछ कविताओं का नाम लेकर यह बता दिया जाता है कि यही महादेवी का काव्य है। यह विडम्बना ही है कि महादेवी के काव्य को लेकर की जा रही आलोचना को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे महादेवी को हाशिए पर कर दिया गया हो। लेकिन आज 'वाद-विवाद-सवाद' के द्वारा छायावाद के सभी प्रमुख कवियों पर एक नये दृष्टिकोण से विचार किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत 'महादेवी साहित्य वाद-विवाद-सवाद', जो मेरे शोध प्रबन्ध का विषय है, के सम्बन्ध में तत्कालीन पत्रपत्रिकाओ में इतने विवाद उठाए गए हैं कि यह विषय अपने-आप ही सार्थक हो उठा है और इसके लिए साठ-सत्तर साल पहले की पत्रिकाओं को टटोलना अपने-आप में एक खास अनुभव रहा है।

चूँकि छायावाद एक काव्यान्दोलन के रूप में प्रतिष्ठित होता है, इसलिए जब भी छायावाद की बात होती है तो वह इन कवियों के काव्य तक ही वह सिमट कर रह जाती है, जबकि इन सभी कवियो का गद्य-साहित्य इनके काव्य से किसी भी स्तर मे कम नहीं है। महादेवी वर्मा भी सृजनात्मकता के विविध आयामों को चुनती हैं और उत्कृष्ट कोटि के साहित्य का सृजन करती हैं। यद्यपि उनका साहित्य परिमाण में कम है, लेकिन गुणो की दृष्टि से वह परिमाण मे कम होते हुए भी महत्वपूर्ण बन गया है। महादेवी के समय मे उनकी आलोचना ऐसे वर्ग के द्वारा की जा रही थी, जो महादेवी को भी जानता था और उनके साहित्य को भी। लेकिन आज हमारे सामने सिर्फ उनका साहित्य है तथा तत्कालीन और वर्तमान आलोचको की प्रतिक्रिया है। इसी को आधार बनाकर मैंने महादेवी के समग्र साहित्य का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। उनके

साहित्य के सम्बन्ध मे तत्कालीन पत्रपत्रिकाओ मे जो विवाद उठाए गए हैं, जहाँ तक सम्भव हो सका, उन्हें इस शोध-प्रबन्ध में विवेचित करने का भी प्रयास किया है।

मैंने इस शोध-प्रबन्ध को छह अध्यायों में बाटा है। प्रथम अध्याय 'महादेवी की मानसिक सरचना परिवेश और परिस्थितियाँ' के अन्तर्गत महादेवी की मनोरचना को निर्मित करने वाले तत्वो का विवेचन किया है क्योंकि प्रत्येक रचनाकार अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश और परिस्थितियों से प्रभावित होता है। साथ ही, परिवार और शिक्षा सस्था जैसे सास्थानिक प्रभाव भी रचनाकार का निर्माण करते हैं। समाज मे नारी की विषम स्थिति भी महादेवी को आन्दोलित करती है और इन सबके साथ उनके व्यक्तित्व निर्माण में वेद, उपनिषद, बुद्ध, मीरा और महात्मा गाँधी का तो पर्याप्त प्रभाव पड़ा ही, साथ ही उनके समकालीन रचनाकारों ने भी उन्हें कम प्रभावित नही किया है। इस प्रकार प्रथम अध्याय में महादेवी पर पडने वाले बाह्य दबाव और अन्तर्दबावो का उल्लेख करके महादेवी की मानसिक स्थिति को समझने का प्रयास किया है, जिस कारण वे साहित्यक्षेत्र की ओर उन्मुख होती है।

द्वितीय अध्याय 'छायावाद वाद-विवाद-सवाद' में छायावाद के जन्म के समय की राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता को छोड़कर अचानक छायावाद जैसे काव्यान्दोलन के जन्म के कारणो का विवेचन द्वितीय अध्याय की विषयवस्तु है। साथ ही छायावाद अपने जन्म से ही विवादो से घिरा रहा है। इसके नामकरण, प्रवर्तक कवि और इसकी विषयवस्तु को लेकर आलोचक वर्ग और समर्थक वर्ग के मध्य हुए विवाद-सवाद के माध्यम से छायावाद को समझने की कोशिश की गई है।

तृतीय अध्याय 'महादेवी के काव्य का विश्लेषणात्मक परिचय' में महादेवी का काव्य क्षेत्र में आगमन और उनकी सभी काव्य कृतियों- 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'साध्यगीत', 'दीपशिखा', 'बगदर्शन', 'सप्तपर्णा' और 'हिमालय' की विषयवस्तु का विवेचन किया है और इस विवेचन के द्वारा महादेवी की काव्यगत प्रवृत्तियो का अध्ययन करना आसान हो गया है, जो मेरे शोध प्रबन्ध का चतुर्थ अध्याय है।

चतुर्थ अध्याय 'महादेवी के काव्य में अनुभूति एव अभिव्यक्ति पक्ष' के अन्तर्गत काव्य में विद्यमान अनुभूतिगत एव अभिव्यक्तिगत विशेषताओं का विवेचन किया है। अनुभूतिगत विशेषताओं के अन्तर्गत मुख्य रूप से वेदना, करुणा, रहस्य और प्रकृति की विशेषताओ का विवेचन तथा इनके सम्बन्ध में आलोचको की क्रिया-प्रतिक्रिया पर विचार किया गया है और गेयतत्व, भाषा, बिम्ब और प्रतीक, जो महादेवी के काव्य की अभिव्यजना शिल्प और उसकी समृद्धि के लिए प्रमुख कारक तत्व के रूप में प्रयुक्त हुए हैं उनके विषय

में गम्भीरता से जाच-पड़ताल करने की चेष्टा की है क्योकि ये तत्व जहाँ एक ओर छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप मे मान्य थे वहीं दूसरी ओर महादेवी की भावाभिव्यक्ति को भी पूर्णता प्रदान कर रहे थे किन्तु महादेवी काव्य के आलोचको ने स्थान-स्थान पर इस विषय को लेकर भी विवाद की स्थिति को बनाए रखा। इन समस्त विशेषताओ को चतुर्थ अध्याय में समाहित किया गया है।

पचम अध्याय 'महादेवी का गद्य साहित्य अन्तर्वस्तु, भाषा और शिल्प-स्वरूप और विश्लेषण' मे महादेवी के समस्त गद्य साहित्य को विवेचन के लिए चुना गया है। काव्यक्षेत्र से सर्वथा विपरीत गद्य क्षेत्र की ओर महादेवी का आ जाना और काव्य तथा गद्य की विषयवस्तु में जमीन-आसमान का अन्तर होना, जो उनके साहित्य का अध्ययन करने वाले प्रत्येक पाठक को चमत्कृत करता रहा है, का विवेचन और इस विवेचन में उनके काव्य और गद्य के मध्य कुछ समान तत्वो को ढूँढ़ने की कोशिश की है। साथ ही उनके रेखाचित्र, सस्मरण को लेकर तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ मे आलोचकों द्वारा उठाये गए विधा के प्रश्न को हल करने का प्रयास महादेवी के कथन के आधार पर उन्हे समझने और उन पर विचार करने की चेष्टा की है। इन सस्मरणात्मक रेखाचित्रो की अन्तर्वस्तु का आलोचनात्मक विश्लेषण भी पचम अध्याय की विषयवस्तु है। इसके अतिरिक्त महादेवी के निबन्ध साहित्य के अन्तर्गत 'शृखला की कड़ियाँ', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' और क्षणदा जैसी कृतियो का विवेचन किया है। कुछ विद्वानों के मतानुसार महादेवी की दो अन्य गद्य रचनाएँ- 'पथ के साथी' और 'मेरा परिवार', जो हिन्दी साहित्य में अपने ढग की अकेली रचना है, को भी अध्ययन का आधार बनाया गया है। इसके साथ ही इन गद्य रचनाओ की भाषा और शिल्प का भी विवेचन है। इसके अतिरिक्त महादेवी के गद्य साहित्य को लेकर भी तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उठाए गए विवाद और उनके माध्यम से महादेवी के गद्य साहित्य के सम्बन्ध मे कुछ प्रश्नो को उठाया गया है।

इस शोध प्रबन्ध का अतिम अध्याय 'उपसहार' अथवा 'निष्कर्ष' के रूप में है। इसमे महादेवी के काव्य साहित्य और गद्य साहित्य मे विद्यमान अतर्विरोधों के साथ उनके साहित्य को समझने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

बड़ों का शुभआशीर्वाद और गुरुजनों का समुचित मार्गदर्शन पाकर इस शोधप्रबन्ध को पूर्ण करते हुए मैं प्रसन्नता और सन्तोष का अनुभव कर रही हूँ। बचपन से ही मेरी माँ श्रीमती लक्ष्मी तिवारी और पिता श्री बाल मुकुन्द तिवारी द्वारा उच्च अध्ययन के लिए प्रेरित और निरन्तर प्रोत्साहित किया जाना ही इस शोधप्रबन्ध की रचना का आधार बना। मेरी माँ और पिता दोनों ने प्रारम्भ से ही मुझे अपनी रुचि के अनुसार विकास करने के समस्त अवसर प्रदान किये, साथ ही इनके प्यार और प्रोत्साहन की तो मैं सहज अधिकारिणी थी। इसीलिए आज इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में वस्तुत. माता-पिता के द्वारा किया गया

श्रम ही सार्थक हुआ है। इसके साथ ही मेरी निर्देशिका प्रो0 मालती तिवारी, जिनके सम्पर्क मे मैं एम0ए0 के दौरान आई और जिनके व्यक्तित्व से मैं तभी से प्रभावित रही हूँ, के निर्देशन मे शोध-कार्य करते हुए विषय से सम्बन्धित ज्ञान और दृष्टि तो पाई ही, साथ उनके साथ बिताये हुए क्षणो मे उनके व्यक्तित्व के कई अन्य पहलुओ से भी मेरा परिचय हुआ, जिससे मुझे उनके साथ अब सम्बन्धों की मजबूत डोर से बाँध दिया है। उनके सहज, स्नेहिल और आत्मीयतापूर्ण व्यवहार ने ही मुझे प्रेरित किया जिसके कारण मैं उनके साथ विषय से सम्बन्धित जिज्ञासाओं के समाधान के साथ ही साथ इतर विषयो पर भी बातचीत करने में समर्थ हो सकी। उनके द्वारा दिये गए समुचित मार्गदर्शन और दृष्टि के कारण ही आज यह शोध प्रबन्ध इस रूप मे सम्पूर्ण हो सका।

इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने मे मेरी सास श्रीमती कश्मीरा शुक्ला और श्वसुर श्री भवानी शकर शुक्ल, जिनके सरक्षकत्व मे मैं एक वर्ष पूर्व आई, के द्वारा दिया गया प्रोत्साहन एव सहयोग मेरे लिए आजीवन अविस्मरणीय रहेगा। मेरी सास और श्वसुर दोनों ने ही मुझे यहाँ पर वैसा ही परिवेश और वातावरण प्रदान किया जैसा कि मुझे अपने पिता के घर मे प्राप्त था। यही कारण है कि यह शोध-प्रबन्ध समय से पूरा हो सका। मेरे लिए इस शोधप्रबन्ध को पूरा करना माता-पिता और सास-श्वसुर के सपने को पूरा करने जैसा है। मैं अपने श्वसुर के बडे भाई श्री श्रीलाल शुक्ल, जिनके कृतित्व से मैं पहले से ही प्रभावित थी और जिनके व्यक्तित्व से विवाह के पश्चात परिचय हुआ, के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने विवाह के तुरन्त बाद मुझसे इस शोध कार्य को शीघ्रता से समाप्त करने को कहा था। इसके साथ ही मैं विषय सामग्री एकत्रित करने मे मदद करने के लिए इलाहाबाद सग्रहालय के डॉ रजन शुक्ल के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। मैं अपने चाचा श्री ओमशकर तिवारी एव चाची श्रीमती अरुण तिवारी के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होने इलाहाबाद प्रवास के दौरान मेरी छोटी से छोटी आवश्यकताओ को पूरा करने मे सदैव तत्पर रहे। इसके साथ ही मैं अपने भाईयों—श्री मनोज, श्री नवीन एव डा0 प्रवीण—जो हमेशा से ही मेरी समस्त समस्याओ को ध्यानपूर्वक सुनकर उसे सुलझाने का प्रयत्न करते रहे और गम्भीरता के क्षणों को भी अपने मधुर स्वभाव के कारण सरस बनाए रखा, लेकिन इन तीनों से मैंने जो पाया, उसे मैं अपना अधिकार मानती हूँ।

मैं अपने विभाग के समस्त गुरुजनो के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिनके अध्यापन द्वारा ही मेरे अध्ययन को समुचित दिशा प्राप्त हुई। मैं आज अपनी पूर्व निर्देशिका स्वर्गीया श्रीमती मालती सिह के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे लिए इस विषय को चुना और मुझे प्रारम्भिक दिशा निर्देश दिए। इसके साथ ही उन समस्त विद्वानों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिनकी पुस्तकों का मैंने अध्ययन किया। मै विश्वविद्यालय प्रशासन के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होने मुझे छात्रावास मे रहने की अनुमति प्रदान की।

इस शोध प्रबन्ध के लिए विषय सामग्री उपलब्ध करवाने मे मेरी हर सभव सहायता करने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद और राष्ट्रीय सग्रहालय, इलाहाबाद के समस्त कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ। इसके साथ ही इस शोध प्रबन्ध के टकण के लिए मै इमेज के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होने कम समय मे इसे पूरा किया।

अन्त मे, अपने जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति मेरे पति श्री इन्दीवर शुक्ल, जो दुविधा के क्षणो में मुझे मानसिक सबल प्रदान करते रहे और विषय क्षेत्र भिन्न होने के बावजूद मेरे शोधकार्य के प्रति निरन्तर अपनी रुचि प्रदर्शित करते रहे। इसके साथ ही मुझे सभी प्रकार की उलझनों अथवा समस्याओ से दूर रखकर इस शोधकार्य को पूरा करने के समस्त अवसर एवम् सुविधाएँ मनोयोगपूर्वक दी, इसके लिए मैं स्वय को सौभाग्यशालिनी मानती हूँ और मैं इनसे हमेशा ऐसे ही सहयोग की आकाक्षा करती हूँ।

शालिनी त्रिपाठी

शालिनी त्रिपाठी

* * *

अध्याय प्रथम

महादेवी की मानसिक संरचना : परिवेश और परिस्थितियाँ

•

1 राजनीतिक परिवेश

1 1 अठाहरवीं सदी का भारत

1 2 राष्ट्रीय आन्दोलन और महात्मा गाँधी

2. सामाजिक परिस्थिति

2 1 समाज मे नारी की स्थितिङ्क

2 2 परिवार, शिक्षा सास्थानिक प्रभाव

2 3 नारी की विषय स्थिति और महादेवी

2 4 महादेवी के व्यक्तित्व के निर्माण के प्रभावी कारक : महात्मा बुद्ध, महात्मा गाँधी और मीरा

3. साहित्यिक वातावरण

3 1 युगीन साहित्यिक परिवेश

3 2. समकालीन रचनाकारो का प्रभाव

3 3 महादेवी का स्थान

समाज की गहरी चिन्ता ही वह मूल कारण है, जिसके द्वारा कोई महान् रचना आकार ग्रहण करती है क्योंकि साहित्यकार पर अपने चारों ओर विद्यमान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश का तो प्रभाव पड़ता ही है, साथ ही अन्तर्मन के दबाव और आन्तरिक अनुभव भी उसे इस प्रकार उद्वेलित करते हैं कि वह साहित्य-सृजन के लिए व्याकुल हो उठता है। निश्चय ही, महादेवी की मानसिक सरचना का निर्माण करने मे इन दोनो तत्वो की महत्वपूर्ण भूमिका रही। महादेवी वर्मा जिस समय में जन्म लेती हैं, उस समय भारतीय समाज मे निराशा के बादल छाए थे। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद, अग्रेजों ने भारतीयो को कुछ सुविधाएँ देने के स्थान पर अपना दमन चक्र और भी तेज कर दिया। जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप भारतीयों ने सगठित होकर अग्रेजों को देश से बाहर निकालने का सकल्प लिया हैं। इस निर्णय मे सभी वर्गों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। स्त्रियो ने भी पहली बार घर के प्रागण को छोड़कर बाहर की गतिविधियो में सक्रिय रूप से भाग लिया। ऐसे परिवेश का प्रभाव बालिका महादेवी पर पड़ना स्वाभाविक था। साथ ही महात्मा बुद्ध तथा महात्मा गाँधी की विचारधारा की भी उनके जीवनदर्शन पर गहरी छाप थी। इसीलिए महादेवी के समग्र साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व उस परिवेश से परिचित होना आवश्यक है,जो बालिका महादेवी को **लेखिका कवयित्री** महादेवी के रूप में परिवर्तित करता है, जिसमे उनकी मनोस्थित आकार ग्रहण करती है, जो उन्हे निरन्तर सृजनात्मकता की ओर प्रेरित किए रहता है। सर्वप्रथम राजनीतिक परिवेश फिर सामाजिक परिस्थितियाँ और तत्पश्चात तत्कालीन साहित्यिक परिवेश का सक्षिप्त अध्ययन इस प्रकार है—

राजनीतिक परिवेश

अठाहरवीं शताब्दी में भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही भारतीय समाज और सस्कृति का अधोपतन तीव्रगति से होना प्रारम्भ हो गया था। ब्रिटिश शासक भारतीय जनमानस को यह विश्वास दिलाने में सफल रहे कि भारतीय अपने देश की शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने में सक्षम नहीं है, अत उन पर अग्रेजो द्वारा शासन किया जाना उचित है। परतन्त्रता की बेड़ियो मे जकड़े हुए जनमानस को उच्चशिक्षा प्राप्त भारतीयों ने उम्मीद की किरण अवश्य दिखाई। उन्होने अपने लोगों का जीवनस्तर ऊँचा उठाने के लिए आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्णमिशन जैसी सस्थाओं की स्थापना की। इन सस्थाओं के माध्यम से जातिप्रथा, सतीप्रथा, छुआछूत, अस्पृश्यता की भावना, अधविश्वास और किसी भी प्रकार के नये परिवर्तन से अविचलित रहने वाले भारतीय समाज में सुधार भी हुए। निश्चय ही, इन सुधारों

के परिणामस्वरूप उन्नीसवीं शती के भारत में जबर्दस्त बौद्धिक और सास्कृतिक उथलपुथल मची हुई थी। विदेशी शासन का अस्तित्व ही जनता के मध्य एकता का कारण बन गया क्योकि उन्होंने अनुभव किया कि विदेशी शासक जाति, वर्ग, वर्ण, धर्म आदि का भेदभाव किए बिना सभी को समानरूप से प्रताड़ित कर रहा है। इसी भावना ने भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जनता ने अपनी कमजोरियों तथा अपनी शक्ति को पहचाना और सगठित होकर विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने का सकल्प लिया। इन भावनाओ की कार्यरूप मे सफल अभिव्यक्ति भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के माध्यम से हुई। राजनीतिक चेतना से समन्वित इसके नेताओ ने भारतीयो को क्षेत्र, जाति, वर्ग, वर्ण, धर्म के भेदभावो से ऊपर उठाकर राष्ट्रीय चेतना का वाहक बनाने में सफल रहे।

भारतीयो के मध्य विद्यमान एकता को कमजोर बनाने के लिए ब्रिटिश शासकों ने बगाल का विभाजन जातिगत आधार पर कर दिया, जिसकी तीव्र प्रतिक्रिया सम्पूर्ण देश मे हुई और एक स्वत स्फूर्त आन्दोलन का जन्म हुआ, जिसमें समाज के सभी वर्गो की व्यापक भागीदारी रही। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप सदियो से गुलामी की नींद मे सोई हुई भारतीय जनता जाग गई और इस जाग्रत जनता के नेतृत्व की बागडोर सभालने के लिए राजनीति में गाँधीजी का प्रवेश हुआ। गाँधीजी असहयोग और सत्याग्रह जैसे मौलिक सिद्धान्तो के प्रयोग द्वारा दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद के विरुद्ध लडाई जीत चुके थे। समाज के निम्न वर्ग के साथ उनकी गहरी सहानुभूति थी और उनकी समस्याओ का भी उन्हे ज्ञान था, अत शीघ्र ही उन्होने कृषक वर्ग तथा निम्नजातियों को अपने आन्दोलन का अग बनाकर उसे अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया। गाँधीजी विचार और कर्म में समानता रखते थे, इसलिए जैसे विचार वे अपने लेखो और भाषणों में व्यक्त करते थे वैसा ही आचरण भी करते थे। इसी समय ब्रिटिश शासकों ने भारतीयों के विरोध के बावजूद रौलट एक्ट पारित कर दिया। जिसके विरोध मे गाँधीजी के आह्वान पर एकत्रित जनसमुदाय पर अग्रेजशासकों ने निर्ममतापूर्वक गोलियाँ चलाई, जिससे क्षुब्ध होकर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी 'नाइट' की उपाधि वापस कर दी और कहा कि 'वह समय आ गया है, जब सम्मान के प्रतीक अपमान अपने बेमेल सन्दर्भ में हमारी शर्म को उजागर करते हैं और मैं, जहाँ तक मेरा सवाल है, सभी विशिष्ट उपाधियो से रहित होकर अपने उन देशवासियों के साथ खड़े होना चाहता हूँ जो अपनी तथाकथित क्षुद्रता के कारण मानवजीवन के अयोग्य अपमान को सहने के लिए बाध्य हो सकते हैं।'[1] अग्रेजों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों की भरपाई के लिए तथा स्वराज्य की स्थापना के लिए गाँधीजी ने सरकार से असहयोग आरम्भ कर दिया तथा जनता से आग्रह किया गया कि वे सरकारी स्कूल, कॉलेज, अदालतों और यहाँ तक कि विधानमण्डल तक का बहिष्कार करे, विदेशी वस्त्रों का त्याग करें, सरकार द्वारा दी गई उपाधियो को वापस कर दे तथा सूत कातकर तथा खादी बुनकर खादी

के वस्त्रो को धारण करे। इस आन्दोलन के माध्यम से भारतीय जनता को राजनीतिक स्वाधीनता भले ही प्राप्त नही हुई, लेकिन उन्होंने गुलामी की मनोवृत्ति का सर्वथा परित्याग कर दिया। उन दिनो सम्पूर्ण भारत में अद्भुत उल्लास और उत्साह छाया हुआ था। हजारों विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल, कॉलेजों का त्याग करके राष्ट्रीय स्कूलो में प्रवेश ले लिया था, वकीलो ने वकालत छोड़ दी थी, खादी स्वतन्त्रता का प्रतीक बन गई और 'तिलक स्वराज फड' में महिलाओं ने दिल खोलकर गहने और जेवर दिए थे। सरकार ने दमन का आश्रय लेकर आन्दोलन को दबा दिया तथा गाँधीजी को जनता के मध्य सरकार के खिलाफ असतोष फैलाने के कारण छ वर्ष की कठोर सजा दी गई।

सामाजिक परिवेश

परम्परागत दृष्टि से स्त्री को भारतीय समाज में माँ और पत्नी के रूप मे अत्यन्त सम्मानीय स्थान प्राप्त था, लेकिन व्यक्तिगत रूप में उसकी सर्वथा उपेक्षा की गई है। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे मानवतावादी और समानतावादी विचारों से प्रेरित होकर समाजसुधारको ने स्त्रियों की दशा सुधारने तथा उनमे शिक्षा का प्रसार करने के लिए अनेक प्रयत्न किए और 1890 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रथम महिला स्नातक कादम्बिनी गागुली द्वारा काग्रेस के अधिवेशन को सम्बोधित किया जाना इस बात का प्रतीक माना गया कि स्वाधीनता सग्राम सदियो से दबी-सहमी माने जाने वाली नारी जाति को भी उनकी हीन दशा से उबारेगा। स्वतन्त्रता आन्दोलन स्त्रियों को घर की चहारदीवारी में कैद न रख सका और उन्होने भी बाहर निकल कर हडताल, जुलूस मे बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया। शराब बेचने वाली दुकानों पर भी धरना दिया। खादी का प्रचार किया, यहाँ तक कि जेल जाने से भी वे पीछे नहीं रहीं। निश्चय ही, मध्यकाल से पराधीन नारी की यह एक बिल्कुल नई भूमिका थी, जिसका उसने सफलतापूर्वक निर्वहन किया।

राजनीतिक दृष्टि से अधकारमय और उहापोह से भरे वातावरण मे महादेवी वर्मा का जन्म हुआ। यद्यपि तत्कालीन समाज मे कन्यारत्न की प्राप्ति खुशी का विषय तो नहीं था, पर महादेवी के परिवार में पिछली सात पीढ़ी से लड़की का जन्म न होने के कारण स्थिति भिन्न थी। शिक्षित और सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के कारण उनके माता-पिता ने बचपन से ही महादेवी को अपनी रूचियो का पूर्ण विकास करने का अवसर प्रदान किया। आर्य समाजी सस्कारों के साथ उन्हें मिशन स्कूल में भरती करवा दिया गया और घर पर भी हिन्दी, उर्दू, सगीत और चित्रकला की शिक्षा देने के लिए शिक्षक की नियुक्ति की गई। महादेवी जी ने लिखा है—'तीन वर्ष की अवस्था में मा के साथ मैं इन्दौर चली गई। इस प्रकार मेरा सस्कार तथा रुचियाँ बनने का समय मध्य प्रदेश में व्यतीत हुआ, जहाँ पशु-पक्षी, पेड़-पौधे ही हमारे सगी रहे। सेवक मिला रामा, जो हमारी

जिज्ञासाओ के अद्भुत समाधान प्रस्तुत कर देता था। माँ के गृहकार्य तथा पूजा-पाठ की मैं ही एकान्त सगिनी थी। अत 'जागिए कृपानिधान पछी बन बोले' जैसे प्रभाती पद मैं भी गुनगुनाने लगी थी।'[2] अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा असाधारण प्रतिभा के कारण पूजा, आरती के समय माँ द्वारा गाये गए मीरा, तुलसी आदि के पद उन्हें भी सहज ही मे कठस्थ हो गए और इसी समय से उनके मन में काव्य रचना के बीज भी अकुरित हो गए जो आगे चलकर साधना की समुचित खाद पाकर पुष्पित-पल्लवित होकर काव्य के विशाल वृक्ष में रूपान्तरित हो गए। महादेवी स्वीकार करती हैं कि— 'बाबा के उर्दू-फारसी के अबूझ कोहरे में मैंने केवल माँ की प्रभाती और लोरी को ही समझा और उसी में काव्य की प्रेरणा को पाया।[3] इसी समय सरस्वती पत्रिका के परिचय द्वारा बोलचाल की भाषा में कविता लिखने की सुविधा ने उन्हे अपनी ओर आकृष्ट किया और उन्होंने समस्यापूर्तियो को माध्यम के रूप मे चुना। पढाई-लिखाई मे पिता का सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण और घर के कार्यो मे माता का कुशल निर्देशन—इन दोनों ने मिलकर महादेवी के व्यक्तित्व के विकास के लिए सुदृढ नीव प्रदान की। उनके व्यक्तित्व मे अपने माता-पिता के विपरीत स्वभाव की विशेषताओ का सहज सम्मिलन था। एक ओर उनमे यदि माँ की आस्तिक प्रवृत्ति विद्यमान थी, तो वही दूसरी ओर वे पिता के समान पढ़ने-लिखने तथा घूमने-फिरने की भी शौकीन थी। महादेवी जी ने इस प्रवृत्ति का स्पष्ट उल्लेख किया है—'एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव सस्कारो के बोझ से जड़ीभूत वर्ग मे मुझे जन्म मिला है, परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने सस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया, उसमे भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय किसी वर्ग या सम्प्रदाय में बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी।'[4] महादेवी के परिवार में बाबा फारसी और उर्दू के ज्ञाता थे। पिता ने अग्रेजी साहित्य में एम ए किया था। उनके परिवार मे हिन्दी का कोई वातावरण नही था। ऐसे मे महादेवी ने हिन्दी भाषा को अपने अध्ययन के लिए माध्यम के रूप में चुना और उस युग में जब लड़कियों की शिक्षा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था, महादेवी ने इलाहाबाद जाकर पढ़ने का आग्रह किया। परिवार में हुए थोड़े से विरोध के बाद उनका यह आग्रह स्वीकार कर लिया गया और उन्होंने 1919 में स्कूली शिक्षा के लिए इलाहाबाद के क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में प्रवेश लिया और यहीं पर उनके विचार दर्शन को ठोस और व्यापक आधार मिला। वे लिखती हैं कि— "आप कल्पना कीजिए कि समाज से सघर्ष, परिवार से सघर्ष और एक प्रकार की सारी व्यवस्था से सघर्ष—उसके बीच में पढ़ना है, उसके बीच मे लिखना है, लेकिन प्रयाग मे आकर मुझको कुछ मुक्त वातावरण मिला।"[5] घर के प्यार भरे वातावरण को छोड़कर जब वे विद्यालय के विशाल प्रागण में आई, तब तक देश में राष्ट्रीय चेतना हर वर्ग में व्याप्त हो चुकी थी, सामाजिक जागृति ने

जैसे लोगों को सदियों से सोई हुई नींद से जगा दिया था और उत्तर भारत राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बना हुआ था। ऐसे माहौल से महादेवीजी का अप्रभावित रहना कठिन ही था अत उन्होंने देशभक्ति को जागृत करने वाली कुछ कविताओं की रचना की। 'आधुनिक कवि' में वे स्वीकार करती हैं कि— "जब मैं अपनी विचित्र कृतियों तथा तूलिका और रगो को छोड़कर विधिवत् अध्ययन के लिए बाहर आई, तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणे फैलने लगी थी, अत उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृगारमयी अनुरागमयी भारतजननी भारतमाता,' 'तेरी उतारूँ आरती माँ भारती,' आदि जिन रचनाओं की सृष्टि की थी, वे विद्यालय के वातावरण मे ही खो जाने के लिए लिखी गई थी। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरी कविता का शैशव भी समाप्त हो गया।" [6]

सन् 1932 मे विद्याध्ययन को समाप्त करने के पश्चात् जब महादेवी के प्यार-दुलार मे पले युवा और सुकुमारमन ने अपना कार्य क्षेत्र सुनिश्चित करने के लिए ससार की ओर दृष्टि डाली तो वहाँ चारों ओर व्याप्त सामाजिक असमानता और विषमाताओं ने उन्हे घोर निराशा से भर दिया। अज्ञानता का अन्धकार वातावरण को चारो ओर से व्याप्त किए था। अग्रेजो द्वारा भारतीय जनमानस पर किए जा रहे अत्याचार असहनीय होते जा रहे थे। गाँधीजी द्वारा शुरू किए गये असहयोग आन्दोलन की धार भी मन्द पड़ गई थी। समाजवाद तथा मार्क्सवाद जैसी नई वैचारिक शक्तियो का उद्भव हो रहा था। छात्रों के भी अनेक अखिल भारतीय सम्मेलन हो रहे थे। भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरु जैसे क्रान्तिकारियो के आन्दोलन भी जनता की निगाहों मे चढे हुए थे। इसी समय गाँधीजी ने 1930 मे दूसरा नागरिक अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया। उन्होने प्रसिद्ध दाडी मार्च के माध्यम से नमक कानून तोड़ा जो इस बात का प्रतीक था कि अब भारतीय जनता स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सकल्पबद्ध है। वह किसी भी प्रकार से ब्रिटिश शासन के अतर्गत रहने को तैयार नही है। इस आन्दोलन के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश मे जनता ने और विशेषकर स्त्रियो ने हड़तालो, प्रदर्शनों, जुलूसों के माध्यम से अपने नेताओं का साथ दिया-बड़ी सख्या में भारतीयो ने सत्याग्रह किया और कर तथा मालगुजारी देने से भी इन्कार कर दिया। अब सम्पूर्ण भारतीय जनता का एकमात्र लक्ष्य विदेशी शासन को उखाड़ फेंकना था।

लेकिन नारियों का इस नये रूप में अवतार होने पर भी महादेवी ने अनुभव किया कि यद्यपि नारी जाति स्वाधीनता सग्राम में भाग लेने के लिए घर के सुरक्षित घेरे को तोड़कर बाहर आ गई है लेकिन अभी भी असख्य नारियाँ पुरुष समाज की अज्ञानता का शिकार होकर अपने ही घर में शृखला की कड़ियों मे जकड़ी हुई हैं। एक ओर राजनीतिक पराधीनता तथा दूसरी ओर घर मे नारियों की पुरुषों पर परवशता के कारण महादेवी ने निश्चय किया कि अब समय आ गया है कि नारियाँ पुरुषों से अलग अपने अस्तित्व को पहचाने

और अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को जागृत करके मनुष्यत्व के विकास की ओर अग्रसर हों। महादेवी ने स्वय को कुठाओं, कुरीतियो की बेड़ियों से मुक्ति के लिए सघर्षशील नारी समाज का प्रतिनिधि माना। समाज में विद्यमान उपेक्षिता, निराश्रिता, असहाय विधवाओ, बाल विवाह तथा बेमेल विवाह के दुष्चक्र में फसी, सामाजिक बधनो मे जकड़ी तथा पुरुष-प्रधान समाज द्वारा निरन्तर अपमान का कड़वा घूँट पीने वाली नारी की दयनीय दशा को देखकर महादेवी का सवेदनशील मन आन्दोलित हो उठा। महादेवी वर्मा सामाजिक शोषण, दैन्य,स्वार्थ और अभिशाप से सघर्ष करने के लिए स्वय अतिम क्षण तक तिल-तिल कर जलती हुई 'दीपशिखा' बन गई। हमारे मातृशक्ति उपासना प्रधान देश और मैत्रेयी, गार्गी की परम्परा वाले समाज मे तिरस्कृत नारी का माँ, बहन, पुत्री, पत्नी किसी भी रूप में स्वतन्त्र और निजी अस्तित्व नही रहा। कभी वह पिता पर आश्रित रही, तो कभी भाई पर। कभी पति ने उसको आश्रय प्रदान किया तो कभी वह पुत्र के आधीन रही। ऐसी विषम और सघर्षपूर्ण परिस्थितियों ने महादेवी को समय की आवश्यकता पहचान कर अपना कर्त्तव्यपथ सुनिश्चित करने को प्रेरित किया और समाज मे व्याप्त दीर्घकालीन जड़ता की स्थिति को समाप्त करने के लिए महादेवी ने कलम को माध्यम बनाया। इस प्रकार प्रताड़ित नारी की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा का शखनाद करने वाली महादेवी उन सभी के लिए प्रेरणास्त्रोत बन गयी, जिन्होंने खड़े होने का सकल्प लिया। महादेवी ने नारी का आह्वान करते हुए कहा—"आपसे इतना तो कहना चाहती हूँ कि भारत का भविष्य आपके हाथ में है। लड़कों के हाथ में नही है। हमारे यहाँ लडकी जन्म लेते ही पराई हो जाती है। सब कहते हैं कि अरे लड़की हो गई। लड़की तो पराये घर का धन है। यानि वह धन है, सम्पत्ति है,सामान है, जीवित व्यक्ति नहीं है, तो आप सामान बनने से इन्कार कर दीजिए।"[7]

निश्चय ही,महादेवी की इस भूमिका के पीछे व्यक्तिगत सुख, सामाजिक प्रशसा अथवा बड़े पद की लालसा की भावना काम नही कर रही थी, वरन् मात्र मानव कल्याण की भावना तथा स्त्री-जाति की सर्वांगीण उन्नति की भावना काम कर रही थी। इसके लिए सर्वप्रथम महादेवी ने अल्पआयु मे हुए अपने विवाह को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया। रामधारी सिंह दिनकर के साथ हुए सहज वार्तालाप में उन्होंने गृहस्थ जीवन के प्रति अपनी विरक्ति का उल्लेख किया है—'मैंने उनसे कहा कि गृहस्थ-जीवन की ओर मेरी थोड़ी भी प्रवृत्ति नही है, अतएव मैं आपके साथ कभी भी नही रह सकूँगी।'[8] अब महादेवी के दृष्टि क्षेत्र के अन्तर्गत केवल अपना छोटा सा सुखी परिवार नही वरन् कमजोर, दीन-हीन, शोषित, उत्पीड़ित तथा अनेक प्रकार की असगतियो से ग्रस्त सम्पूर्ण मानवजाति समाई हुई थी। इसलिए वे स्वय को अपने छोटे से परिवार में सीमित नही करना चाहती थी। यद्यपि तत्कालीन समाज में एक नारी द्वारा विवाह को अस्वीकार करने को साधारण

दृढ़ निश्चयी स्वभाव के कारण महादेवी कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं हुईं। इसके पश्चात् महादेवी नारी जगत मे व्याप्त अशिक्षा के अधकार को दूर करने के लिए प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनकर अपने विचारो को कार्यरूप में परिणत करने मे लग गईं।

यद्यपि महादेवी को 'महादेवी' बनाने में उपर्युक्त परिस्थितियो का तो योगदान रहा ही लेकिन उनके जीवन दर्शन को महात्मा बुद्ध और महात्मा गाँधी ने सर्वाधिक प्रभावित किया। बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति भक्तिमय अनुराग के कारण अपने छात्रजीवन में महादेवी बौद्ध भिक्षुणी भी बनना चाहती थी और इसके लिए उन्होंने श्रीलका के बौद्ध स्थविर से सम्पर्क भी किया था। बौद्ध स्थविर के नैनीताल प्रवास के दौरान महादेवी उनसे मिली लेकिन उनके द्वारा परदे की ओट में बात करना महादेवी को अपमानजनक लगा और उन्होंने बौद्ध भिक्षुणी बनने का विचार त्याग दिया। वे लिखती हैं कि— "अपने ही विद्रोही स्वभाव के कारण मैं भिक्षुणी नहीं हो सकी, क्योंकि मेरा मन ऐसे साधक से दीक्षा लेने को प्रस्तुत नही हुआ जो स्त्री के मुख-दर्शन तक ही सीमित था। आश्चर्य तो यह है कि युगयुगान्तर से हमारा तप और साधना का क्षेत्र नारी के आतक से आतकित रहता आया है, चाहे वह मानवी हो या अप्सरा।"[9] परन्तु बौद्ध दर्शन से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण उनके काव्य में वेदना का साम्राज्य रहा है।

देश में राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र मे व्याप्त सकट भी महादेवी के मनोमस्तिष्क मे छाये हुए थे, इसलिए उनका महात्मा गाँधी से सम्पर्क हुआ। महात्मा गाँधी के आदर्शों से प्रभावित होना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रयाग महिला विद्यापीठ का कार्य सचालन महात्मा गाँधी के इस निर्देश का ही प्रतिफल था कि 'तू अपनी मातृभाषा से अपनी गरीब बहनों को शिक्षा देने का कार्य करे, तो अच्छा है।[10] महादेवी ने स्पष्टत स्वीकार किया है—"मैंने बहुत से ऐसे निश्चय लिए, जो गाँधी जी के कारण। आज भी जीवन का कोई-कोई कठिन समय आता है तो मुझे उनका निर्देश मिल जाता है। अचानक शरीर के भीतर से अन्तर्ध्वनि आती है, मानो बापू कहते हैं कि 'ये करना है।' मेरे पूरे जीवन को उन्होंने बनाया। वेशभूषा में वे लगोटी लगाते और देखने में ऐसे कि भगवान को भी दया आ जाय। लेकिन कोई चीज थी उनके पास कि देखते ही आदमी कुछ और हो जाता था।"[11] महात्मा बुद्ध और महात्मा गाँधी इन दो महान् व्यक्तियों की जीवन दृष्टि से प्रभावित महादेवी ने साधना का एक नवीन मार्ग ग्रहण किया। बौद्ध दर्शन के प्रभाव से काव्य के क्षेत्र मे अतर्मुखता को सर्वप्रमुख तत्व मानकर निराकार की उपासना की और गाँधी के प्रभाव से गद्य के क्षेत्र में बहिर्मुख होकर मानवसमाज मे व्याप्त असमानताओं और विषमताओं को अपना निशाना बनाया। वे लिखती हैं कि— 'आज मेरा मन उन व्यक्तियों के प्रति प्रणत है, जिन्होंने अपने विश्वास और परम्परा की अवज्ञा कर मुझे ऐसी मुक्ति दी, जिसमे मेरा अतर्बाह्य विकास सहज और स्वाभाविक हो गया।[12]

महादेवी और मीरा दोनो के काव्य में विद्यमान वेदना, विरह की प्रधानता को देखकर अधिकाशत आलोचकों द्वारा महादेवी को मीरा का आधुनिक सस्करण कहे जाने की परम्परा प्रचलित हो गई है। यद्यपि महादेवी मीरा के विचारदर्शन से प्रभावित तो रही हैं लेकिन युगीन परिस्थितियों के दबाव स्वरूप उसमें पर्याप्त अन्तर भी आ गया है। जहाँ मीरा अपने साँवरे कन्हैया को पाने के लिए समस्त सामाजिक मर्यादा के बधनों को तोड़कर वन-वन भटकती रही,वहीं महादेवी अपने निर्गुण, निराकार प्रियतम की आराधना करते हुए भी सामाजिक बधनों को पूर्णतया अस्वीकार न कर सकी। उन्हे समाज के दीन-हीन, दलित, शोषित जन की हीनदशा भी उद्वेलित करती रही, स्त्रियों मे व्याप्त दीर्घकालीन जड़ता की स्थिति को समाप्त करने के लिए वे निरन्तर प्रयत्नशील भी रहीं। युगीन परिस्थितियो के परिणामस्वरूप समाज से पूर्णत निरपेक्ष रहना महादेवी के लिए सम्भव ही नहीं था। मीरा की भावानुभूति हृदय के सच्चे उद्‌गार हैं जबकि महादेवी की भावाभिव्यक्ति को उनकी उच्चशिक्षा और गहन-गम्भीर चिन्तन ने भी प्रभावित किया। महादेवी की विरह वेदना भी मीरा के समान अत्यन्त गहरी है लेकिन गिरिधर गोपाल के प्रति आसक्ति की अपेक्षा उसमें जीवन की क्षणभगुरता के कारण वैराग्य से उद्‌भूत और अमरत्व की खोज भी है। इस क्षणभगुरता के बावजूद जीवन से पलायन नहीं है। महादेवी में विरह और आवेग की छटपटाहट मीरा जैसी है लेकिन वह लोकोन्मुख और बौद्धिक सयम तथा मर्यादा की गभीरता में बधी है। मीरा कभी-कभी अपने प्रियतम को अगम्य मानकर गा उठती है—'सूली ऊपर सेज पिया की, किस विधि मिलना होय' और महादेवी के पथ मे अनेक बाधाओं के होते हुए भी उसमे निराशा के लिए कोई स्थान नहीं है। उनका लक्ष्य स्पष्ट है और इससे भी अधिक सशक्त है— उनका आत्मविश्वास अपराजेय सकल्प और समर्पित भाव —'जाग तुझको दूर जाना।[13] लेकिन महादेवी और मीरा मे समानता भी है जहाँ मीरा को राजघराने की कुलवधू होने के कारण तथा विधवा होने के कारण साधु समाज मे नाचने-गाने, भजन-कीर्तन करने के कारण अनेक प्रकार की कठोर यन्त्रणाओ और अपमान के कड़वे घूँट पीने पड़े वहीं महादेवी को भी स्वेच्छा से वैवाहिक जीवन का अस्वीकार करने के कारण, परम्परा विरुद्ध कार्यो को करने के कारण कट्टरपथियों द्वारा किये जा रहे प्रबल विरोध को सहन करना पड़ा। उपर्युक्त पृष्ठभूमि ने महादेवी की मनोरचना को निर्मित करने में आधारशिला का कार्य किया। यह भी कहा जा सकता है कि समाज में व्याप्त इन्हीं आन्तरिक और बाह्य दबावों ने उन्हें सृजन-क्षेत्र की ओर आकृष्ट किया।

साहित्यिक वातावरण-

इस समय तक हिन्दी साहित्य जगत ने कोमलकात मधुर पदावली से युक्त ब्रजभाषा को छोड़कर 'खरखराहट' वाली खड़ी बोली को अपना बना लिया था और उसे नित नये-नये शब्दों द्वारा, नवीन

अर्थसकेतों द्वारा समृद्ध किया जा रहा था। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता तथा वर्णनात्मक काव्य प्रवृत्तियों के विरोध मे एक नई काव्यधारा बड़े तीव्र वेग से प्रवाहित हो रही थी, जिसका स्वरूप कुछ-कुछ स्पष्ट न होने के कारण उसे 'छायावाद' नाम दिया गया। छायावाद सामाजिक रूढियों के बधन में जकडी हुई तथा पराधीनता के पाश में बधी हुई जनता की भाव-अनुभूतियों की साहित्य में मुखर अभिव्यक्ति है। छायावाद ने काव्य के क्षेत्र में द्विवेदीयुगीन गद्यात्मक प्रणाली का बहिष्कार किया। छन्दो के साँचे में आबद्ध कविता को छायावाद ने मुक्त कर दिया जिससे हृदयगत् भावो की सहज अभिव्यक्ति साहित्य में सभव हो सकी। चूँकि इन भावों को अभिव्यक्त करने में प्रचलित प्रणाली अपर्याप्त थी। अत छायावादी कवियों ने अभिव्यजना के नये रूपो का आश्रय लिया और बिम्ब-विधान, प्रतीक-विधान, लाक्षणिकता, विशेषण-विपर्यय तथा ध्वन्यात्मकता जैसी प्रणाली से अपनी कविता को समृद्ध बनाया। अप्रस्तुत विधायिनी कल्पना के द्वारा छायावादी कवि ने अमूर्त स्थितियों को साकार रूप प्रदान किया तथा प्रस्तुत विषयों को अधिक कलात्मक एव सूक्ष्म रूप में चित्रित किया। इन छायावादी कवियों की भावुकता एव कल्पना का सस्पर्श पाकर जड मानी जाने वाली प्रकृति भी चेतनवत् व्यवहार करने लगी। इस प्रकार छायावाद ने अपनी प्राणशक्ति के बल पर हिन्दी साहित्य जगत मे एक युगान्तर उपस्थित किया।

इन छायावादी प्रवृत्तियों का पूर्ण प्रतिनधित्व करने वाली जयशकर प्रसाद की कविताएँ 1913-14 से ही 'इन्दु' में प्रकाशित होने लगी थी। 1918 में प्रकाशित जयशकर प्रसाद का 'झरना' काव्यसकलन छायावाद का प्रथम काव्यसकलन माना गया। इसी समय के आसपास सन् 1916 में सूर्यकात त्रिपाठी निराला की 'जूही की कली' प्रकाश मे आई, जिसने छन्दों के बधन को तोड़ने के कारण सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। सुमित्रानदन पत भी 'पल्लव', 'वीणा', 'ग्रन्थि' के प्रकाशन के साथ छायावादी काव्याकाश में छाए हुए थे। जीवन और जगत में व्याप्त आन्तरिक और बाह्वय समस्याओ ने इन कवियों के अन्तर्मन पर गहन प्रभाव डाला तथा इस प्रभाव में अग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियो का उन्मुक्त भाव, गीताजलि का प्रभाव तथा समसामयिक परिस्थितियाँ का भी समावेश था। इन सभी प्रमुख कवियों की रचनाएँ निरन्तर तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में अपना स्थान बना रही थी लेकिन भाव और भाषा-शैली की दृष्टि से प्रचलित परम्परा से भिन्न होने के कारण ये कविताएँ आलोचकों की आँख का काँटा भी बनी हुई थी। जिनका समुचित प्रत्युत्तर छायावादी कवि पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से तथा अपनी रचनाओं मे लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ लिखकर दे रहे थे। इस वाद-विवाद-सवाद के माध्यम से छायावाद अपने चरमोत्कृष्ट रूप को प्राप्त कर रहा था।

जब छायावाद अपने चरमोत्कर्ष काल में था, तभी महादेवी ने 'नीहार' के प्रकाशन के साथ साहित्य जगत में पदार्पण किया। साहित्य जगत में सर्वत्र व्याप्त छायावादी प्रवृत्तियो से महादेवी का अप्रभावित रहना

असम्भव था। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने महादेवी वर्मा के काव्य सग्रह 'नीहार' का अभिनन्दन किया—'ग्रन्थ सर्वथा निर्दोष नहीं, किन्तु इसमें अनेक इतनी सजीव और सुन्दर पक्तियाँ हैं, कि उनके मधुर प्रवाह मे उधर दृष्टि जाती ही नहीं। प्रभुल्ल पाटल प्रसून में काँटे होते हैं, हों, किन्तु उसकी प्रफुल्लता और मनोरजकता ही मुग्धकारिता की सम्पत्ति है।[14] द्विवेदी युग के आचार्य कवि हरिऔध द्वारा साहित्य जगत मे बिल्कुल नई छायावादी कवयित्री के प्रथम काव्य सग्रह की भूमिका लिखा जाना ही यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त था कि इस समय तक छायावाद द्विवेदी युगीन आलोचकों के मन में अपनी प्रतिष्ठा की जड़ो को गहरा कर रहा था। महादेवी वर्मा ने अपनी अनुभूतियो को कल्पना का रगीन आवरण ओढ़ाकर एक नये रहस्यालोक की सृष्टि की जिसमें उन्होंने अज्ञात, अव्यक्त प्रियतम को आलम्बन बनाकर उसके प्रति हृदय के मनोरम भावों की सृष्टि की। प्रकृति का मानवीकरण करके उसे सामान्य मानव की तरह कार्य करते हुए दिखाया। महादेवी ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक नई सौन्दर्य चेतना के दर्शन किये। महादेवी ने रहस्यात्मक सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना ससार की अस्थिरता, जीवन की नश्वरता तथा उस अज्ञात, अव्यक्त प्रियतम के प्रति वेदना एव करुणा—इन चार उपादानों का आश्रय लेकर नीहार के गीतो की सृष्टि की है। 1932 में रश्मि प्रकाशित हुई, फिर नीरजा (1934), साध्यगीत (1936) और दीपशिखा प्रकाशित हुई। इन सभी रचनाओं मे छायावादी प्रवृत्तिया का पूर्ण परिपाक हुआ है। छायावादी कवियों में महादेवी ही सबसे अधिक **स्वतन्त्र** है जिन्होंने अपनी शैली कभी नही बदली और वह काव्य क्षेत्र में आरम्भ से लेकर अन्त तक छायावादी ही बनी रही। महादेवी ने केवल काल्पनिक छायालोक को ही दृष्टिगत नहीं किया वरन् उन्होंने बगाल मे आए हुए भीषण अकाल से व्यथित होकर 'बगदर्शन' की रचना की। हिमालय पर सकट के बादल छाए होने पर 'हिमालय' पर लिखी प्राचीन से लेकर नए कवियों की कविताओं का सकलन किया। 'सप्तपर्णा' में सस्कृत काव्यग्रन्थों से अनुवाद प्रस्तुत किया। दीपशिखा के पश्चात महादेवी की लेखनी गद्य क्षेत्र की ओर मुड़ गई। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' मे उन्होने अपने सम्पर्क में आए हुए दीन-हीन-शोषित जन को वाणी दी। 'शृखला की कड़ियाँ' में महादेवी ने प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की नारियो की सामाजिक स्थिति में आए हुए परिवर्तनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया और साथ ही अन्याय को स्वीकार करने वाली भारतीय नारियों की अतर्निहित शक्तियों को जाग्रत करने का भी प्रयास किया है। 'पथ के साथी'(1956) मे उन्होंने अपने वरिष्ठ तथा समकालीन साहित्यकारों के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व तथा उनके साथ अपने सम्बन्धों का विवेचन किया है। 'क्षणदा' (1956) मे ललित निबन्ध तथा 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध '1962) मे आलोचनात्क निबन्धों का सग्रह है। 'मेरा परिवार' (1972) में उन्होने अपनी ममता के अधिकारी के रूप में पशु पक्षियों को चुना है। रचना कर्म के अतिरिक्त महादेवी ने शिक्षा जगत में 'प्रयाग महिला

विद्यापीठ' को वट वृक्ष की भाँति आरोपित किया ओर अपनी ओजस्वी भाषण कला से सम्पूर्ण देश मे होने वाले साहित्यिक समारोहों मे भाग लेकर अनोखी वक्तृत्व कला का परिचय दिया।

छायावाद के चारों कवि एक ही युग के होकर भी, समान परिस्थितियों से प्रेरणा ग्रहण करके भी काव्य सृजन में समान भावभूमि के नही थे। प्रसाद में यदि दार्शनिक स्वर प्रधान था तो सुमित्रानदन पत के काव्य मे सौन्दर्य चेतना और प्रकृति के प्रति असीम अनुराग व्यजित हो रहा था। निराला के काव्य में यदि इन दोनो से भिन्न पुरुषार्थ का ओज और उत्साह की गगा प्रवाहित हो रही थी तो महादेवी वर्मा के काव्य मे नारी हृदय की कोमल एव सुकुमार भावनाओं के साथ वेदना एव करुणा का सागर हिलोरे ले रहा था। इस दृष्टि से एक ही युग में होते हुए भी इस काल के कवियो के काव्य का मूल स्वर अलग-अलग था। सभवत इसका कारण परिस्थितियों का प्रभाव और अर्न्तबाह्य दबाव हो सकते हैं। महादेवी वर्मा अपनी कविताओ मे जितनी भावुक हैं, अपनी गद्य रचनाओं में अपने परिवेश के प्रति वे उतनी ही अधिक जागरूक हो जाती हैं। महादेवी के समय में कई प्रतिभावान कवि हिन्दी जगत में विद्यमान थे। ऐसे प्रतिभावन कवियों के बीच से निकलकर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाना महादेवी की महान् उपलब्धि है।

* * *

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

1 आधुनिक भारत, एन सी ई आर टी पृष्ठ सख्या 198

2 यामा, महादेवी वर्मा, पृ स 5

3 यामा, महादेवी वर्मा पृ स 5

4 आधुनिक कवि, महादेवी वर्मा, पृ स 34 35

5 महादेवी साहित्य समग्र, 3 स निर्मला जैन, पृ स 411

6 आधुनिक कवि, महादेवी वर्मा, पृ0स 35

7 'उत्तर प्रदेश' महादेवी वर्मा अक, दिसम्बर 1988 पृ स 22

8 'जीवन का एक पक्ष' ले रामधारी सिंह दिनकर, 'महादेवी सस्मरण ग्रन्थ ',स सुमित्रानदन पत, पृ स 82

9 आत्मिका, महादेवी वर्मा, महादेवी साहित्य समग्र-1 स निर्मला जैन, पृ स 597

10 आत्मिका, महादेवी वर्मा महादेवी साहित्य समग्र-भाग-1, सपादन- निर्मला जैन, पृ स 597

11 'उत्तर प्रदेश' 'महादेवी वर्मा अक, दिसम्बर 1988, पृ स 21

12 आत्मिका 'महादेवी वर्मा, 'महादेवी साहित्य समग्र'-भाग-1, स - निर्मला जैन, पृ स 597

13 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ स 50

14 नीहार, महादेवी वर्मा 'परिचय' पृ स 6

* * *

द्वितीय-अध्याय

छायावाद : वाद-विवाद-संवाद

●

1 छायावाद का उदय

क राजनीतिक परिवेश

ख सामाजिक परिस्थिति

ग साहित्यिक वातावरण

2 नामकरण को लेकर उठा विवाद

3 प्रवर्तक कवि के सम्बन्ध मे मत-वैभिन्नय

4 छायावाद आलोचको तथा कवियो द्वारा उठाए गए विवाद और सवाद

किसी भी नई काव्य प्रवृत्ति का उद्भव समय के प्रवाह से अचानक नहीं होता वरन् उसके उद्भव के पीछे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक कारण तत्वो की लम्बी शृखला होती है। यही तत्व समाज को भी क्रियाशील बनाए रखते हैं। चूँकि साहित्य समाज से ही जीवन रस ग्रहण करता है। अत किसी भी काव्य प्रवृत्ति अथवा वाद का अध्ययन करने से पूर्व उस समय की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। छायावाद के जन्म की पृष्ठभूमि मे भी यही प्रवृत्ति काम कर रही थी। तत्कालीन समाज मे व्याप्त जनअसतोष तथा विषमताओ एव असगतियो से स्वय को अलग रखना भावुक तथा विचारशील प्राणी के लिए कठिन ही नही वरन् असम्भव भी था। इस प्रकार छायावाद समाज मे व्याप्त अन्तर्बाह्य सघर्ष के विरुद्ध भावुक हृदय की पुकार है। इस अभिव्यक्ति के लिए विद्यमान साधन जैसे-भाव, भाषा, छन्द, रस, शिल्प आदि भी अपर्याप्त थे। अत इन कवियो ने नए काव्य साधनो का निर्माण किया। इस अभिव्यक्ति के लिए जिन परिस्थितियों ने दबाव डालकर उस युग के कवियो को काव्य रचना की ओर प्रवृत्त किया तथा उन्हें अपने आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए विवश किया, उस सामाजिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि का सम्यक् अनुशीलन छायावाद को समझने के लिए आवश्यक है। छायावाद अपने जन्म से ही वाद-विवाद की एक लम्बी प्रक्रिया साथ लेता आया है। यहाँ तक कि 'छायावाद' को 'छायावाद' नाम भी उपहास और हसी मे दिया गया था लेकिन धीरे-धीरे इस युग के कवियों ने अपनी कविताओं की सार्थकता सिद्ध की। आलोचकों के साथ-साथ इसका एक समर्थक वर्ग भी तैयार हुआ जिसने आलोचकों द्वारा की जा रही आलोचना का अपने लेखों द्वारा समाधान प्रस्तुत किया। इस पृष्ठभूमि के साथ छायावाद का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत है—

राजनीतिक-सामाजिक परिवेश -

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में बगाल में आए हुए अकाल के समय ब्रिटिश सरकार से कोई सहयोग न मिलने के कारण और इसके स्थान पर उनकी शोषणकारी नीतियो के परिणामस्वरूप भारतीय जनमानस मे असतोष की तीव्र लहर व्याप्त थी। यद्यपि ब्रिटिश शासन ने भारत मे व्यापार और उद्योग का विकास तो अवश्य किया किन्तु यह विकास अन्य देशों में इतने ही समय में होने वाले विकास से काफी कम था। इसके साथ ही साम्राज्यवादी शक्तियाँ अफ्रीका और एशिया में अपना विस्तार क्षेत्र बढाने के लिए निरन्तर

प्रयत्नशील थी तथा इसके लिए वे भारतीय सेना तथा भारत के ससाधनों का खुलकर उपयोग कर रहे थे जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय जनता पर पड़ रहा था। तभी सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया जिसमे भारत के राष्ट्रवादी नेताओं ने यह सोचकर अग्रेज सरकार का समर्थन किया कि कृतज्ञतावश अग्रेज सरकार भारतीयों को आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में कुछ रियायतों की घोषणा करेगी। लेकिन युद्ध समाप्ति के बाद भारतीय नेता ठगे से रह गए क्योकि मित्र राष्ट्रों ने दुनिया के सभी राष्ट्रों के लिए जनतन्त्र तथा राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का एक नया युग प्रारम्भ करने का जो वचन दिया था उसे पूरी तरह से भुला दिया गया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय जनमानस में क्राति की व्यापक लहर उठी और इसी समय राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गाँधी के आगमन से भारतीय जनता ने उनके नेतृत्व में सगठित होकर एक स्वर से विदेशी शासन को उखाड़ फेकने का सकल्प लिया। विश्वयुद्ध के बाद भारतीयों की आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई। करों के बढते बोझ और गरीबी की मार से मध्यवर्ग भी पीड़ित था और उस पर सूखा, महामारी आदि ने जनता की कठिनाइयाँ और भी बढा दी थी। 1920-22 मे महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग करते हुए असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात किया जिसमें समाज के सभी वर्गो ने समस्त भेदभावो को भुलाकर बढ-चढ कर हिस्सा लिया। यहाँ तक कि दीर्घकालीन जड़ता की स्थिति को समाप्त कर भारतीय नारी भी इस आन्दोलन का मुख्य हिस्सा बनीं। इस आन्दोलन को दबाने के लिए अग्रेजो ने हर सभव प्रयत्न किये। जनता का निर्ममतापूर्वक दमन किया गया, अत्याचार करने के नए-नए तरीके ढूँढे गए, सभी बड़े राष्ट्रवादी नेताओ को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया। लेकिन इस आन्दोलन के माध्यम से भारतीय जनमानस में इस आत्मविश्वास ने अवश्य जन्म लिया कि भारतीय हीन नहीं है और बिना अस्त्र-शस्त्र के भी अग्रेजों को इस देश से बाहर किया जा सकता है।

राजाराममोहन राय ने ब्रह्मसमाज, दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज, विवेकानन्द के रामकृष्ण मिशन तथा प्रार्थना समाज जैसी सुधारमूलक सस्थाओ ने भारतीय जनता के जीवनस्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया तथा भारतीय समाज में शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार से जनता का एक वर्ग नवीन विचारों, नवीन मूल्यो को ग्रहण कर रहा था, जो परम्परागत मूल्यों से सर्वथा भिन्न था।

साहित्यिक वातावरण

चूँकि साहित्य समाज का दर्पण है इसलिए राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र मे व्याप्त इस उथल पुथल की अभिव्यक्ति साहित्य में होनी स्वाभाविक थी। साहित्यिक क्षेत्र में भी नई प्रवृत्तियों, भावों, विचारो एव विधाओं का समावेश हुआ, जिसके लिए ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली का आविष्कार किया गया।

साहित्य में नवजागरण काल भारतेन्दु युग माना जाता है जिसमें भारतेन्दु ने गद्य के लिए खड़ी बोली को स्वीकार करके उसे साहित्यिक रूप प्रदान किया लेकिन काव्यरचना उन्होने परम्परा प्रचलित ब्रजभाषा मे ही की। भारतेन्दु के काव्य और गद्य साहित्य में एक अद्भुत विरोधाभास देखने को मिलता है कि उन्होने जहाँ गद्य में नाटकों के माध्यम से देश के सामने विद्यमान समसामयिक समस्याओ पर अपनी लेखनी चलाई, वही काव्य में परम्परा से चले आ रहे राधा-कृष्ण से सम्बधित भक्तिमय सवैया ही लिखे। यही प्रवृत्ति आगे चलकर महादेवी वर्मा के साहित्य में मिलती है, जहाँ गद्य और काव्य सर्वथा भिन्न है। द्विवेदीयुग में वर्णन की प्रणाली इतिवृत्तात्मक ही रही और इस युग के कवियों का वस्तु-वर्णन पर अधिक जोर रहा। सम्भवत इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि काव्य में व्यवह्रत नई खड़ी बोली को अभी परिमार्जित और परिष्कृत होना बाकी था। उसे नए-नए भावो और विचारो को वहन करने योग्य बनाना था। इस कार्य के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आगे आए और सरस्वती पत्रिका के माध्यम से उस युग के कवियो को खडी बोली मे लिखने के लिए प्रेरित किया। उसके शब्दकोश को समृद्ध बनाया तथा व्याकरणगत अशुद्धियों को सुधारा। उनके द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही खड़ी बोली में आर्योचित गरिमा आ पाई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी, तब तक बना रहेगा।"[1] यद्यपि ब्रजभाषा की कोमलकान्त पदावली के स्थान पर खड़ी बोली में विद्यमान खरखराहट तत्कालीन साहित्यिक वर्ग को आसानी से स्वीकार्य नही हुई और खड़ी बोली को अपने अस्तित्व की स्थापना के लिए सघर्ष भी करना पड़ा लेकिन धीरे-धीरे खड़ी बोली ने साहित्य क्षेत्र में अपने पाँव जमाने शुरू कर दिए।

द्विवेदीयुगीन कवियों ने खड़ी बोली को कसौटी पर कसकर काव्य के उपयुक्त तो बना दिया लेकिन अब उसके शब्दों मे नए अर्थ सकेत भरने की आवश्यकता थी और यह कार्य आगे आने वाली नई पीढ़ी ने अत्यन्त कुशलता के साथ किया। ये कवि नित्य ही ज्ञान विज्ञान के नये आयामों से परिचित हो रहे थे। चिन्तनशील होने के कारण नाना विचारमूमियों से गुजर रहे थे। देश की तत्कालीन दशा इन्हें आन्दोलित कर रही थी और विदेशी शासन से उत्पीड़ित भारतीय जनता का आर्त्त क्रन्दन इनके अन्तर्मन को झकझोर रहा था और इसीलिए इन कवियों ने मुखर अभिव्यक्ति न करके सूक्ष्म रूप में अपने भावो को व्यक्त किया। जनसाधारण में व्याप्त निराशा को दूर करने के लिए इन लोगो ने जनता का ध्यान स्वर्णिम अतीत की ओर खीचा तथा उन्हें एकता के सूत्र मे आबद्ध रखने के लिए राजनीतिक व्यवस्था से ऊपर उठकर उच्चतर मानवीय मूल्यो की स्थापना की। पराधीनता में जकड़े हुए और सामाजिक रूढ़िनीति के बधे-बधाएँ ढाँचे को तोड़ने के लिए ये कवि विद्रोह कर बैठे। उन्होंने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर स्वतन्त्र होने का प्रयास किया।

इन कवियों के पास नए-नए भावो एव विचारों का उन्मुक्त आकाश तो था ही, साथ ही कल्पना के योग ने उनकी अनुभूतियों को ऐसे रूप मे अभिव्यक्त किया, जो तत्कालीन साहित्यिक जगत के लिए बिल्कुल नई चीज थी। उन्होंने परम्परा-प्रचलित शैली को अस्वीकार करके लक्षणा, व्यजना, प्रतीक तथा बिम्ब का प्रयोग करके एक नई काव्यशैली को जन्म दिया। अमूर्त विधायिनी कल्पना के योग से अमूर्त स्थितियों को भी साकार रूप प्रदान किया गया तथा प्रस्तुत विषयों को अधिक कलात्मक और सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत किया गया। उनकी कल्पना एव अनुभूति का सस्पर्श पाकर जड़ माने जाने वाली प्रकृति भी चेतनवत् व्यवहार करने लगी। 1911 मे गीताजलि का प्रकाशन और 1913 मे उस पर नोबुल पुरस्कार मिलने से इस काव्य रचना की ओर नए कवियों का ध्यान जाना स्वाभाविक ही था, उसमे व्यक्त भावो, विचारो, और शैली को अपनाना भी अस्वाभाविक नहीं था। क्योकि साहित्य को जन्म देने में सामयिक परिस्थितियो का हमेशा से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यद्यपि इस नई काव्य प्रवृत्ति का जन्म द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक, वर्णनप्रधान, नीरस तथा उपदेशात्मक कविताओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ था लेकिन यह बिल्कुल नया नही था, वरन् इसके बीज रीतिकाल के अन्तिम चरण मे विकसित होने वाले रीतिमुक्त कवियो के काव्य में देखे जा सकते हैं, जहाँ घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि कवियों ने परम्परागत भाषा, शैली में क्राति लाते हुए लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य की अद्भुत छटा प्रस्तुत की। सम्भवत इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि प्रचलित भाषा, शैली, शब्द बार-बार व्यवहृत होकर अपनी चमक खो देते हैं, एकरसता उत्पन्न करने लगते है, और अपनी गुणवत्ता में हीन हो जाते हैं अत इस बधी बधायी लीक को तोड़ने के लिए कवि का यह विद्रोह स्वाभाविक ही माना जाना चाहिए।

इस नई काव्य प्रवृत्ति का प्रारम्भ 1918 से सर्वस्वीकृत हो चुका है लेकिन इससे प्रभावित कविताएँ 1911 से ही 'इन्दु' में प्रकाशित होने लगी थी। प्रसाद की 'प्रथम प्रभात' और 'खोलो द्वार' कविताएँ इन्दु मे ही छपी थी। इन दोनों ही कविताओं में लाक्षणिक वैचित्य, आत्माभिव्यक्ति, तथा कल्पना का उन्मुक्त आकाश विद्यमान है। इनमें इस नई काव्यप्रवृत्ति के विकास की अनन्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। प्रसाद की एक अन्य रचना 'प्रभो' 1911 के 'इन्दु' मे प्रकाशित हुई थी जो निम्न प्रकार है—

"विमल इन्दु की विशाल किरणें प्रकाश तेरा बता रही हैं।"

"तुम्हारा स्मित हो जिसे देखना वह देख सकता है चन्द्रिका को"

"प्रसाद तेरी दया का जिसको देखना हो तो देखे सागर

तुम्हारे गाने की धुन मे नदियाँ निनाद करती ही जा रही हैं।"

'अनन्तता की यह उज्ज्वल काव्यात्मक अनुभूति इतनी सरलता सहजता एव सवेद्यता के साथ 1911 मे ही प्रसाद द्वारा व्यक्त हो चुकी थी।''[2] सन् 1916 मे छन्दों के बधन को तोड़ते हुए निराला की 'जूही की कली' प्रकाशित हुई। निराला का सस्कार तथा रुचियाँ बनने का समय बगाल में व्यतीत होने के कारण इस कविता पर बगाल के छन्द-पद-बन्ध एव नाद सौन्दर्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। सन् 1918 मे प्रकाशित 'झरना' काव्य सकलन इस नए ढग की काव्यप्रवृत्तियो का प्रतिनिधि सकलन माना जाता है। इसके साथ ही नए कवि इस नई काव्य प्रवृत्ति की ओर आकृश्ट हुए। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में इन कविताओ की धूम सी-मच गई। ये सभी कवि कल्पना के समुचित समावेश से अपनी भावानुभूतियों को नित्य नये रग प्रदान कर रहे थे, शब्दों में नई अर्थच्छवि भर रहे थे। सन् 1925 में 'आँसू' के प्रकाशन के साथ इनकी भावाभिव्यक्तियो में और भी प्रौढ़ता आई। रामचन्द्र शुक्ल भी अपने इतिहासग्रन्थ में स्वीकार करते हैं कि— ''उक्तियों के भीतर बड़ी ही रजनकारिणी कल्पना, व्यजक चित्रो का बड़ा ही अनूठा विन्यास, भावनाओं की अत्यन्त सुकुमार योजना मिलती है।'' [3] सुमित्रानदन पन्त की इस नई काव्यप्रवृत्ति से सम्बन्धित रचनाओं का सकलन 'वीणा' का प्रकाशन तो 1927 मे हुआ लेकिन इसकी अधिकतर रचनाएँ 1918-1919 में लिखी गई थीं। सन् 1927 में पन्त के 'पल्लव' का प्रकाशन हुआ और उसके बाद 1929 में निराला के 'परिमल' का प्रकाशन हुआ। महादेवी का प्रवेश साहित्य जगत में थोडी देर से हुआ उनका 'नीहार' सन् 1930 में प्रकाशित हुआ जिसमें उनकी 1926 से 1929 तक की रचनाएँ सग्रहीत हैं। 'नीहार' में रहस्यात्मक सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना, ससार की अस्थिरता, जीवन की नश्वरता तथा उस अज्ञात, अव्यक्त, प्रियतम के प्रति वेदना एव करुणा का पूर्ण परिपाक् हुआ। है। 1932 में सुमित्रानदन पन्त का 'गुजन' और महादेवी के 'रश्मि' का प्रकाशन हुआ। महादेवी वर्मा की अन्य काव्य-कृतियाँ 'नीरजा' 'साध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' क्रमश 1934,1936 और 1942 मे अस्तित्व मे आई। 1933 में प्रसाद की 'लहर' और 1936 में 'कामायनी' का प्रकाशन हुआ और इसी समय डा रामकुमार वर्मा का 'चित्ररेखा' का प्रकाशन हुआ। 1936 में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के गीतों का सग्रह 'गीतिका' के प्रकाशन के साथ ही इस नई काव्यप्रवृत्ति की सम्भावनाएँ समाप्त होने लगी थीं।

नामकरण को लेकर उठा विवाद-

यद्यपि इस नई काव्य प्रवृत्ति के बीज काव्यभूमि पर उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में ही पड़ने प्रारम्भ हो गए थे। परन्तु उस समय यह काव्य प्रवृत्ति बिल्कुल नई थी, जिसका नामकरण होना अभी शेष था। इस नई काव्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत नए-नए भावों एव विचारों का समावेश होने के कारण और इसीलिए प्रचलित काव्य

वस्तु के साथ सामजस्य न बिठा सकने के कारण उस समय के साहित्यिक वर्ग के मध्य इसको लेकर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। कविता मे निहित भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति और उसका अर्थ स्पष्ट न होने के कारण इस नई काव्य प्रवृत्ति को 'छायावाद' सज्ञा से विभूषित किया गया, जिसका प्रथमत उल्लेख जबलपुर से प्रकाशित होने वाली 'श्री शारदा' पत्रिका के 1920 के जुलाई, सितम्बर, नवम्बर और दिसम्बर के अकों मे मिलता है, जिसमें मुकुटधर पाण्डेय ने 'हिन्दी मे छायावाद' शीर्षक से एक लेखमाला प्रकाशित करवाई थी। जो छायावाद पर एक "अत्यन्त सूझ-बूझ भरी गभीर समीक्षा"[4] है। यह 'छायावाद' सज्ञा आलोचको द्वारा उपहास और व्यग्य मे दी गई थी किन्तु कालान्तर में इसकी इतनी अधिक आलोचना-प्रत्यालोचना हुई कि 'छायावाद' नाम स्वय को साहित्य जगत में प्रतिष्ठा दिलाने में सफल रहा। प्रारम्भ में 'छायावाद' नाम को बगाल से आया हुआ माना गया किन्तु बाद मे यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई। छायावाद मे अज्ञात, अव्यक्त या असीम को निवेदित कविताएँ देखकर इसे रहस्यवाद का पर्याय भी माना गया किन्तु अन्त मे रहस्यवाद को भी छायावाद की एक विशेषता के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

मुकुटधर पाण्डेय ने कविता में निहित वस्तुगत सौन्दर्य और उनकी अन्तर्निहित रहस्य की प्रेरणा को कविता का मूल तत्व माना है। इस रहस्यपूर्ण सौन्दर्य दर्शन मे कल्पना का भी योग रहता है। इसीलिए कविता में विद्यमान भाव अस्पष्ट रहते हैं। मुकुटधर पाण्डेय अपने एक लेख में लिखते हैं कि— "इसी अस्पष्टता का दूसरा नाम 'छायावाद' (Mysticism) है जो लोग छायावाद को एक नई बात समझते हैं, वे भूलते हैं। यथार्थ मे वह कविता के साथ ही साथ उत्पन्न होती है।"[5]

महावीर प्रसाद द्विवेदी छायावादी कविताओं को बगाल के रवीन्द्रनाथ टैगौर की कविताओ से प्रभावित मानते हैं। टैगोर की कविता के लिए वे Mystic या Mystical शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसका अर्थ प0 मथुरा प्रसाद मिश्र ने अपने त्रैभाषिक कोश में गूढार्थ, गुह्य, गुप्त, गोप्त और रहस्य बताया है। इस समय तक छायावाद को लेकर भ्रम की स्थिति बनी हुई थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी सरस्वती पत्रिका में लिखते हैं— "छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावाद कविता कहना चाहिए।'[6]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'छायावाद' शब्द का प्रयोग बगाल मे ईसाई सतो के छायाभास तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र मे प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने वाली कविताओ के लिए किया है जिससे प्रभावित होकर बाद में हिन्दी के कवि भी कविताएँ करने लगे। वे लिखते है कि -"यह वाद क्या प्रकट हुआ, एक बने बनाए रास्ते का दरवाजा सा खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नए कवि एकबारगी

झुक पड़े।' [7] 'छायावाद' नाम वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद से प्रभावित, फिर सूफियो के यहाँ से होता हुआ योरोप के प्रतीकवाद से सश्लिष्ट होकर बग साहित्य में आया और वहाँ से हिन्दी में ग्रहण किया गया, ऐसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मानते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ही सर्वप्रथम इस धारणा को निर्मूल सिद्ध किया कि छायावाद शब्द बगाल से आया हुआ है। वे उसे बिल्कुल नया मानते हैं जो केवल अधिक व्यवहृत हो जाने के कारण सभी के द्वारा स्वीकारणीय हो गया है।

जयशकर प्रसाद ने छायावाद की समानता सस्कृत साहित्य के साथ निरूपित की। परम्परा के बधे बधाए ढाँचे से हटकर कविता में वेदना के आधार पर स्वानुभूति की अभिव्यक्ति प्रमुख होने लगी और इन भावों को व्यक्त करने में प्रचलित भाषा असमर्थ थी। इसलिए नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास और नवीन शब्दों के माध्यम से भावो की सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया और ऐसी कविता को छायावाद के नाम से पुकारा गया। छायावाद नाम के चलन के बारे मे प्रसाद का मत था कि "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी मे उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।" [8]

सुमित्रानन्दन पन्त को इस नई काव्य प्रवृत्ति का 'छायावाद' नाम स्वीकार्य नहीं है। वे लिखते हैं कि— 'छायावाद' नाम से मैं सन्तुष्ट नही हूँ। यह तो द्विवेदी युग के आलोचकों द्वारा नई कविता के उपहास का सूचक है।" [9] छायावाद के प्रवर्तक प्रसाद द्वारा छायावाद नाम स्वीकार कर लिए जाने के कारण और उसकी व्याख्या भी कर देने का परिणाम सुमित्रानदन पत यह मानते है कि-"जिस प्रकार वाल्मीकि उलटा नाम रटकर ब्रह्म के समान हो गए उसी प्रकार काव्य मे उस युग की ज्योति छाया बनकर हिन्दी साहित्य को सर्वसम्पन्न करने मे सफल हुई।"[10] अत इस नाम के औचित्य को सिद्ध करने के लिए जो तर्क दिए गए वे उसे और भी उलझाते रहे, जिसका अन्त यह हुआ कि "साहित्य के मन्दिर मे छाया या प्रेत की स्थापना कर लेने पर अनेक प्रयत्न करने पर भी उसमें प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर सके, छाया नये जीवन की वास्तविकता नहीं बन सकी, वह छाया की भी परछाई के रूप में ग्रहण की जाने लगी।"

साहित्यजगत मे महादेवी के आगमन तक छायावाद नाम को लेकर हुआ प्रारम्भिक विरोध काफी सीमा तक शान्त हो गया था और छायावाद अपनी पूरी गरिमा के साथ साहित्यिकों का सिरमौर बना हुआ था। महादेवी 'छायावाद' नाम को उपयुक्त मानती हैं। छायावाद के जन्म की परम्परा को वे वेदों, उपनिषदों से जोड़ते हुए, वीरगाथा कालीन, निर्गुण-सगुण भक्ति काव्य से होते हुए रीतिकालीन रुढ़िवादिता की प्रतिक्रिया

के साथ-साथ तत्कालीन समाज मे व्याप्त मनुष्य के अन्तर्बाह्य सघर्ष से जोड़ती है। जिस प्रकार किसी मनुष्य को स्वतत्र छोड़ देने पर वह स्वतत्रता से ऊब कर अपने लिए असख्य बधनों की रचना कर डालता है, फिर उन बन्धनो को तोड़ने में लग जाता है। उसी प्रकार काव्य में पहले तो स्थूलता, इतिवृत्तात्मकता तथा वस्तु वर्णन का प्राधान्य हो गया और फिर उसकी प्रतिक्रियास्वरूप स्वानुभूत सुख दुखों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की जाने लगी। वे लिखते हैं कि— "उसके जन्म से प्रथम कविता के बधन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्न छन्द मे चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।" [12]

डा0 नगेन्द्र छायावाद के जन्म के पीछे तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो को मुख्य कारण मानते हैं। ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न जन-असतोष और पश्चिम के स्वतत्र विचारों के सम्पर्क में आने के कारण कवि मन अपनी अनुभूतियों की बाह्य अभिव्यक्ति में असमर्थ था। इसलिए उसकी आत्मगत चेतना अन्तर्मुखी होकर यथार्थ और स्थूल से मुँह फेरकर सुदूर, रहस्यमय और सूक्ष्म के प्रति आकर्षित हो रही थी। वे लिखते हैं कि— "जिन परिस्थितियों ने हमारी कर्मवृत्ति को अहिंसा की ओर प्रेरित किया उन्ही ने भाववृत्ति को छायावाद की ओर। उसके मूल मे स्थूल से विमुख होकर सूक्ष्म के प्रति आग्रह था।" [13]

नन्ददुलारे बाजपेई प्रारम्भ में छायावाद के अन्तर्गत आध्यात्मिकता का समावेश करते हैं। वे लिखते हैं कि— 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य मे आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।" [14] किन्तु बाद में इस आध्यात्मिकता को उन्होंने कबीर जैसे निर्गुणमार्गी तथा सूफी कवियों की आध्यात्मिकता से भिन्न माना है। इसकी मुख्य प्रेरणाभूमि धार्मिक नही है, वरन् मानवीय और सासकृतिक है। छायावाद बीसवीं शताब्दी में होने वाली वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया है, जिसकी अपनी नवीन और स्वतत्र काव्य शैली है।

इलाचन्द्र जोशी छायावाद से पूर्व दो प्रकार की कविताओं को प्रचलन मे मानते हैं। एक तो नायक-नायिका भेद प्रदर्शन तथा नख-शिख वर्णन की पुरानी पद्धति की कविताएँ और दूसरी वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक कविताएँ। प्रसाद गुण से समन्वित सुस्पष्ट तथा बोधगम्य कविता सुनने के आदी लोगो के सामने जब अन्तरात्मा की वास्तविक तथा निगूढ़ वेदना से उत्पन्न कविताएँ नये रूप मे तथ नए आकार में सजकर आई तो वे उन्हे अस्पष्ट, रहस्यपूर्ण और छायात्मक लगी। वे लिखते हैं कि—"अचानक इस प्रकार की

कविताओ की बाढ सी आते देख वे घबरा उठे और इस घबराहट में उन्हे कुछ सूझ न पड़ा कि इस श्रेणी की कविताओं को क्या नाम दिया जाय। कोई एक नाम देना परमावश्यक हो उठा, क्योकि वास्तविक कविताओ को इन 'अवास्तविक' तथा अर्थहीन कविताओ की बाढ़ से बचाने, उनके ससर्ग से सुरक्षित रखने के लिए ऐसा करना जरूरी समझा गया। फलस्वरूप नए ढर्रे की कविता का नाम पड़ा। छायावादी कविता और इस श्रेणी की कविता की भावधारा का नाम पड़ा-'छायावाद।' [15]

इन्द्रनाथ मदान भी छायावाद के जन्म के मूल मे अस्पष्टता को ही प्रधान स्थान देते हैं। वे लिखते हैं कि— 'इतिवृत्तात्मक कविता के प्रेमी और उस काल की यह अटपटी व्यजना ब्रजभाषा के रसिको को समझ मे नही आती थी, इसमें अस्पष्टता भी थी। उन्होंने इसमें काव्य की काया न देखी, छाया देखी और इसका नाम किसी प्रकार छायावाद पड गया है।' [16]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद नाम को लेकर विद्वानो में पर्याप्त मतभेद रहा था और अपने पक्ष में सभी ने तर्क भी प्रस्तुत किये। प्रारम्भ मे इसे बगाल से उधार लिया हुआ माना गया किन्तु बाद में यह स्वीकार कर लिया गया कि यह हिन्दी का ही शब्द है और इस युग की काव्य प्रवृत्तियों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भी है।

प्रवर्तक कवि के सम्बन्ध में मतवैभिन्य-

छायावाद के नामकरण के समान इसके प्रवर्तक कवि के सम्बध में भी विद्वानो में मत विभिन्नता रही है। रामचन्द्र शुक्ल ने मुकुटधर पाण्डेय, मैथिली शरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में सर्वप्रथम छायावादी प्रवृत्तियो के दर्शन किए। वही राम नरेश त्रिपाठी भी स्वय को छायावाद कविता के प्रवर्तक का श्रेय देना चाहते हैं क्योकि पत को उनके 'पथिक' में छायावादी पक्तिया मिली थी। रामनरेश त्रिपाठी का मानना है कि— 'यदि यह ठीक है और मैं मानता हूँ कि यह ठीक है तो इसे स्वाभाविक विकास का एक प्रमाण मानना चाहिए, क्योंकि पथिक लिखते समय छायावाद की कोई कल्पना मेरे मस्तिष्क में नही थी और इसका श्रेय मुझे मिल सकता है या नही, विचार किया जा सकता है।' [17] श्री रायकृष्ण दास दृढ़ता के साथ प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं कि— "अन्य कोई भी नाम उनके साथ न लिया जा सकता है, न टिक सकता है।" [18] सियाराम शरण गुप्त यह श्रेय रवीन्द्रनाथ टैगोर को देते हैं क्योंकि हिन्दी की नई कविता धारा ने स्वय को वही से परिपुष्ट किया है। वे लिखते हैं कि— 'ब्रजभाषा का सूरसागर, अवधी का रामचरितमानस और पद्मावत, एव राजस्थान कीमीराबाई की पदावली जब हिन्दी की है तो जन-गण-मन-

अधिनायक के कवि को हम हिन्दी कवियों में वरण न करके अपनी सकीर्ण दृष्टि का ही परिचय देगे।[19] सुमित्रानन्दन पत मोटे रूप से प्रसाद को छायावाद का जनक स्वीकार करते हैं किन्तु बाद में उन्होंने अपनी कुछ रचनाओं का प्रकाशन वर्ष प्रसाद की रचनाओं के प्रकाशन से पहले बताया है। नन्ददुलारे बाजपेई ने छायावादी काव्यशैली का वास्तविक अभ्युदय सन् 1920 के पूर्व-पश्चात श्री सुमित्रानन्दन पत की उच्छवास नाम की काव्य-पुस्तिका के प्रकाशन के साथ माना है। इलाचन्द्र जोशी पहला छायावादी कवि उसे मानते हैं जिसने छायावाद युग की निश्चित स्थापना हो जाने के पहले से ही एकआध छिटपुट कविता नही वरन् निरन्तर छायावादी प्रवृत्तियो से समन्वित कविताएँ लिखी। इस दृष्टिकोण से प्रसाद को ही वे सर्वप्रथम छायावादी कवि मानते हैं।

प्रिंसिपल मनोरजन, श्री प्रभात, आरसी प्रसाद सिंह भी प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक स्वीकार करते हैं और जानकी वल्लभ शास्त्री छायावाद का आदि कवि तो निराला और पन्त को मानते हैं लेकिन प्रवर्तक कवि प्रसाद को स्वीकार करते हैं। 'मेरी समझ से प्रसाद की प्राथमिकता वय कृत ही है।'[20] विनयमोहन शर्मा, और प्रभाकर माचवे ने माखनलाल चतुर्वेदी को छायावाद का प्रवर्तक कवि माना है।

'छायावाद के प्रवर्तक कवि के रूप में प्रसाद का नाम अब सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया है। प्रसाद की रचनाएँ 1913-14 से ही इन्दु मे प्रकाशित होने लगी थी और उस विकास की चरमपरिणति कामायनी मे हुई। इस नई शैली के निरन्तर विकास के लिए प्रसाद सतत् प्रयत्नशील रहे और छायावादी कविताएँ ही अन्त तक लिखते रहे।

छायावाद : आलोचकों तथा कवियों द्वारा उठाए गए विवाद और संवाद

छायावाद अपने जन्म के साथ ही विवादों से घिरा रहा है। यद्यपि इन्हीं विवादों के उत्तर-प्रत्युत्तर मे यह और भी निखरता गया है। द्विवेदी युग की काव्यवस्तु वर्णनात्मक एव वस्तुपरक थी और छायावाद की विषयप्रधान, स्वानुभूतिपरक एव अप्रस्तुत विधायिनी शैली से उसे आघात पहुँचना स्वाभाविक ही था। इसलिए आघात जितना तेज था,उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र हुई। इसके विरोधियों द्वारा इसे अस्पष्ट, अर्थहीन, निस्सार प्रमाणित करने के प्रयत्न भी किए गए, किन्तु वे सफल नहीं रहे और छायावाद को तत्कालीन साहित्य जगत मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। छायावाद के सम्यक् अनुशीलन के लिए आरोपों प्रत्यारोपो पर एक दृष्टि डालना अत्यन्त आवश्यक है।

छायावाद पर लिखे गए मुकुट धर पाण्डेय के प्रथम निबन्ध 'छायावाद क्या है' से ही उसे

'Mysticism' का पर्याय माना जाता रहा है। उन्होंने छायावाद को मायामय सूक्ष्म वस्तु माना है जिसका शब्दों द्वारा वर्णन नही किया जा सकता क्योकि शब्द अपने स्वाभाविक अर्थ को खोकर प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। छायावाद के कवि वस्तुओ को असाधारण दृष्टि से देखते हैं और इस दृष्टि पर ही उनकी रचना की सम्पूर्ण विशेषताएँ टिकी रहती हैं। इन कवियो की आत्मनिष्ठ अन्तर्दृष्टि को ही मुकुटधर पाण्डेय ने छायावादी कविताओ का स्रोत माना है। कल्पना की अधिकता तथा प्रकृति का प्रारम्भ स ही अदृश्य और अव्यक्त के रूप प्रकाशन छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति रही हैं।

'सरस्वती' पत्रिका में जून 1921 में सुशील कुमार का लेख 'हिन्दी मे छायावाद' शीर्षक से सवाद शैली मे छपा है जिसमें चार पात्र है। उनमे एक चित्रकार हैं और एक स्वय पत। शेष अन्य दो पात्रों में एक उच्चशिक्षा प्राप्त सुशीला देवी तथा दूसरे उनके अरसिक किन्तु लक्ष्मी के कृपापात्र पतिहरि किशोर बाबू हैं। चित्रकार ने पत की रचना 'छाया' के आधार पर एक चित्र बनाया है,जो कोरा कागज है। पत जी उस चित्र के आधार पर कविता के स्थान पर कोरा कागज प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार अस्पष्टता को इसमें छायावाद को प्रधान गुण माना गया है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सुकवि किंकर' उपनाम से लिखे अपने निबन्ध में छायावादी कवियों को कठोर व्यग्यबाणों का निशाना बनाया। कविता का सर्वप्रमुख गुण वे दूसरो को अपने भावों द्वारा प्रभावित करना मानते हैं। लेकिन छायावादी कविता मे इसका अभाव है। इनका अर्थ तो स्वय छायावादी कवि भी नही बता सकते। इसीलिए ये कवि अपनी कृति को बाह्य आडम्बरों से सजा कर प्रस्तुत करते हैं। छायावादी कविता को वे सहोक्ति अलकार से प्रभावित मानते हैं, जहाँ वर्ण्य विषय के सिवा किसी अन्य विषय का भी बोध साथ ही साथ हो जाता है। यह प्रवृत्ति रवीन्द्रनाथ मे है और उसका ही अनुकरण ये नए कवि कर रह हैं। पर रवीन्द्रनाथ ने जिस कार्य को गहन अभ्यास से सभव बनाया, उसे ये कवि स्कूल, कॉलेज में रहते ही करना चाहते हैं। वे लिखते हैं कि 'रहीम पर कुछ लिखना हो तो राम का चरितगान करो अशोक पर कुछ लिखनाहो तो सिकन्दर के जीवन चरित की चर्चा करो—यह अघटनीय घटना कर दिखाना साधारण कवियों का काम नहीं।'[21]

बाबू श्याम सुन्दर दास भी छायावादी कवियों को रवीन्द्रनाथ की कविताओं से प्रभावित मानते हैं और इस प्रवृत्ति को हिन्दी कविता के लिए हानिकर मानते हैं।वे लिखते हैं कि— ''छायावाद और समस्यापूर्ति से हिन्दी कविता को बहुत हानि पहुँच रही है। छायावाद की ओर नवयुवकों का झुकाव है और ये जहाँ कुछ गुनगुनाने लगे कि चट दो-चार पद जोड़कर कवि बनने का साहस कर बैठते हैं।'[22]

रामचन्द्र शुक्ल छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थो मे करते हैं—एक तो रहस्यवाद के रूप मे तथा दूसरा काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ मे। रहस्यवाद के अन्तर्गत 'जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यजना करता है।[23] दूसरा अर्थ है—'प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यजना करने वाली छाया के रूप मे अप्रस्तुत का कथन।[24] प्रारम्भ मे इन कवियो ने अभिव्यजना के लाक्षणिक वैचित्य, वस्तुविन्यास की विशृखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य माना और अर्थ के विस्तार की ओर ध्यान नही दिया। अभिव्यजनावाद और कलावाद के प्रभाव से कल्पना और शैली की विचित्रता को ही सबकुछ मान लिया गया पर यही प्रवृत्ति तो रीतिकालीन कविता में भी थी, उसका तो सभी ने घोर विरोध किया रामचन्द्रशुक्ल लिखते हैं कि 'पर वही शृगारी कविता—कभी रहस्य का पर्दा डालकर, कभी खुले मैदान में—अपनी कुछ अदा बदलकर फिर प्राय सारा काव्य क्षेत्र छेंककर चल रही है।'[25] यद्यपि बाद में शुक्ल जी ने स्वीकार किया कि छायावाद मे काव्य शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ। साथ ही अब कवियो का ध्यान अनेक प्रकार के विषयों की ओर भी गया। उन्होने जीवन और जगत की समस्याओ को भी अपन काव्य का विषय बनाया। यद्यपि प्रारम्भ मे शुक्ल जी ने छायावादी कविता को रहस्यवाद से प्रभावित माना था किन्तु बाद में उन्होंने इन कविताओं को विलायती अभिव्यजनावाद, बगला कविताओं की नकल तथा अग्रेजी कविताओं के लाक्षणिक चमत्कार पूर्ण वाक्य शब्द-प्रति-शब्द जोड़कर बनी हुई माना। वे लिखते हैं कि—'छायावाद समझकर जो कविताएँ हिन्दी में लिखी जाती है, उनमे से अधिकाश का छायावाद या रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नही होता।[26] शुक्ल जी प्रारम्भ में छायावादी कविताको काव्य की परम्परा का स्वाभाविक विकास नही मानते किन्तु बाद मे वे उस कविता में विद्यमान लाक्षणिक वैचित्य,भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद-विन्यास तथा भावावेश की प्रधानता से प्रभावित भी रहे।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छायावादी कविता को तीव्र सास्कृतिक चेतना का परिणाम माना है। इगलैण्ड के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन से प्रभावित होने के कारण वे इन कविताओं में शास्त्रीय परम्परा के प्रति विद्रोह पाते हैं। तथा व्यक्ति की अनुभूतियों को काव्य रूढ़ियों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इस प्रकार उनके अनुसार इस कविता में मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता थी। उसके वक्तव्य विषय मे कवि की चिन्तन और अनुभूति का गहन समावेश था तथा बदलते हुए मानवीय मूल्यो को स्वीकार किया गया था। छन्द, अलकार, रस, ताल, तुक में पिष्टपेषण से बचने का प्रयत्न था और शास्त्रीय रूढ़ियो के प्रति अनास्था का भाव प्रबल था।

कोई भी नई काव्य प्रवृत्ति जिस प्रकार अपने जन्म के साथ आलोचकों का एक वर्ग तैयार कर लेती है उसी प्रकार समर्थकों का भी एक समूह इनके साथ होता है। इन प्रमुख आलोचकों द्वारा छायावाद पर निरन्तर प्रहार होते देखकर अब आवश्यक हो गया कि उसके प्रमुख कवि अपनी कविता का आलोचना से आगे ले जाए। अत इन कवियों ने अपनी पुस्तकों में लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ लिखकर तथा तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ मे छायावाद के समर्थन में लेख लिखकर छायावाद पर लगाए गए आरोपो का उचित समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया और छायावाद को साहित्यजगत मे वह स्थान दिलाने मे सफल रहे, जिसका वह अधिकारी था।

छायावाद के सम्बन्ध मे प्रचलित अनेक प्रकार की भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करते हुए जयशकर प्रसाद ने उसका शास्त्रीय आधार सिद्ध करते हुए छाया को मोती के भीतर स्थित, छाया के समान माना—

"मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा,
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोचयते।[27]

(मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसी ही कान्ति की तरलता अग में लावण्य कही जाती है) प्राचीन सस्कृत कवियों के समय से ही काव्य में आन्तरिक वर्णन की प्रधानता थी और इन भावो की अभिव्यक्ति के लिए नए शब्दों के नए अर्थ लगाए गए। इस नए अर्थ के माध्यम से ही साहित्य मे अभिधा, लक्षणा, तथा व्यजना जैसी शब्द शक्तियो का निर्माण हुआ। इस प्रकार सस्कृत साहित्य से उदाहरण देकर प्रसाद ने स्पष्ट किया कि यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इसलिए जब हिन्दी में इस तरह के प्रयोग प्रारम्भ हुए तो प्रारम्भिक विरोध के बावजूद भी यह छायावाद स्वय को साहित्य जगत में स्वीकार करवाने में सफल रहा है। छायावाद पर लगाए गए अस्पष्टता के आरोप को भी वे उसका सही मूल्याकन नही मानते। कभी-कभी कवि का अपनी अनुभूति के साथ पूर्ण सामजस्य न हो पाने के कारण भले ही ऐसा हुआ हो कि वहाँ "अभिव्यक्ति विश्रृखल हो गई हो, शब्दो का चुनाव ठीक न हुआ हो, हृदय से उसका स्पर्श न होकर मस्तिष्क से ही मेल हो गया हो परन्तु सिद्धान्त से ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट, छायामात्र हो, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है।"[28] इसी प्रकार छायावाद को प्रकृति काव्य मानने से भी वे इन्कार करते है। यद्यपि प्रकृति का आलम्बन रूप में ग्रहण तथा अपनी अनुभूति के साथ प्रकृति का समन्वय अवश्य इसमें होता है किन्तु फिर भी छायावाद इससे भिन्न है। जयशकर प्रसाद लिखते हैं कि— "छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचारवक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं।"[29]

छायावाद की रामचन्द्र शुक्ल द्वारा की गई व्याख्या से सुमित्रानन्दन पत असहमत थे उनका मानना था कि 'छायावाद को जिस बाहरी दृष्टि से शुक्ल जी देख सके उसमें तथ्यों का आग्रह भले ही हो पर वह इतनी सीमित दृष्टि थी कि उसमें अर्द्धसत्य क्या सत्य का छिलका ही देखने को मिलता है।'[30] पत ने इसका प्रधानकारण उस समय तक आलोचनाके विकसित मानदण्डों का अभाव होना माना है। छायावाद पर लगाए गए रहस्यवाद के आरोप को वे निराधार मानते हैं क्योंकि यह रहस्य भावना मध्यकालीन रहस्यभावना से भिन्न है। मध्यकालीन कवि आत्मब्रह्म तथा आत्म परिष्कार की खोज मे सलग्न थे, वही छायावादी कवि विश्व आत्मा तथा विश्वजीवन की खोज मे सलग्न थे। यह सच है कि छायावादी कविताओं पर कबीर आदि मध्ययुगीन कवियो की काव्यवस्तु का तथा उसकी अभिव्यजना कला पर रवीन्द्रनाथ की कविताओ का प्रभाव था पर उसका कारण यह था कि ये प्रभाव उस युग में चारों ओर छाए हुए थे। अत इन कवियों की रचनाओं मे उनका आनास्वाभाविक था। लेकिन बधी-बधाई लीक परचलने वाले आलोचको को यह एकदम नई वस्तु लगी और इन्होंने प्रचलित परम्परा के साथ इनका सामजस्य दिखाने के लिए मध्ययुगीन रहस्यवाद से जोड़ दिया। पन्त छायावाद के अन्तर्गत रहस्यवाद के प्रभाव को स्वीकार करते हैं, पर वे लिखते हैं कि - "वह रहस्यभावना मध्ययुगीन सतों की सी निषेध पोषित, जीवन रस वचित, आत्मा या ब्रह्म के अस्पष्ट स्पर्श की अतीन्द्रिय अनुभूति न होकर नये विश्वजीवन तथा विश्वचैतन्य की खोज तथा जिज्ञासा की भावानुभूति रही।"[32] इसी प्रकार पत स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह को भी छायावाद की एक अस्पष्ट तथा एकागी परिभाषा मानते हैं। यदि सूक्ष्म का अर्थ अभिव्यजना के वैचित्य से है तो वह सूक्ष्म न होकर पूर्ण है। यदि सूक्ष्म का सबध भावतत्व से है तो वह स्थूल का सूक्ष्म में रूपान्तर है। वास्तव में छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह न होकर नये मूल्य की प्रतिष्ठा करना है। 'मध्यकालीन सामन्ती स्थूल का परिष्कार तो पुनर्जागरण काल में ही प्रारम्भ हो गया था, जो छायावाद की राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित कविताओं से और भी परिपुष्ट हो गया था पर प्रमुख रूप से वह द्विवेदी युगीन पौराणिक मान्यताओं, आदर्शों तथा परम्परागत कलाबोध से समन्वित विषयवस्तु से पृथक एक नवीन विश्वबोध तथा मानवमूल्य से प्रेरित नयी भाववस्तु को काव्यरूप मे उपस्थित करने का प्रयास करता है। वे लिखते हैं कि—'इस प्रकार स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह से अधिक आग्रह छायावाद में नवीन जीवन सौन्दर्य के मूल्य तथा भाव-सम्पद् की स्थापना के प्रति रहा है।'[32] छायावाद पर प्रकृति का मानवीकरण रहस्यवाद नही वरन् आज का वैज्ञानिक दृष्टिकोण है जिसमें प्रकृति को चेतन माना गया है। छायावाद पर लगाए गए कल्पना बाहुल्य के आरोप को पत अस्वीकार करते हैं क्योंकि कोई भी महत्त्वपूर्ण एव व्यापक अनुभूति कल्पना प्रधान ही होती है।

महादेवी ने भी छायावाद के रहस्यवाद को धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी माना

है। बौद्धिक चेतना से समन्वित कवि ने जीवन की अखण्डता का अनुभव किया। हृदयगत भावों के साथ उसने प्रकृति मे चारों ओर बिखरी हुई सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति ग्रहण की और वे लिखती हैं कि— "दोनो के साथ स्वानुभूत दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी, जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामो का भार सभाल सकी।[33] महादेवी छायावाद पर प्रकृति के अत्यधिक प्रभाव को भी प्राचीन परम्परा से जोड़ती हैं। प्राचीनकाल से ही प्रकृति मानव की चिरसहचरी रही है। इसी कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुख मे दुखी और सुख मे सुखी जान पड़ती है। छायावाद में प्रकृति ने और भी विराट रूप प्राप्त कर लिया वे छायावाद नामक अपने निबन्ध मे लिखती हैं कि— 'छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि मे भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों मे प्रकट एक महाप्राण बन गयी, अत अब मनुष्य के 'अश्रु' मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओसबिन्दुओ का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।[34] छायावाद पर अक्सर यह आरोप लगाया गया है कि जब देश पर सकट के बादल दाए हुए थे उस समय ये कवि कल्पना के भावलोक में विचरण कर रहे थे। महादेवी इस आरोप को उचित नहीं मानती क्योकि सभी प्रमुख छायावादी कवियों की रचनाओ मे राष्ट्रीयता को और समसामयिक समस्याओं को वाणी मिली है। चाहे निराला का 'भारति जय विजय करे' अथवा प्रसाद का 'हिमाद्रि तुग शृग से' जैसे राष्ट्रीय उद्‌बोधन से सम्बधित गीत हों अथवा स्वय महादेवी का 'कह दे माँ अब क्या देखूँ,' जैसा सामयिक परिस्थितियो को अकित करने वाला मार्मिक गीत हो। महादेवी लिखती हैं कि 'सामाजिक आधार पर 'वह दीपशिखा-सी शान्त, भाव में लीन' में तपपूत वैधव्य का जो चित्र है, वह अपनी दिव्य लौकिकता मे अकेला है।"[35] महादेवी छायावाद की एक अन्य व्याख्या 'स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह' को छायावाद का उचित मूल्याकन नहीं मानती क्योकि सूक्ष्म की सत्ता स्थूल से बाहर कही नहीं है। छायावाद पर लगाए गए पलायनवृत्ति के आरोप को महादेवी यथार्थ से पलायन नहीं, वरन् यथार्थ की पूर्ति के रूप में ग्रहण करती हैं। मानव स्वभाव की प्रारम्भ से ही यह विशेषता रही है कि जिस वस्तु की अतिशयता उसके जीवन में होती है, उसके विरोधी पक्ष की ओर वह अवश्य ही आकृष्ट रहता है। इसलिए महादेवी लिखती है कि -'तब हम कैसे कह सकते हैं कि केवल सघर्षमय यथार्थ जीवन से पलायन के लिए ही, उस वर्ग के कवियों ने सूक्ष्म भावजगत को अपनाया।[36] इस प्रकार महादेवी ने ठोस तर्को के माध्यम से छायावाद के सम्बध मे की जाने वाली आलोचनाओ को शान्त करने का सफल प्रयास किया।

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेई छायावाद को भक्तिकाल के समकक्ष रखते है। जिस प्रकार भक्ति काव्य मध्ययुगीन जीवन की अभिव्यक्ति है, उसी प्रकार छायावाद आधुनिक काल के जीवन की अभिव्यक्ति है। नन्ददुलारे बाजपेई दोनो मे एक मौलिक अन्तर भी मानते हैं जहाँ भक्तिकाव्य में लौकिक और व्यावहारिक पक्षो

की उपेक्षा की गई है वही छायावाद में प्राकृतिक, सामाजिक पहलुओं तथा समसामयिक परिस्थितियों का ही चित्रण किया गया है। छायावाद पर लगाए गए समाज निरपेक्षता के आरोप को नन्ददुलारे बाजपेई पूर्णतया अस्वीकार करते हैं क्योकि छायावादी कवि भी लगभग उन्हीं सामाजिक परिस्थितियो के बीच काम करता है और उन्ही शक्तियो से परिचालित होता है, जिनके बीच कोई भी नया रचनाकार रहता है। वे लिखते हैं कि— 'जहाँ तक साहित्य के भावों और कल्पनाओं का प्रश्न है, उनमे ऐसी ताजगी है और ऐसी परिष्कृति है जैसी ऊँचे काव्य में ही पाई जा सकती है।'[37] तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से छायावाद पर लगाये गए इन आरोपों का, कि छायावादी कवि सामाजिक परिवर्तन के क्रम से अपरिचित है, उन्हें इस परिवर्तन के बीच अपने कर्तव्य का ज्ञान नही है और उसका सम्पूर्ण जीवनदर्शन ही काल्पनिक और ऐकान्तिक है, नन्ददुलारे बाजपेई का जवाब यह है कि भले ही छायावादी कवि मार्क्सवादी निर्देशों से अपरिचित हो, पर वे अपने समाज की परिस्थितियों से प्रेरणा अवश्य ग्रहण करते हैं। नन्ददुलारे बाजपेई लिखते हैं कि— 'जिस हवा में वे साँस ले रहे हैं उसकी उपेक्षा वे कर ही कैसे सकते हैं ? रही कर्तव्य की बात। कर्तव्य में भी वे किसी दूसरे साहित्यिक वर्ग से पिछड़े हुए हैं यह कहने के लिए साधारण से अधिक धृष्टता जरूरी होगी।'[38]

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने छायावाद को आधुनिक सदर्भों से जोड़ते हुए उसके प्रति एक नई दृष्टि विकसित की है जिसमें छायावाद को मूलत शक्तिकाव्य के रूप व्याख्यायित किया गया है। यह छायावाद की एक नई व्याख्या है और छायावादी कविता की विभिन्न आलोचकों द्वारा की जा रही परम्परागत आलोचना को एक नये दृष्टिकोण से देखने का प्रयास है। रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रारम्भिक छायावादी काव्य मे तो प्रकृति की प्रधानता मानते हैं, लेकिन बाद में इन कविताओं में मानवीय जीवन और उसकी विविध जटिल भावभूमियो के समावेश से मनुष्य और उसके आसपास का सामाजिक परिवेश का तनाव मुख्य हो जाता है। छायावादी कविता पर आए बग प्रभाव का कारण वे तत्कालीन सस्कृति के प्रवाह को मानते है लेकिन उसके मूल मे पुनर्जागरण चेतना प्रमुख है। वे लिखते है कि- 'रवीन्द्रनाथ का काव्य और 'गीताजलि' जिस वातावरण का निर्माण करते हैं, वह हिन्दी के छायावादी काव्य ससार का एक अश मात्र है, उसके केन्द्र में तो शक्तिचेतना का वह उत्स है जिसने भारतीय पुनर्जागरण को परिचालित किया था और जो फिर क्रमश साहित्य के सूक्ष्म स्तरों पर उन्मुक्त हुआ'।[39] छायावाद की प्रसाद द्वारा की गई व्याख्या से वे सन्तुष्ट हैं क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम 'छाया' के प्रभाव, सूक्ष्म और अस्पष्ट जैसे अर्थो को व्याख्यायित करते हुए उसे प्रकृति काव्य से अलग करके छायावाद की सरचना में चमक और काति पर बल दिया। छायावाद अपनी अर्थप्रक्रिया के अन्तर्गत मानवव्यक्तित्व को (गहन) स्तरो पर समृद्ध करता है। इस काल की प्रवृत्तियों का चरमोत्कृष्ट विकास 'कामायनी' में है जो सर्जनात्मक मानवीय सस्कृति के विकास का आख्यान है। इसमें वर्तमान सकट की ओर

दृष्टि डालने के साथ ही उससे बचने के लिए शक्ति के नियोजन का प्रस्ताव भी समाहित है। 'राम की शक्तिपूजा' में जाम्बवान द्वारा 'शक्ति की मौलिक कल्पना' करने की सलाह तत्कालीन सन्दर्भों मे राष्ट्रीय नेताओं द्वारा असहयोग आन्दोलन की विफलता के बाद शक्ति को नियोजित करने के लिए है क्योकि शक्ति तो अपने अन्दर ही है, उसे तो केवल जागृत और विकसित करने की आवश्यकता है। वे लिखते हैं कि- 'शताब्दियों से पराधीन देश को इससे बड़ी और सार्थक दृष्टि कोई नही दे सकता। यहाँ राम जितने आने लिए हैं, उतने ही सामूहिक राष्ट्रीय मन के प्रतीक है और उतने ही स्वय कवि-व्यक्तित्व के। ये कई अर्थस्तर एक दूसरे से टकराकर मानवीय आत्म-शक्ति का एक विराट आख्यान प्रस्तुत करते हैं।'[40] रामस्वरूप चतुर्वेदी छायावादी कवियो के काव्य व्यक्तित्व को भक्तिकालीन कवियो के काव्य-व्यक्तित्व जितना बड़ा मानते हैं। भक्तिकाव्य में सन्यास, वैराग्य, तपस्या और परलोकवाद मे आस्था जैसे मूल्यों का चित्रण है वही छायावादी काव्य में ऐहिक जीवन, इहलोक और मानव शरीर के प्रति आस्था जैसे आधुनिक मूल्यों का चित्रण प्रधानतया किया गया है। छायावादी काव्य में निष्काम कर्म के स्थान पर कर्म और भोग का समन्वय किया गया है। वे लिखते हैं कि- 'कबीर, सूर, जायसी, तुलसी भक्तिकाल के अन्तर्गत ससार का निषेध करके परमतत्व की ओर मन को ले जाने का उपक्रम करते हैं। छायावाद के कवि इस ससार को पूरी तरह सकार के उसे परमतत्व से अभिन्न देखते हैं। हिन्दी मानसिकता की विश्वदृष्टि पुनर्जागरण के सक्रमण मे जैसे पूरी तरह घूम गई हो।[41] इस प्रकार छायावाद, जिसे इन्द्रियातीत अनुभव और कल्पना लोक से जुड़ा हुआ समझा जाता था, रामस्वरूप चतुर्वेदी ने उसे नये सिरे से समझा और छायावाद में शरीर और ससार की महत्ता को प्रतिष्ठा प्रदान की। लबी कविताओं में ही नहीं वरन् छोटे-छोटे गीतों मे भी विरह, प्रेम और आनन्द के साथ सर्वत्र जागरण की चेतना स्पदित हो रही है। वे लिखते हैं कि- 'इस तरह अपने व्यक्तिगत प्रणय और राष्ट्रप्रेम की अनुभूति मे और उनके सश्लेष मे छायावाद मूलत· शक्तिकाव्य है।[42]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद पर निरन्तर किये जा रहे व्यग प्रहार से क्षुब्ध होकर समर्थक कवियों ने अपने अपर्युक्त तर्कों से उस व्यग्य प्रहार को शान्त करने का प्रयत्न किया। प्रारम्भ से ही छायावाद को रहस्यवाद सिद्ध करने की चेष्टा आलोचकों द्वारा की गई। उसे मौलिक न मानकर बाहर से उधार लिया हुआ माना गया। सभी ने छायावाद का सम्बन्ध अज्ञात, अव्यक्त, असीम जगत से स्थापित किया और समसामयिक समस्याओं से विमुख घोषित किया। लेकिन समर्थक कवि अपने प्रयास से छायावाद को कल्पना जगत से हटाकर यथार्थ की ठोस भावभूमि पर ले आने में सफल रहे। उसका सम्बन्ध देश की ज्वलन्त समस्याओ से जोड़ा और यह स्पष्ट किया कि इन कविताओं में देश मे छाई हुई निराशा को दूर करके उसके स्थान पर आशा का सन्देश भी समाहित है। छायावादी कवियों ने उपेक्षित, दलित और निम्न जाति का

आर्न्तक्रन्दन भी सुना और उस क्रन्दन की करुण पुकार को अपनी कविताओं में मुखर अभिव्यक्ति भी दी। निश्चय ही, छायावाद पूरी तरह से समसामयिक है।

जिस प्रकार छायावाद की शुरुआत विवाद के साथ हुई उसी प्रकार उसकी समाप्ति की उद्घोषणा भी विवादो से मुक्त नही रही। 'कामायनी' जैसे महाकाव्य, 'राम की शक्ति पूजा' और 'सरोजस्मृति' तथा 'तुलसीदास' जैसी लम्बी कविताओं की रचना के बाद छायावाद मे विद्यमान शक्ति को चुका हुआ मान लिया गया। छायावाद के प्रमुख कवियो ने स्वय ही छायावाद के अन्त की सूचना दी। प्रमुख कवियो मे केवल प्रसाद ही एकमात्र ऐसे कवि थे जिनकी प्रारम्भिक कविताओ मे छायावादी प्रवृत्तियाँ शिशु रूप में थी और जिनकी अन्तिम रचना कामायनी मे वही छायावादी प्रवृत्तियाँ अपनी प्रौढ़ता को प्राप्त करती है। सुमित्रानदन पन्त और निराला छायावाद का पथ छोड़कर प्रगतिवाद और जनोन्मुख रास्ता स्वीकार कर लेते हैं। महादेवी वर्मा तो छायावाद की समाप्ति के साथ अपनी काव्यगत रचनाओ से विमुख होकर पूर्णतया गद्य-क्षेत्र की ओर मुड़ जाती हैं और अपना श्रेष्ठतम् गद्य साहित्य को देती हैं। पन्त ने छायावाद का अन्त 'युगान्त' जैसी काव्य रचना से किया। उन्होंने स्वीकार किया-'छायावाद इसलिए अधिक नही रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शो का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्यबोध और नवीन विचारो का रस नहीं था।'[43] यद्यपि छायावादी काव्य द्विवेदीयुगीन काव्य प्रवृत्तियों की तुलना में आधुनिक था लेकिन वह आगे आने वाले नये युग की विचारधारा के साथ सामजस्य नही बिठा सका। इसलिए 'एक ओर वह निगूढ, रहस्यात्मक, भाव प्रधान और वैयक्तिक हो गया और दूसरी ओर केवल टेकनीक और आभरण मात्र रह गया'।[44] यद्यपि प्रारम्भ मे तो पन्त ने छायावाद पर आलोचकों द्वारा लगाए जा रहे आरोपो का उचित उत्तर दिया लेकिन बाद में स्वय उनकी विचारधारा मे ही परिवर्तन हो गया और उनकी काव्यगत प्रवृत्तियों का रूपान्तरण प्रगतिवाद में हो गया। कालान्तर में महादेवी ने भी छायावाद में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव पाया और उन्होंने भी छायावाद को अपूर्ण घोषित किया। वे लिखती हैं कि— 'छायावाद के कवि को एक नए सौन्दर्य लोक में ही वह भावात्मक दृष्टिकोण मिला, जीवन में नही, इसी से वह अपूर्ण है।'[45] इसके बाद उस समय की पत्रपत्रिकाओं मे छायावाद का अन्त मान लिया गया और इसकी अवनति के कारण गिनाए जाने लगे। डा0 देवराज ने तो 'छायावाद का पतन' शीर्षक से एक पुस्तक ही लिख डाली। उन्होंने छायावाद के पतन के कारणो में शब्दमोह, चित्रमोह, कल्पना-मोह, केन्द्रपगामी व्यजना प्रवृत्ति, असामजस्य विचारगत और रागात्मक, वास्तविकता पर बलात्कार, मूड की कविता तथा लोकसवेदना का तिरस्कार की गणना भी है। इलाचन्द्र जोशी ने भी विशाल भारत में 1940 मे एक लेख छपवाया, जिसका शीर्षक था-'छायावादी कविता का विनाश क्यो हुआ?' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें यह मान लिया गया है कि छायावाद समाप्त हो चुका है। वे

लिखते हैं कि- 'तीन-चार वर्ष पहले ही 'युगान्त' हो चुका है और छायावादी कविता का मृत शरीर पड़ा-पड़ा सड़ रहा है, यद्यपि उसकी प्रेत-आत्मा (प्रेतात्मा) कभी-कभी अपनी झलक दिखाकर उसके प्रेमियो को मोह मे डाल जाती है।'[46] इलाचन्द्र जोशी ने छायावादी कविता की उत्पत्ति नपुसकता में मानी, जिसका अहमिका और विलासिता के अस्वास्थ्यकर रस से पोषण हुआ और उच्छृखलता के साथ जिसका अन्त प्रगतिवाद में हो गया। इलाचन्द्र जोशी छायावादी कविताओं में प्राणो की गहरी अनुभूति और जीवन की मार्मिक वास्तविकता के अनुभवो का पूरी तरह से अभाव पाते है। इलाचन्द्र जोशी ने अपने समर्थन में पत को उद्धृत किया है- वे लिखते हैं कि— 'पतजी ने अपने युगान्त द्वारा इस बात की एक प्रकार से स्पष्ट घोषणा कर दी है कि छायावाद की कोटि की कविता का युग अब बीत चला। युगान्त के कवरपृष्ठ मे छायावाद के मृतशरीर का चित्र अकित है। अब सब साहित्यिको को चाहिए कि उस लाश को, जो अभी तक पड़ी हुई है और सारे वातावरण को अपनी उत्कट दुर्गन्ध से गन्दा कर रही है, शीघ्र हा जला दें। छायावाद की मृत्यु के लिए रोने और उसके मृत शरीर को घेरे रहने से अब कोई लाभ नही है।'[47] इलाचन्द्र जोशी ने भी छायावाद का पर्यवसान प्रगतिवाद में माना लेकिन वे इस प्रगतिवाद से भी सतुष्ट नही हैं क्योकि वह छायावाद से भी अधिक उच्छृखल है। वे लिखते हैं कि- 'रोना तो अब इस बात का है कि छायावाद के बाद जो उसका वशधर (प्रगतिवाद) साहित्य की राजगद्दी पर आसीन हुआ है, वह अपने बाप से कई गुना अधिक जालिम, अत्याचारी और उच्छृखल निकला है।[48]

इस प्रकार छायावाद की मृत्यु की उद्घोषणा के बाद अब छायावाद को जीवित सिद्ध करने के प्रयत्न भी प्रारम्भ हो गए और कामेश्वर शर्मा ने अपने लेख 'छायावाद जिन्दा है' में छायावाद को जीवित माना । उन्होंने अपने लेख को तीन भागों में बाटा है- 1 छायावाद जिन्दा है तो क्यों? 2 छायावाद जिन्दा है तो कैसे? 3 छायावाद जिन्दा है तो कहाँ ? इसमे प्रथम प्रश्न का उत्तर है कि छायावाद प्रगतिवाद के अन्तर्गत विद्यमान, उसकी छत्रछाया मे पलकर आज भी जीवित है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में उन्होने छायावाद की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं की ओर सकेत किया है और प्रकृति में विश्वात्मा की सत्ता का अनुभव, उसका शब्द चयन, उसकी बारीकी और उसमें विद्यमान कल्पना वैभव और आत्मनिवेदन के बीच उसे जिन्दा माना है। तीसरे प्रश्न का उत्तर है कि 'प्रत्येक मानव के हृदय में बैठा हुआ स्वच्छदतावाद, उसकी प्रत्येक धड़कन के साथ छलक उठने वाली भावुकता, उसकी धमनियों के रक्त में विहार करने वाली सस्कृति के जीवाणु ही छायावाद के निवास स्थान हैं।' [49]

छायावाद को अपने जन्म से ही उपेक्षित जीवन बिताना पड़ा। यद्यपि छायावाद ने अपने जन्म के

बाद शीघ्र ही अपने अन्दर विद्यमान नए-नए भावों, विचारों, नई काव्यवस्तु, नई भाषा, नए शिल्प, नए छन्द, नए रूप आदि के द्वारा तत्कालीन साहित्य जगत का ध्यान अपनी ओर खीचा लेकिन परम्परागत काव्यगत मान्यताओं के साथ सगति न बिठा सकने के कारण उसकी तीव्र आलोचना हुई। परन्तु इस आलोचना के कारण उठे हुए वाद-विवाद के कारण उसका स्वरूप निखरता ही गया और उसने समसामयिक परिस्थितियों से साम्य भी स्थापित किया। अनेक पत्रपत्रिकाओं में छायावादी कवियों के कार्टून छापे गए। छायावादी कविता पर हास्यव्यग्य लिखे गए जैसे जुलाई 1930 की 'सरस्वती' की पृष्ठ सख्या -109 में 'हास्य और विनोद' शीर्षक के अन्तर्गत छायावादी कविता का मजाक उड़ाया गया है। इसी प्रकार 'चाँद' में भी छायावादी कविता पर एक पैरोडी 'कविकुल-कुमुद-कलाधर-कविवर 'श्री घोंघाराम' के नाम से छपी है—

आह! वह पीड़ा का ससार!
किस अनन्त की ओर चल पडा लिए-
वेदना-भार!
छेड़ कर मेरे हृततन्त्री के तारो को-
विकाल उच्छवासो की आँधी मे,
निर्दय उस निर्मम ने,
कानों में पहुँची नही,
नीरवध्वनि—मूक भाषा का
वह शून्य स्तब्ध स्वर!
हाय मैं पुकारता ही रह गया!!!
मेरा वह सोने का ससार!
शून्य कुटी मे जिसे सजाया था मैंने
आँसू की लड़ियों से!
उसे उड़ा ले गया झण्झावात!

अब मैं क्या करूँ?

क्या खाऊँ, क्या पिऊँ?

क्या ले परदेश जाऊँ?[50]

छायावाद को लेकर किए गए इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि उसके जन्म से ही विवादों की एक अन्तहीन श्रृखला जारी है, जिस पर बहस के माध्यम से निरन्तर सवाद स्थापित करने की कोशिश की जा रही है। यद्यपि छायावाद नाम द्विवेदीयुगीन आलोचको द्वारा उपहास के रूप मे दिया गया था लेकिन इस नाम ने तत्कालीन साहित्यजगत मे अपनी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध की। प्रारम्भिक आलोचकों ने इसे सीधे-सीधे टैगोर की कविता का अनुकरण माना और छायावाद का समावेश रहस्यवाद में कर दिया। यदि इसी समय प्रसाद, पन्त और महादेवी छायावाद के समर्थन में उठ खड़े नही होते तो छायावाद निश्चय ही उस महत्ता से वचित रह जाता, जो उसे आज प्राप्त है और जो आगे आने वाले काव्यान्दोलनो का आधार बनता है। जयशकर प्रसाद ने सर्वप्रथम छायावाद का सटीक अर्थ प्रस्तुत किया और रहस्यवाद की परम्परा को पूरी तरह से भारतीय माना। यद्यपि प्रसाद द्वारा छायावाद शब्द की, की गई व्याख्या से सभी लोग सन्तुष्ट हो गए हों, ऐसा नही था लेकिन उनके द्वारा की गई छाया शब्द की व्याख्या ने बिल्कुल ठीक अर्थ की व्यजना अवश्य की, इसमे सन्देह नही। पन्त ने भी अपनी पुस्तक 'पल्लव' की भूमिका मे छायावाद और उसकी भाषा खड़ी बोली को लेकर उठायी गयी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। महादेवी ने भी छायावाद को पूर्णतया भारतीय परम्परा का स्वाभाविक विकास माना। छायावाद की लगभग सभी प्रवृत्तियों का मूल उद्‌गम वेद, उपनिषद और सस्कृत साहित्य में मिल जाता है। छायावाद का अभिव्यजना शिल्प भी, जो उस समय आलोचको को चमत्कृत कर रहा था, उसके बीज भी रीतिमुक्त कवियों जैसे घनानद, ठाकुर आदि की कविताओं में मिल जाते हैं।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं को पलटने पर आज यह आश्चर्य होता है कि कैसे छायावादी आलोचना-प्रत्यालोचना के उस दौर में स्थिर रह सके। पत और महादेवी को यदि छोड़ भी दे, जिनके पास कम से कम जीवनयापन के साधन तो सुलभ थे लेकिन 'कामायनी' जैसे महाकाव्य की रचना करने वाले प्रसाद और 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'सरोजस्मृति' जैसा विश्वसाहित्य मे एकमात्र गीत लिखने वाले निराला की मन स्थिति को समझा जा सकता है। इन कवियों का सघर्ष दोहरा था। एक ओर तो कविता के परम्परागत ढाँचे को तोड़कर अपनी कविता को प्रतिष्ठा दिलवाना और दूसरी ओर जीवनयापन के लिए अर्थ की समस्या से जूझना। निराला छायावाद मे पदार्पण 1916 में लिखी कविता 'जूही की कली' से करते हैं-

अब मैं क्या करूँ?

क्या खाऊँ, क्या पिऊँ?

क्या ले परदेश जाऊँ?[50]

छायावाद को लेकर किए गए इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि उसके जन्म से ही विवादो की एक अन्तहीन श्रृखला जारी है, जिस पर बहस के माध्यम से निरन्तर सवाद स्थापित करने की कोशिश की जा रही है। यद्यपि छायावाद नाम द्विवेदीयुगीन आलोचको द्वारा उपहास के रूप मे दिया गया था लेकिन इस नाम ने तत्कालीन साहित्यजगत में अपनी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध की। प्रारम्भिक आलोचको ने इसे सीधे-सीधे टैगोर की कविता का अनुकरण माना और छायावाद का समावेश रहस्यवाद मे कर दिया। यदि इसी समय प्रसाद, पन्त और महादेवी छायावाद के समर्थन मे उठ खड़े नही होते तो छायावाद निश्चय ही उस महत्ता से वचित रह जाता, जो उसे आज प्राप्त है और जो आगे आने वाले काव्यान्दोलनों का आधार बनता है। जयशकर प्रसाद ने सर्वप्रथम छायावाद का सटीक अर्थ प्रस्तुत किया और रहस्यवाद की परम्परा को पूरी तरह से भारतीय माना। यद्यपि प्रसाद द्वारा छायावाद शब्द की, की गई व्याख्या से सभी लोग सन्तुष्ट हो गए हों, ऐसा नहीं था लेकिन उनके द्वारा की गई छाया शब्द की व्याख्या ने बिल्कुल ठीक अर्थ की व्यजना अवश्य की, इसमें सन्देह नहीं। पन्त ने भी अपनी पुस्तक 'पल्लव' की भूमिका में छायावाद और उसकी भाषा खड़ी बोली को लेकर उठायी गयी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। महादेवी ने भी छायावाद को पूर्णतया भारतीय परम्परा का स्वाभाविक विकास माना। छायावाद की लगभग सभी प्रवृत्तियों का मूल उद्गम वेद, उपनिषद और सस्कृत साहित्य में मिल जाता है। छायावाद का अभिव्यजना शिल्प भी, जो उस समय आलोचकों को चमत्कृत कर रहा था, उसके बीज भी रीतिमुक्त कवियो जैसे घनानद, ठाकुर आदि की कविताओ में मिल जाते हैं।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ को पलटने पर आज यह आश्चर्य होता है कि कैसे छायावादी आलोचना-प्रत्यालोचना के उस दौर में स्थिर रह सके। पत और महादेवी को यदि छोड़ भी दें, जिनके पास कम से कम जीवनयापन के साधन तो सुलभ थे लेकिन 'कामायनी' जैसे महाकाव्य की रचना करने वाले प्रसाद और 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'सरोजस्मृति' जैसा विश्वसाहित्य मे एकमात्र गीत लिखने वाले निराला की मन स्थिति को समझा जा सकता है। इन कवियों का सघर्ष दोहरा था। एक ओर तो कविता के परम्परागत ढाँचे को तोड़कर अपनी कविता को प्रतिष्ठा दिलवाना और दूसरी ओर जीवनयापन के लिए अर्थ की समस्या से जूझना। निराला छायावाद में पदार्पण 1916 में लिखी कविता 'जूही की कली' से करते हैं-

"विजन वन वल्लरी पर,

सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न"[51]

और 'सरोज स्मृति,' जिसका प्रकाशन 1935 में होता है, मे स्वीकार करते हैं-

'अस्तु, मैं उपार्जन को अक्षम

कर नही सका पोषण उत्तम,' [52]

जयशकर प्रसाद भी जीवन भर आर्थिक कठिनाइयों से जूझते रहते हैं। महादेवी वर्मा का सघर्ष बिल्कुल भिन्न था। वह वेद और सस्कृत साहित्य का अध्ययन करना चाहती थी लेकिन स्त्रियों का वेदाध्ययन तत्कालीन समाज को स्वीकार्य नहीं था। महादेवी लिखती है कि, "कल्पना कीजिए, कितना कष्ट, कितना सघर्ष झेला होगा, लेकिन सघर्ष ने मुझे कभी पराजित नही किया। हार नहीं मानी मैने।"[53] "हार नही मानी मैंने ' यह पक्ति समस्त छायावादी कवियों पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। यह हार न मानने की ही प्रवृत्ति थी जो आलोचना-प्रत्यालोचना के उस दौर में उन्हे शक्ति देती है कि वह अपनी पुस्तको में लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ लिखकर छायावाद को स्थापित करें अथवा आलोचकों द्वारा उठाए गए प्रश्नों का समाधान करें। अन्त में छायावाद के सुधी आलोचक रामचन्द्र शुक्ल भी यह मानने के लिए विवश हो जाते हैं कि -"छायावाद की शाखा के भीतर धीर-धीरे काव्यशैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें सन्देह नही।"[54]

छायावाद की आलोचना के सन्दर्भ मे हमने देखा कि प्राय सभी आलोचक रामचन्द्र शुक्ल द्वारा की गई आलोचना को प्रमुख मानकर उसी का विस्तार करते रहे। कल्पना की बहुलता, रहस्यात्मक प्रवृत्ति, नाना अर्थभूमियो पर काव्य का प्रसार न होने को दोषों के रूप में गिनाया गया। सम्भवत इसका प्रमुख कारण आलोचना के विकसित मानदण्डों का अभाव था। आधुनिक आलोचकों में रामस्वरूप चतुर्वेदी उसी सामग्री से छायावाद को एक नई दृष्टि से देखते हैं और उसे 'शक्ति काव्य' के रूप मे प्रतिष्ठा दिलाते हैं तथा उसे भारतीय पुनर्जागरण की परम्परा से जोड़ते हैं।

छायावाद का उद्भव, नामकरण, उसका अर्थ और प्रवर्तक कवि जिस प्रकार विवाद के घेरे मे रहे, उसी प्रकार उस के अत की उद्घोषणा भी पत्रपत्रिकाओ मे चर्चा का विषय बनी रही। लेकिन एक प्रश्न विचारणीय है कि कोई भी प्रवृत्ति, वाद अथवा विचार अचानक प्रकट नहीं होता, वरन् वह परम्परा से ही निकलता है। परम्परा से कटकर वह कुछ समय तक तो आकृष्ट कर सकता है लेकिन इतनी प्रभूत मात्रा में साहित्य का सृजन परम्परा और अपनी सस्कृति से जुड़कर ही हो सकता है, जैसा कि छायावाद के प्रमुख कवि

स्पष्ट भी करते हैं। इसीलिए छायावाद का अत करने और फिर अपने लेखो में उसे जीवित करने के आलोचकों द्वारा किए जा रहे प्रयास निरर्थक हैं। छायावाद एक विचार दर्शन है जो कुछ परिवर्तन के साथ आगामी काव्यान्दोलनो से जुड़ जाता है। चूँकि कविता अथवा साहित्यसृजन सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है, इसलिए छायावाद का प्रगतिवाद में रूपान्तरण को उस समय की सामाजिक परिस्थितियो से जोड़कर देखना चाहिए। विश्व के पटल पर मार्क्सवाद और साम्यवाद का उदय, जिसमें एकमात्र मानव को ही प्रमुखता मिलती है और मनुष्य के हितों को समाज के साथ जोड़ दिया जाता है। इस विचारधारा का प्रभाव भारतीय साहित्यकारो पर भी पड़ता है और सन् 1936 मे 'प्रगतिशील लेखक सघ' की स्थापना होती है तथा छायावाद के प्रमुख कवि पत और निराला स्वय उस ओर झुक जाते हैं। महादेवी काव्यक्षेत्र में तो अवश्य छायावाद मे ही सीमित रहती हैं। उन्होने छायावाद से आगे आने के लिए किसी राह का निर्माण नही किया लेकिन वे गद्य क्षेत्र मे उन्हीं प्रवृत्तियों को स्थान देती हैं जिन प्रवृत्तियो को पत और निराला काव्य में प्रमुखता दे रहे थे। इस प्रकार प्रगतिवाद और उसके आगे आने वाले प्रयोगवाद की कविताओ में छायावाद की ही आत्मा समाई हुई है।

* * *

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1 हिन्दी सहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0स0 334

2 छायावाद की काव्य साधना, प्रो0 क्षेम एम0ए0, पृ0स0-15

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0स0-461

4 छायावाद, नामवर सिह, पृ0स0 12

5 सरस्वती, दिसम्बर 1921, पृ0स0 338

6 आजकल के हिन्दी कवि और कविता, महावीर प्रसाद द्विवेदी पत्रिका-सरस्वती, पृ0स0 526

7 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0स0 442

8 छायावाद, स0 उदयभानु सिह, पृ0स0-95

9 अवन्तिका 'काव्यालोचनाक' 1954 पृ0स0 190

10 छायावाद पुनर्मूल्याकन, सुमित्रानदन पत, पृ0स0 12

11 छायावाद पुनर्मूल्याकन, सुमित्रानदन पत, पृ0स0 14

12 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 57

13 विचार और अनुभूति, डा0 नगेन्द्र, पृ0स0 53

14 हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0स0 174

15 देखा-परखा, इलाचन्द्र जोशी, पृ0स0-22

16 आधुनिक कविता का मूल्याकन, इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0-188

17 अवन्तिका 'काव्यालोचनाक' 1954, पृ0स0 188

18 अवन्तिका 'काव्यालोचनाक' 1954, पृ0स0 188

19 अवन्तिका 'काव्यालोचनाक' 1954, पृ0स0 190

20 अवन्तिका 'काव्यालोचनाक' 1954, पृ0स0 197

21 सरस्वती, भाग-28, सख्या-5 ले0 'आजकल के हिन्दी कवि और कविता' लेखक-महावीर प्रसाद द्विवेदी पृ0स0 527

22 सरस्वती, भाग-28, सख्या-5 आजकल के हिन्दी कवि और कविता, पृ0स0 533

23 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0स0 453

24 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0स0 453

25 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0स0 444

26 काव्य मे रहस्यवाद 'चिन्तामणि -2', रामचन्द्र शुक्ल, पृ0स0-79

27 काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, जयशकर प्रसाद, पृ0स0 144

28 काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, जयशकर प्रसाद, पृ0स0 148

29 काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, जयशकर प्रसाद, पृ0स0 149

30 छायावाद पुनर्मूल्याकन, सुमित्रानदन पत, पृ0स0 14

31 छायावाद पुनर्मूल्याकन, सुमित्रानदन पत, पृ0स0 18

32 छायावाद पुनर्मूल्याकन, सुमित्रानदन पत, पृ0स0 26

33 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा पृ0स0 58

34 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा पृ0स0 58

35 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा पृ0स0 61

36 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा पृ0स0 65

37 छायावाद और रहस्यवाद, गगाप्रसाद पाण्डेय, पृ0स0-5

38 छायावाद और रहस्यवाद, गगाप्रसाद पाण्डेय, पृ0स0-12

39 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0सं0 129

40 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0स0 131

41 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0स0 133

42 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0स0 135

43 आधुनिक कवि, पत, पृ0स0-11

44 आधुनिक कवि, पत, पृ0स0-12

45 आधुनिक कवि, महादेवी वर्मा, पृ0स0-22

46 विशाल भारत, अक्टूबर, 1940, पृ0स0 372

47 विशाल भारत, अक्टूबर, 1940, पृ0स0 374

48 विशाल भारत, अक्टूबर, 1940, पृ0स0 374

49 छायावाद और प्रगतिवाद, देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ0स0 126

50 चाँद, जुलाई, 1931, पृ0स0 318

51 परिमल, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृ0स0 143

52 प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ, प्रस्तुतकर्ता-वाचस्पति पाठक, पृ0स0 1

53 महादेवी साहित्य समग्र-3, स0 निर्मला जैन, पृ0स0 411

54 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0स0 445

* * *

अध्याय-तृतीय

महादेवी के काव्य का विश्लेषणात्मक परिचय

●

1 भूमिका

2 महादेवी का काव्य क्षेत्र मे प्रवेश

3 काव्य कृतियाँ परिचय

3 1 नीहार

3 2 रश्मि

3 3 नीरजा

3 4 साध्यगीत

3 5 दीपशिखा

3 6 बग-दर्शन

3 7 सप्तपर्णा

3 8 हिमालय

छायावादी कविता पर हमारे देश के राष्ट्रीय जनजागरण का तो प्रभाव पड़ा ही, साथ ही अग्रेजों के शासन के दौरान पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति के साथ सम्पर्क ने भी छायावाद की अलख को जगाने मे योगदान दिया। जिस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन और जन-जागृति ने हमारे बाह्य जीवन और कर्म को सचालित किया, उसी प्रकार उस समय प्रवाहित स्वच्छन्तदतावादी धारा ने आन्तरिक भावो की अभिव्यक्ति पर बल दिया। अन्य विकसित देशो के साथ भी आवागमन के साधनो के सुलभ हो जाने के कारण मध्यवर्गीय समाज मे व्यक्ति की जड़ हो चुकी स्थिति में भी बदलाव आया। इससे पूर्व मध्यवर्गीय व्यक्ति के केवल कर्तव्यों की ही बात होती थी, लेकिन अब उस व्यक्ति के अधिकारो का भी प्रश्न उठने लगा और इस प्रकार साहित्य में व्यक्तिवाद की प्रबलता और राष्ट्रीय चेतना का उदय लगभग साथ-साथ हुआ। शिवदान सिंह चौहान का मत है, "नई छायावादी कविता का व्यक्तित्वाद असामाजिक पथो पर न भटककर राष्ट्रीय नवजीवन की उदात्त आकाक्षा का गम्भीर मर्मवेदन लेकर मुखरित हुआ।"[1] इन छायावादी कवियो का व्यक्तिवाद निजी सुख दुखो से ऊपर उठकर जाति, वर्ग, वर्ण, देश और समाज के बन्धनो को तोड़ता हुआ विश्वबन्धुत्व और मानवतावाद के साथ भौतिक और आध्यात्मिक विकास की सम्भावनाओ को भी व्यक्त कर रहा था। इन उदात्त भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए इन कवियों ने प्रगीत को अपना माध्यम बनाया। इस प्रकार छायावादी कवियो का रुदन-क्रन्दन व्यक्तिगत होने के साथ-साथ पराधीन, रुढियो से ग्रस्त लेकिन सघर्ष में लगे हुए भारतीय समाज का भी रुदन-क्रन्दन था। 'मैंने मै शैली अपनाई' कविता मे व्यक्त 'मै' प्रत्येक भारतवासी का 'मैं' बन गया। इसीलिए कवि ने अपनी सूक्ष्म से सूक्ष्म भावानुभूतियों को व्यक्त करने के लिए लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत योजना शैली को स्वीकार किया जिससे कविता में प्रयुक्त सकेत ओर प्रतीक सभी के लिए सम्प्रेषणीय बन सके। निराला की निम्न पक्तियाँ सभी छायावादी कवियो द्वारा सूत्रवाक्य के रूप ग्रहण की जाने लगीं।

"मैंने मै शैली अपनाई
देखा एक दुखी निज भाई

दुख की छाया पड़ी हृदय मे
झट उमड़ वेदना आई।"[2]

इसमे निश्चय ही निजी सुख-दुखों के साथ-साथ 'अन्य व्यक्तियों के सुख-दुखों की अनुभूति की अभिव्यक्ति को वाणी मिली है।

हिन्दी साहित्य के परम्परा से चले आ रहे रूप को स्वीकार करने वाले आलोचक प्रारम्भ मे तो प्रसाद, निराला और पत की कविताओं की काव्यभूमि को सहन करते रहे लेकिन जब उन्होने परम्परा प्रचलित मार्ग को छोड़कर नयी भाषा, नये शिल्प को छायावादी कविता के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया तो रुढि में बँधे हुए आलोचको को यह स्वीकार नही हुआ ओर उन्होंने तत्कालीन पत्रिकाओं में इस कविता का जमकर विरोध करना शुरू कर दिया। जिसकी शुरुआत महावीर प्रसाद द्विवेदी ने की लेकिन बाद में रामचन्द्र शुक्ल भी विरोध करने वालो मे सम्मिलित हो गये। यद्यपि उन्होने बाद मे स्वीकार किया—"छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्यशैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमे सन्देह नहीं। उसमें भावावेश की आकुल व्यजना, लाक्षणिक वैचित्य, मूर्तप्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमलपद विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप सघटित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी।"[3] और इस प्रकार विरोध के बावजूद छायावादी कविता अपनी पहचान बनाती जा रही थी। शिवदान सिंह चौहान की टिप्पणी भी इस सम्बन्ध मे ध्यान देने योग्य है—"छायावादी कविता के तथाकथित 'प्रेमगीत' वस्तुत सामन्तकालीन रूढि-जर्जर व्यवस्था, नैतिकता और मानव सम्बन्धो के विरुद्ध असन्तोष और विद्रोह के गीत हैं और मानव सम्बन्धो को अधिक व्यापक मानवीय आधार पर सगठित करने की युगीन आकाक्षा के प्रतिनिधि है।"[4]

इस पृष्ठभूमि के अन्तर्गत जब महादेवी वर्मा ने हिन्दी काव्य क्षेत्र मे प्रवेश किया तब तक प्रसाद, निराला और पत की रचनाओं के द्वारा छायावादी कविता गौरवपूर्ण स्थान पर अधिष्ठित हो चुकी थी। ये तीनो कवि अपने-अपने काव्यग्रन्थों और उन पर लिखी हुई भूमिकाओं के द्वारा छायावाद के व्याख्याता बन चुके थे। इस पृष्ठभूमि ने महादेवी की मनोरचना को निर्मित करने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। यद्यपि महादेवी ने काव्यरचना के प्रयास बालपन से ही प्रारम्भ कर दिये थे। छ सात वर्ष की आयु में ही माँ द्वारा गाये गये भजनों एव सूरदास एव मीराबाई के पदो ने उन्हे अपनी ओर आकृष्ट करना प्रारम्भ कर दिया था। माँ द्वारा शीतकाल में सुबह चार बजे उठकर ठाकुरजी को नहलाने की उन पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि उन्होंने तुकमिलाई—

"माँ के ठाकुर जी भोले हैं

ठडे पानी में नहलाती

ठडा चदन इन्हें लगाती

इनका भोग हमें दे जाती

फिर भी नहीं कभी बोले हैं

माँ के ठाकुर जी भोले है।"[5]

इस प्रकार तुक मिलाते हुए इनके कविता लिखने के बाल प्रयास जारी रहे। जो पडित जी उन्हे पढाने आते थे उन्होंने भी ब्रजभाषा में ही कविता लिखवानी शुरू कर दी। महादेवी प्रयाग आने तक ब्रजभाषा मे ही कविता रचती रहीं। यद्यपि ब्रजभाषा में काव्यरचना करने पर भी वे उस भाषा के परम्परागत विषयो को स्वीकार नहीं करती हैं। वे अपनी उस समय की लिखी हुई एक कविता द्वारा इस बात को निम्न शब्दो मे स्पष्ट भी करती हैं—"बाँधे मयूर वन के डोरने में हिंडोरन पर नित फूरियो" और आए हैं "शीतल मद बयार तो अक दुलार कबूलियो' और "भौर के गीतन पर तुम रीझियो तितली के नर्तन पर फिर भूलियो, फूल तुम्हें तब ही कह हैं, जब काँटन में धसि के हँसि फूलिहो,' ये मेरे बहुत बचपन की कविता है।"[6] यह कविता ब्रजाभाषा में लिखी जाने वाली पारम्परिक कवताओं से किंचित भिन्न है। तुक मिलाने के साथ-साथ उन्होंने समस्यापूर्तियाँ प्रारम्भ कर दी और अपनी काव्य क्षमता को समर्थ बनाने का प्रयास करती रहीं। महादेवी स्वय स्वीकार करती हैं—"उस समय की अवस्था को देखते हुए मुझे आश्चर्य होता है कि मैंने कैसे लिखा होगा। लेकिन लिखा है मैंने। भाषा उसकी ब्रज है किन्तु जो कहा है मैने, वही आज तक कहती हूँ। आगे चलकर लगता है, वही रास्ता था, वही लक्ष्य था, वही नियति थी मेरी।"[7]

समस्यापूर्तियो का यह प्रयास प्रयाग आने तक चलता रहा, वे स्वय स्वीकार करती हैं कि—"सुभद्राजी जब हसने लगी तब ही समस्यापूर्ति समाप्त हुई। क्योकि यहाँ कोई समस्यापूर्ति नहीं करता था।"[9] इसके पश्चात महादेवी ने खड़ी बोली मे लिखना शुरू किया। प्रयाग मे आकर उन्हें कुछ मुक्त वातावरण मिला और समसामयिक राष्ट्रीय जनजागरण से प्रभावित होकर उन्होने अनेक कविताएँ लिखी जो विद्यालय के वातावरण में खो जाने के लिए ही लिखी गई थी। इनमे 'भारतजननी भारतमाता', 'बेड़ी की झन-झन में वीणा की लय हो, सरिता सरोवर मे बहता प्रलय हो', 'हे श्रृगाररूपी अनुरागमयी भारत जननी भारतमाता', 'सिर देकर हमने आज खरीदी है ये ज्वाला' आदि गीत प्रमुख हैं। विद्याध्ययन को समाप्त करने के पश्चात जब महादेवी ने हिन्दी काव्य जगत मे 'नीहार' के माध्यम से प्रवेश किया, तब छायावादी प्रवृत्तियाँ अपने पूर्ण उत्कर्ष काल में थीं और इनसे अप्रभावित रहना महादेवी के लिए आसान भी न था क्योकि इसी वातावरण ने उनकी मानसिक सरचना की बनावट मे योगदान दिया था। महादेवी के सभी काव्यग्रन्थ छायावादी प्रवृत्तियों को परिपुष्ट ही करते हैं। महादेवी का काव्य ससार छायावाद से शुरू होकर छायावाद मे ही सीमित हो जाता है। इनमें जहाँ तक ओर वैयक्तिक सुखदुखों को राष्ट्रीय जनजागरण से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। वहीं दूसरी ओर तत्युगीन प्रवृत्ति के अनुसार वैयक्तिक भावों को अज्ञात, अव्यक्त प्रिय पर आरोपण करके रहस्यवाद की भी सृष्टि की गई है। छायावाद के सभी कवियो के समान प्रकृति महादेवी की भी चिर-सहचरी रही है।

महादेवी की जिन रचनाओं का अनुशीलन हम कर रह हैं। वे इसी पृष्ठभूमि की देन कहीं जा सकती हैं।

नीहार –

'नीहार' महादेवी की काव्ययात्रा का प्रथम पड़ाव है, जिसका प्रकाशन सन् 1930 में हुआ। 'नीहार' के अन्तर्गत सन् 1926 से सन् 1929 के मध्य लिखी गई कविताएँ सग्रहीत है। 'नीहार' के प्रकाशन द्वारा महादेवी ने हिन्दी साहित्य जगत में अपने पदार्पण की घोषणा की और जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के बाद छायावाद की सशक्त उत्तराधिकारिणी होने के लिए अपनी दावेदारी पेश की, जिसे समस्त साहित्यिक जगत ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। 'नीहार' की रचना के समय तक छायावाद और रहस्यवाद को लेकर साहित्य जगत में भ्रम की स्थिति बनी हुई थी। जिसका सकेत अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध द्वारा लिखे 'नीहार' के परिचय में मिलता है। वे लिखते है कि—"स्वय छायावादी-कवि अब तक इस बात को निश्चित नहीं कर सके, कि वे अपनी नूतन प्रणाली की कविताओ को छायावाद कहे अथवा रहस्यवाद।"[9] इस समय तक काव्य क्षेत्र का प्रसार अनेक भावभूमियों में हो चुका था अत उन सबका अन्तर्भाव केवल छायावाद और रहस्यवाद में नहीं हो सकता। यद्यपि इस समय तक छायावाद आलोचना का शिकार बना हुआ था लेकिन 1930 तक छायावाद मे पाई जाने वाली स्निग्धता, मनोरमता और प्राञ्जलता के कारण इसे सहृदयों की स्वीकृति मिलना भी प्रारम्भ हो गई थी। जिसका प्रमाण द्विवेदीयुग के कवि हरिऔध द्वारा सर्वथा नवोदित कवयित्री महादेवी वर्मा की पुस्तक का परिचय लिखने में मिलता है। हरिऔध ने 'नीहार' को महादेवी का 'आदिम ग्रन्थ' मानते हुए भी यह स्वीकार करते है कि—"ग्रन्थ सर्वथा निर्दोष नहीं, किन्तु इसमे अनेक इतनी सजीव और सुन्दर पक्तियाँ है, कि उनके मधुर प्रवाह मे उधर दृष्टि जाती ही नहीं। प्रफुल्ल पाटल प्रसून में काँटे होते हैं, हों, किन्तु उनकी प्रफुल्लता और मनोरजनकता ही मुग्धकारिता की सम्पत्ति है। वास्तव में बात यह है कि ग्रन्थ की भावुकता और मार्मिकता उल्लेखनीय है, उसका कोमल शब्द-विन्यास भी अल्प आकर्षक नहीं।"[10] प्रियप्रवास जैसे महाकाव्य के रचयिता अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा नीहार का परिचय लिखा जाना ही मानो भविष्य में छायावाद और छायावाद के अन्तर्गत महादेवी के स्थान को सुनिश्चित कर देता है। यद्यपि डा भालचन्द्र तैलग 'नीहार' को महादेवी का आदिग्रन्थ न मानकर प्रथमग्रन्थ मानना अधिक उचित समझते हैं। वे लिखते हैं कि—"छायावाद की भावभूमि, वैचारिक भूमि, नई भास्वर चेतना और उसका सास्कृतिक परिवेश स्पष्ट सूचित करता है कि 'नीहार' को सुश्री महादेवी वर्मा का आदिम ग्रन्थ नहीं, उनकी प्रथम रचना मानना होगा।"[11]

'नीहार' महादेवी के जीवन के प्रारम्भिक दिनों की रचना है, जिसमें अनुभूति ही प्रधान है और चिन्तन को अभी उतना महत्व नही मिला है। 'नीहार' अपने नाम के अनुरूप सर्वत्र एक धुधले वातावरण की सृष्टि करता है। इसमें महादेवी की अनुभूतियाँ एव मनोभाव अपना स्वरूप निर्माण करते हुए जान पड़ रहे हैं।

महादेवी स्वय स्वीकार भी करती हैं कि—"नीहार के रचनाकाल मे मेरी अनुभूतियों मे वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।"[12] महादेवी की कविताओं मे प्रारम्भ से ही युगीन प्रवृत्ति के अनुसार दार्शनिकताकी पृष्ठभूमि का आश्रय ग्रहण किया गया है, साथ ही रहस्य, विस्मय और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को जान लेने की उत्कट जिज्ञासा भी बार-बार अपनी झलक दिखाती है। वे लिखती है कि—

"तुम्हें भेजा किसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार?"[13]

'नीहार' में महादेवी सम्पूर्ण प्रकृति में एक नई सौन्दर्य चेतना के दर्शन करती हैं एवम् उसके कार्यव्यापारो मे सर्वत्र एक अव्यक्त रहस्यमय सत्ता का अनुभव करती है। 'नीहार' मे सर्वत्र कौन, कहाँ आदि के द्वारा एक जिज्ञासा व्यक्त हो रही है। सूर्य की स्वर्णिम आभा सर्वत्र बिखर रही है और इस आभा में भी कवयित्री कौतूहल के दर्शन करती हैं और पूछ बैठती हैं कि—

"छिपा कर लाली में चुपचाप
सुनहला प्याला लाया कौन?"[14]

प्रकृति मे रहस्यात्मक सत्ता के दर्शन के साथ महादेवी उसके उद्दीपन रूप का भी चित्रण करती हैं लेकिन वहाँ भी अन्त तक आते-आते रहस्यमयी जिज्ञासा ही प्रधान हो जाती है। प्रकृति के उद्दीपन रूप के उदाहरण स्वरूप निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

"घोरतम छाया चारों ओर
घटाये घिर आई घनघोर,"[15]

'नीहार' की कविताओ में महादेवी अत्यन्त अन्तर्मुखी रही है। उन्हें वेदना, सताप और वियोगावस्था के प्रति अत्यन्त प्रेम है। यहाँ तक कि वे उस लोक मे रहने को तैयार नहीं होती जिसमें वेदना और अवसाद नहीं है। यदि प्रिय को करुणा के उपहार के रूप में वेदनाहीन अमरों का लोक भी मिलता हो तो वह भी उन्हें स्वीकार्य नही और वे कहती हैं—

"रहने दो हे देव! अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।"[16]

यद्यपि राम विलास शर्मा नीहार की कविताओं के विषय में लिखते हैं कि—'नीहार' की कविताएँ इसी विरहिन के आँसू हैं। विरह की पीड़ा ने उनमें एक अपूर्व सौन्दर्य को जन्म दिया है।"[17] लेकिन उनकी कविताओं में पीड़ा एव वेदना के होते हुए भी निराशा नहीं है। उन्हें यह वेदना अवश्य प्रिय है और वह यह कामना भी करती हैं कि उनका सारा शरीर ही नेत्र बन जाए, जिससे इस वेदना का वे और अधिक आनन्द ले सके। वे लिखती हैं कि—

"गला कर मेरे सारे अग,
करो दो आँखो को निर्माण!"[18]

महादेवी नीहार में केवल छायायुगीन काल्पनिक लोक में ही विचरण नहीं करती रहीं, जैसा कि अक्सर उनके बारे में कहा जाता रहा है। वरन् देश में व्याप्त राष्ट्रीय जनजागृति की ओर भी उनका ध्यान था। निम्न पक्तियों में वे भारत के गरीब वर्ग की दुर्दशा देखकर कह उठती है कि—

"उन सूखे ओठो के विषाद
में मिल जाने दो हे उदार
फिर एक बार बस एक बार!"[19]

'नीहार' मे छायावाद युगीन प्रवृत्तियो की प्रधानता होने पर भी कुछ कविताओं में द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता भी झलक मारने लगती है। 'मुर्झाया फूल' नामक कविता इसी प्रकार की है जिसमे फूल की दुर्दशा को देखकर वे द्विवेदी युगीन कविताओं के समान लिखती हैं। निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया ससार ने?

स्वार्थमय सबको बनाया-
है यहाँ करतार ने।"[20]

इस विवरण से स्पष्ट है कि नीहार में कवयित्री की भावुकता से भरी हुई कविताएँ हैं, जिसमें वातावरण के सृजन के लिए प्रकृति को चुना गया है। युग की बौद्धिकता ने उनके भावावेश को शिथिल नहीं होने दिया है। महादेवी ने रहस्यात्मक सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना, ससार की अस्थिरता, जीवन की नश्वरता तथा उस अज्ञात, अव्यक्त प्रियतम के प्रति वेदना एव करुणा—इन चार उपादानो के द्वारा नीहार के गीतो की रचना

की है। प्रकाशचन्द्र गुप्त स्वीकार करते हैं कि, "नीहार में श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य की रूपरेखा बन रही है। एक अव्यक्त पीड़ा इन छन्दो मे भी है, किन्तु उसका कोई स्थिर रूप नही। कवयित्री के मन में एक हूक उठती है, वह गाने लगती है—इससे कुछ मतलब नहीं है क्या? इन गीतों मे एक कहीं कुछ दूर की पुकार है।"[21] वे इसी पुकार को छायावाद कहते हैं। इस प्रकार के गीतों का प्रभाव उस समय के युवा वर्ग पर अत्यधिक पड़ा था। कलात्मक दृष्टि से भी ये उस श्रेष्ठता को तो नही छूते जो दीपशिखा के गीतो में है लेकिन फिर भी ये रमणीय बन पड़े है। इन गीतो में व्यक्त उनके हृदय की मार्मिक अनुभूतियाँ सहृदय जनों को प्रभावित करने मे पर्याप्त सफल रही हैं।

रश्मि –

1932 मे प्रकाशित 'रश्मि' महादेवी वर्मा की काव्ययात्रा का द्वितीय पड़ाव है, जिसमें कुल 35 गीत सगृहीत है। 'नीहार' मे जहाँ महादेवी की कविता मे अनुभूति का प्राधान्य था, वहीं 'रश्मि' में अनुभूति के साथ-साथ चिन्तन का पक्ष भी प्रबल होता गया। महादेवी ने रश्मि की भूमिका के अन्तर्गत स्वय स्वीकार करती है—"रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था।"[22] महादेवी को रश्मि के गीत अत्यन्त प्रिय हैं और वे इन गीतों को अपने सबसे निकट मानती है। वे लिखती हैं—"मैं स्वय अनित्य होकर भी जिन प्रिय वस्तुओं की नित्यता की कामना करने से नहीं हिचकती, यह उन्हीं में से एक है।"[23] 'नीहार' उनके हृदयगत प्रकृत भावो की सहज अभिव्यक्ति हैं। अभी तक उनके मन ने आत्मगोपनता की प्रवृत्ति ग्रहण नहीं की थी लेकिन 'रश्मि' तक आते-आते उनकी सवेदना पर सकोच हावी हो जाता है और अब वे अपने हृदयस्थ भावो को दबाने या रूप बदलकर प्रस्तुत करने में समर्थ हो जाती हैं। यहाँ पर महादेवी और भी अधिक अतर्मुखी हो जाती हैं। सुमित्रानन्दन पत और सच्चिदानद वात्स्यायन अज्ञेय दोनों ने ही महादेवी के काव्य में वेदना और प्रेम की अभिव्यति निर्वैयक्तिक स्तर पर करने का कारण नारी हृदय का सहज सकोच माना है। जब महादेवी 'नीहार' के सहज भावो का ससार छोड़कर 'रश्मि' के चिन्तन लोक में प्रवेश करती हैं तो उन्हीं का प्रश्न दोहराने की इच्छा मन में जाग उठती हैं—"अश्रुमयी रगिनि! कहाँ तू आ गई परदेशिनी री।"[24]

'नीहार' मे व्याप्त धूमिलता 'रश्मि' मे समाप्त होती हुई भी पूर्णतया समाप्त नहीं होती। यद्यपि रश्मि में नीहार के अन्तर्गत आने वाली जिज्ञासा और कुतूहल तो है लेकिन उसमे दार्शनिकता का समावेश होने लगता है। रहस्यात्मक अनुभूति स्पष्ट होने लगी है और अनेक दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन भी होने लगा है। डा धनंजय वर्मा 'रश्मि' के विषय में लिखते हैं—"काव्य के भिन्न स्वरों मे भी एकत्व है और विरोधी विषयों म भी एक साम्य सगीत की ध्वनि है।"[25]

'रश्मि' में महादेवी ने उस अज्ञात अव्यक्त प्रियतम के प्रति जिज्ञासा और कौतुहल का भाव अनेक कविताओ में व्यक्त किया है। यद्यपि यहाँ पर भी नीहार के समान उसका स्वरूप पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो पाता है। वह अभी भी धूमिलता के आवरण में छिपा हुआ है। वह सामने आता भी है तो धूमिल घन के रूप में—

'रजत रश्मियो की छाया मे, धूमिल घन सा वह आता।'[26] यद्यपि वह परिचित तो हैं लेकिन फिर भी छाया के समान है—

'सजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा छाया सा आता।'[27] उसका स्वरूप स्पष्ट नहीं है, अत वे पुकार उठती है—"तब बुला जाता मुझे उस पार जो, दूर के सगीत सा वह कौन है?'[28]

'रश्मि' में आकर महादेवी की कविताओं मे दार्शनिक तत्वों का और भी समावेश हो गया है और वेद, उपनिषद आदि के अध्ययन के आधार पर वे अद्वैतवाद जैसे दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने लगती है। अद्वैतवाद के अनुसार, यह दृश्य जगत मिथ्या है। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं है। आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता स्थापित करती हुई वे कहती हैं—

मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं जैसे रश्मि प्रकाश
मै तुमसे हूँ भिन्न-भिन्न ज्यो घन से तड़ित विलास।[29]

एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

क्षुद्र हैं मेरे बुदबुद प्राण
तुम्हीं में सृष्टि, तुम्हीं में नाश।[30]

रश्मि की कविताओं के अध्ययन के बाद विश्वम्भर मानव लिखते हैं—'रश्मि' की 35 रचनाओ में से आधी से अधिक अत्यन्त भावमयी भाषा मे आत्मा, प्रकृति और परमात्मा का स्वरूप निरूपण करती है। उनमे सृष्टि, प्रलय और परिवर्तन की चर्चा है। इन सभी रचनाओं में उन्होंने अद्वैतवाद का अनुकरण किया है।"[31]

'रश्मि' में भी महादेवी विरह में ही निमग्न रहना चाहती है। वे जीवन की पूर्णता मिलन में नहीं वरन् विरह की पीड़ा में मानती है। महादेवी तृप्ति प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करती, वे अतृप्ति ही चाहती हैं क्योंकि तृप्ति प्राप्त कर लेने पर जीवन में निष्क्रियता आ जाती है। इसलिए वे विरह में ही प्रसन्नता प्राप्त करती हैं। वे वियोग समय को रोते-रोते बिना देना चाहती हैं और यदि सयोग का अवसर कभी मिल भी जाय तो वे उस समय छिप जाना अधिक श्रेयस्कर मानती हैं—

'काटूँ वियोग पल रोते

सयोग समय छिप जाऊँ।[32]

लेकिन विरह की वेदना में भी वे दार्शनिकता से उबर नही पाती और 'नीहार' मे व्यक्त प्रियमिलन की तृष्णा का जब उन्हें ज्ञान हो जाता है तो वे कह उठती हैं—

पाने मे तुमको खोऊँ

खोने में समझूँ पाना।[33]

'रश्मि' की कविताओं में कल्पना का सुन्दर प्रयोग मिलता है। प्रिय को प्राप्त न कर पाने की जो विवशतायें वे व्यक्त करती हैं। वे वास्तविक न होते हुए भी कल्पना के प्रयोग द्वारा अत्यन्त रमणीय बन पड़ी है, जैसे निम्नपक्तियों में प्रियतम की कल्पना आँसू के रूप मे की है—

'अलि कैसे उनको पाऊँ?

वे आँसू बनकर मेरे,

इस कारण ढुल-ढुल जाते

इन पलकों के बधन मे

मैं बाँध-बाँध पछताऊँ।[34]

'नीहार' के समान अब प्रकृति केवल एक पृथक सत्ता के रूप में ही वर्णित नहीं हुई वरन् किसी अज्ञात, अव्यक्त प्रिय का आभास भी रश्मि के गीतों में मिलने लगता है। अब प्रकृति में भी आध्यात्मिकता का समावेश हो गया है। निम्न उदाहरण मे प्रकृति के वर्णन द्वारा उस अव्यक्त, अज्ञात ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा व्यक्त की गई है—

कनक से दिन मोती सी रात,

सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात,

मिटाता रगता बारम्बार,

कौन जग का यह चित्राधार?[35]

जहाँ प्रकृति का निरपेक्ष रूप से वर्णन किया गया है, वहाँ पर भी वह अत्यन्त सजीव हो उठी है। रश्मि की पहली कविता मे ही महादेवी ने ससार में प्रथम रश्मि के आगमन पर मानवीय कार्य व्यापारों का बड़ा ही मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है—

'चुभते ही तेरा अरुण बान
बहते कन-कन से फूट-फूट
मधु के निर्झर से सजल गान।[36]

यद्यपि महादेवी के काव्य को पूर्णत व्यक्तिगत अनुभूतियो पर आधारित काव्य कहकर आलोचना की जाती रही है लेकिन उनकी रचनाओं का गहनता से अध्ययन करने पर कई ऐसी कविताएँ दृष्टिगत होती है, जिसमे व्यक्तिगत पीड़ा का अन्तर्भाव जनसामान्य की सामाजिक पीड़ा से हो जाता है और महादेवी का भावुक मन जैसे चीत्कार कर उठता है—

कह दे माँ क्या अब देखूँ!
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरो को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ
xxx
तेरा वैभव देखूँ या,
जीवन का क्रन्दन देखूँ।[37]

कुछ आलोचको का मत है कि काव्य कला की दृष्टि से 'रश्मि' में महादेवी का काव्य सौष्ठव अपनी पूरी गरिमा के साथ उपस्थित नहीं है। भावों की भी ठीक-ठीक अभिव्यजना नहीं हो पाई है। यद्यपि रूपक का अधिक प्रयोग किया गया है किन्तु फिर भी वर्ण्य चित्र पूरी तरह से मूर्त नहीं हो पात। धनजय वर्मा लिखते हैं—"अभिव्यजना में वह परिष्कार और शक्तिमत्ता नहीं, जो उनके भावो का परिवहन कर सके।[38] अभिव्यजना शक्ति का कुशल प्रयोग न होने के कारण दार्शनिक प्रवृत्ति सर्वत्र काव्य रूप में ढल नहीं पाई है।

स्पष्ट है कि 'नीहार' के भावमय ससार से भिन्न 'रश्मि' मे महादेवी अपने जीवन दर्शन को एक आकार देती है। यही जीवन दर्शन रहस्यात्मक प्रवृत्तियो का आधार लेकर रागात्मक अनुभूतियो के सस्पर्श से तन्मयता के साथ नीरजा, साध्यगीत और दीपशिखा में अभिव्यक्त होता है। अब तक प्रकृति विरहिणी आत्मा के प्रति सहानुभूति व्यक्त करती थी, अब महादेवी ने जड़-चेतन सभी में रहस्यात्मक अनुभूतियो का आरोपण कर दिया है।'रश्मि'में भाषा और भाव भी विकसित रूप धारण करने लगे हैं। वेदना की मधुरता का स्पष्ट अनुभव रश्मि में मिलने लगता है और'रश्मि'का अन्त भी आशा और प्रसन्नता के वातावरण मे हुआ है। गगा प्रसाद पाण्डेय 'रश्मि'के सम्बन्ध मे लिखते हैं—'रश्मि' मे अपने आराध्य का दार्शनिक दर्शन ही महादेवी जी का आध्यात्कि विकास है और भाषा और कल्पना को उत्कृष्ट रूप देना साहित्यिक विकास है।''[39]

नीरजा –

'नीरजा' महादेवी वर्मा की काव्ययात्रा में आया हुआ तीसरा पड़ाव है। सन् 1934 मे प्रकाशित इस काव्यकृति मे 59 गीत सग्रहीत हैं। इसमे महादेवी की अनुभूतियाँ अपनी पिछली दोनों कृतियो की अपेक्षा अधिक सघन तथा व्यापक हो गई है। 'नीरजा' में महादेवी की विचारधारा ज्ञान और प्रेम, ब्रह्म और जगत तथा सूक्ष्म और स्थूल के बीच रही है। लेकिन यहाँ तक आते-आते महादेवी मे ज्ञान के स्थान पर प्रेम का प्राधान्य हो गया है। विश्वम्भर मानव लिखते है कि—"नीहार'की तरनी से उत्पन्न जो विचार की लहर उठी थी, वह 'रश्मि' मे ज्ञान के गिरि पर तो चढी पर अपने सचार के लिए उपयुक्त भूमि न पाकर 'नीरजा' मे फिर अनुभूति के पथ पर लौट आई। काव्यत्व की रक्षा के लिए यह अच्छा ही हुआ। 'नीरजा' में महादेवी जी की विचारधारा ज्ञान और प्रेम के दो फूलों के बीच ब्रह्म और जगत के दो कगारों के बीच, सूक्ष्म और स्थूल के दो पाटों के बीच बही है।''[40]।'नीरजा'में महादेवी के भाव व्यापक रूप धारण कर लेते हैं और उन्हे व्यक्त करने वाली भाषा भी अधिक स्पष्ट हो गई है। गगा प्रसाद पाण्डेय'नीरजा'के विषय में लिखते हैं कि—"भावों का सहजप्रवाह अपने में आँसुओं की स्वच्छता तथा मार्मिकता लिए है। अपनी वेदना प्रधान भावनाओं को भी उन्होंने उसमें एक स्वाभाविक शृगार दे दिया है, जिससे वे दुख के नीरस आघातों के उपादानमात्र न होकर सुख का स्वप्न सा बन गए हैं।''[41]

'नीहार' के धुधले वातावरण को चीरकर 'रश्मि' सम्पूर्ण ससार को प्रकाशित करती है और 'रश्मि' का प्रथम दर्शन प्राप्त कर 'नीरजा' आकार ग्रहण करती है। 'नीहार' और 'रश्मि' मे महादेवी की भावनाएँ अस्पष्ट सी लगती है इसी कारण वे अनेक प्रकार के रूपकों की रचना द्वारा अपने भावो को स्पष्ट करती है किन्तु'नीरजा' तक आते-आते उनकी अनुभूतियाँ एव चिन्तन अत्यन्त परिष्कृत रूप ग्रहण कर चुके है। यह उनके क्रमिक

विकास का अत्यन्त महत्वपूर्ण लक्षण है। महादेवी मुख्यत अनुभूति प्रधान कवयित्री हैं, अत अनुभूति प्रधान कविताओं मे भाषा और भाव दोनो ही अत्यन्त सहज और सरल हो गए हैं। किन्तु जहाँ चिन्तन की प्रधानता है वहाँ भाषा और भाव दोनों ही गम्भीर है। महादेवी ने कल्पना का अत्यन्त मौलिक रूप में प्रयोग किया है। उनकी कल्पनाएँ इतनी मधुर एव भावपूर्ण हैं कि वे हृदयगत् भावो को सहजरूप मे अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल रही है। निम्न पक्तियो मे कवयित्री अपने प्रिय को क्षणभर के लिए ही सही स्वप्न मे बाँध लेना चाहती हैं—

"तुम्हें बाँध पाती सपने मे

तो चिर जीवन प्यास बुझा

लेती उस छोटे क्षण अपने मे।"[42]

'नीरजा' मे दुख सुख मिश्रित अनुभूति अब व्यापक रूप ग्रहण कर लेती है। यद्यपि इसमें वेदना प्रधान तो है किन्तु उनका आराध्य, जो 'नीहार' और 'रश्मि' मे पर्दे की ओट में था, अब उसकी स्पष्ट झलक मिलने लगती है। इसलिए अब उनके हृदय में पहले जैसी आकुलता नही रही वरन् आज तो उन्होने वेदना के मधुरक्रय में किसी को पा लिया है—

"पा लिया मैंने किसे इस

वेदना के मधुर क्रय में?"[43]

'नीरजा' में महादेवी को अपने आराध्य का पूर्ण परिचय प्राप्त हो चुका है। वे बसन्त का आह्वान करती हैं क्योकि वे जान चुकी हैं कि उनका 'प्रिय' आने वाला है और प्रकृति का कण कण उसके स्वागत में तत्पर है। सरिता का उर सिहरने लगा है, फूल भी सुगन्ध भर के खुल रहे हैं और प्रिय के आने की आहट सुनकर पृथ्वी भी पुलकित हो उठी है—

"सुनि प्रिय की पदचाप हो गया

पुलकित यह अवनी

सिहरती आ बसन्त रजनी।"[44]

एक अन्य कविता में वे अपने प्रिय को विद्युत बनकर अपनी पलको में पग रखकर आने का आमन्त्रण देती हैं और प्रिय के आने की पदचाप सुनकर उनके नेत्र बार-बार भर आते हैं। वे लिखती है—

"तुम विद्युत बन आओ पाहुन!
मेरी पलको मे पग धर-धर!"
आज नयन आते क्यों भर-भर।"[45]

महादेवी ने छायावादी दर्शन का मूल 'सर्वात्मवाद' मे मानकर केवल प्रकृति के प्रति ही अपने प्रेम का वर्णन नहीं किया वरन् जड़चेतन सभी के प्रति अपने प्रेम का निवेदन किया। उन्होने अपनी कविता में रहस्यभावना के अन्तर्गत अद्वैतमत की अवहेलना नहीं की है किन्तु उनका अद्वैत काव्य में व्यक्त होकर निश्चय ही सरस हो गया है। रहस्य भावना का प्रसार चिन्तन के क्षेत्र मे ही होता है किन्तु नीरजा मे अनुभूति का भी आश्रय लेकर वे अपनी रहस्यभावना को समृद्ध करती हैं। ऐसी कविताओ में आत्मा-परमात्मा के बिरह का वर्णन मिलन की अपेक्षा अधिक भावप्रवण होता है। नीरजा में भी बिरह दशा के अनेक चित्र मिलते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"विरह काजलजात जीवन, विरह का जलजात।"[46]

नीरजा में अद्वैत भावना की अभिव्यक्ति की भी कई कविताएँ मिलती है। प्रिय कवयित्री में ही समा गया है अत उससे अलग से परिचय की अपेक्षा भी नहीं है। निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

तुम मुझमे प्रिय! फिर परिचय क्या![47]

महादेवी प्रियतम और प्रिया के मध्य अद्वैत को व्यक्त करने के लिए दार्शनिकता का आश्रय तो लेती हैं लेकिन काव्य मे व्यक्त करके वे दर्शन को भी सरल बना देती है। अद्वैत दर्शन से प्रभावित निम्न पक्तियाू उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

"चित्रित तू मै हू रेखाक्रम
मधुर राग तू मैं स्वरसगम।"[48]

अपनी रहस्यानुभूति को लौकिकरूपको के माध्यम से व्यक्त करने मे महादेवी को पर्याप्त सफलता मिली है। जब महादेवी अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति के लिए कहीं भी कृत्रिमता का आश्रय नही लेती तो वहाँ उत्तम गीत की रचना होती है। निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।"[49]

नीरजा के कुछ गीतों में चिन्तन की प्रबलता इतनी अधिक हो गई है कि वहाँ भाव भी क्लिष्ट हो गए

है और भाषा भी दुर्बोध हो गई है। जैसे निम्नपक्तियाँ उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत है—

"क्या यह दीप जलेगा मुझसे

भर हिम का पानी।

बताता जा रे अभिमानी।[50]

'नीहार' और 'रश्मि' में जब प्रियतम का स्वरूप स्पष्ट नहीं था तब महादेवी के काव्य में पतझड़ की प्रधानता थी किन्तु समय परिवर्तन के साथ अब उनके जीवन मे भी महान परिवर्तन होने वाला है। उन्हे प्रिय के दर्शन की आशा बँधने लगी है। इसीलिए वे अपने जीवन को बसन्त की सुन्दरता से भावविभोर कर कह उठती है—

"जगा न निद्रित विश्व ढालने

विधु-प्याले से मधुर चाँदनी

आ मेरी चिर मिलन-यामिनी।"[51]

प्रियतम की स्पष्ट झलक मिलने पर महादेवी को सर्वत्र प्रकाश विकीर्ण होता दिखाई देने लगता है। वे अपने मन रूपी दीपक को हमेशा जलाये रखना चाहती है जिससे कि उनके प्रियतम का पथ प्रकाशमय बना रहे। उसके पथ को आलोकित करने के लिए वे अपने कोमल तन को मोम बनाकर गला देना चाहती है। वे कहती है—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।

युग युग प्रतियुग प्रतिक्षण प्रतिपल,

प्रियतम का पथ आलोकित कर।[52]

महादेवी के काव्य मे वेदना की प्रधानता की आलोचकों ने भरसक निन्दा की है। अत महादेवी कह उठती है कि—

'कहता जग दुख को प्यार न कर'[53]

इसके द्वारा महादेवी दुख के सम्बन्ध मे अपनी धारणा को स्पष्ट करती हैं। नीरजा के गीतो मे जहाँ कहीं भी दुखवाद प्रधान हो गया है वहाँ वह लौकिक सीमाओं से ऊपर उठकर अलौकिकता की ओर उन्मुख हो गया है। जब आराधक की आराधना पूरी हो जाती है तब आराध्य का पूजन हृदय के अन्दर ही होने लगता

है और नीरजा के अन्त तक आते-आते महादेवी भी ऐसी ही मानसिक अवस्था मे पहुँच जाती है। वे कह उठती हैं—

"क्या पूजा क्या अर्चन रे!
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे!"[54]

स्पष्ट है कि नीरजा मे विरह, वियोग, दुख, अद्वैत भावना और मिलन से सम्बन्धित गीत इतने भावपूर्ण बन पड़े है कि वे हिन्दी साहित्य में उच्चकोटि का स्थान पाने के अधिकारी हैं। इनमें महादेवी ने अपनी कल्पना का मनोरम प्रयोग किया है।इन गीतों को गयता के कारण प्राण तत्व मिल गया हे। हर पद गेय बन गया है, हर पद मे स्वर सामजस्य है। ऐसा लगता है मानो भाव स्वय ही ध्वनित हो गए है। रायकृष्ण दास ने ठीक ही लिखा है—" 'नीरजा' यदि अश्रुमुख वेदना के कणो से भीगी हुई है, तो साथ ही आत्मानन्द के मधु से मधुर भी है। मानो, कवि की वेदना, कवि की करुणा, अपने उपास्य के चरणस्पर्श से पूत होकर आकाश गगा की भाँति इस छायामय जग को सींचने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है।"[55] निश्चय ही अनुभूति की गहराई और सघन चिन्तन के द्वारा नीरजा के गीत कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि के बन बड़े है।

सान्ध्यगीत–

'सान्ध्यगीत'महादेवी की काव्ययात्रा का चतुर्थ पड़ाव है। 1936 मे प्रकाशित इस कृति मे 45 गीत सग्रहीत हैं। इन गीतों मे महादेवी तन्मयता की उस अवस्था में पहुँच गई हैं, जहा सुख दुख मिलकर एकाकार हो गए हैं। महादेवी स्वय स्वीकार करती है कि, "नीरजा और सान्ध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमे अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुख में सामजस्य का अनुभव करने लगा। पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम-रोम मे ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे हृदय में खिला हो, परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एकअव्यक्त वेदना भी थी, फिर यह सुख-दुख मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अन्त में अब मेरे मन ने न जाने कैसे उस बाहर-भीतर में एक सामजस्य सा ढूँढ लिया है, जिसने सुख-दुख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।"[56] उद्धरण लम्बा अवश्य है कि लेकिन'साध्यगीत'की रचना के समय उनकी मन स्थित का पूर्ण परिचय देता है। 'सान्ध्यगीत'के गीत भावुकता के स्थान पर चिन्तन के सुदृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित हैं।

प्रकृति प्रारम्भ से ही महादेवी के काव्य में मुख्य सहचरी रही है।'सान्ध्यगीत'के प्रथम गीत में ही महादेवी प्रकृति प्रदत्त उपादानों का आरोपण अपने जीवन पर करते हुए कह उठती हैं—

"प्रिय सान्ध्यगीत, मेरा जीवन।[57]

सुख-दुख मिश्रित अनुभूति का प्रत्यक्ष उदाहरण इसी गीत का अन्तिम पद है और यह सुख-दुख का सामजस्य ही कवयित्री के जीवन मे अनेक विरोधी तत्वों का समन्वय प्रस्तुत करता हुआ जान पड़ता है। वे लिखती है—

'घर आज चले सुख-दुख विहग
तम पोछ रहा मेरा अग-जग।'[58]

यद्यपि उनके गीतों में दुख की प्रधानता है किन्तु वे कहीं भी दुख से घबड़ाती नही है वरन् दुख रूपी काँटों को पार करके भी ही सुख रूपी फूल प्राप्त होते है। उनका प्रमुख लक्ष्य पीड़ा तथा करुणा के द्वारा मानवता का कल्याण करना है। वे कहती है कि यदि वे दीपक के समान न जलती तो उनमे इतनी सजलता कहाँ से आती। निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

दीप सी जलती न तो यह
सजलता रहती कहाँ?[59]

इतना ही नहीं विश्व के करुण क्रन्दन को देखकर उनका हृदय चीत्कार कर उठता है। वे साधक को मार्ग में आने वाली कठिनाइयो को पार करके साधना मार्ग में आगे बढ़ने के लिए निम्न पक्तियों द्वारा प्रेरित करती हैं—

चिर सजग आँखे उनींदी, आज कैसा व्यस्त बाना
जाग तुझको दूर जाना।[60]

रहस्यवाद की भी अनेक आकुल-व्याकुल अनुभूतियों के गीत भी साध्यगीत में सकलित है। साधिका निरन्तर अपने आराध्य की आराधना मे सलग्न रहती है और उस साधना की तीव्रता तथा तन्मयता ही उसे सतोष देती है। वह अपने आराध्य की साधना करते करते उस उच्चतम मनोस्थिति पर पहुँच जाती है कि वह स्वय आराध्य हो गई है। निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

'आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा।'[61]

इस प्रकार आराध्य की खोज में क्षण-क्षण पर भिन्न अनुभवों की आकुलता दिखाई पड़ती है। कहीं मिलन सुख का वर्णन है, कहीं वियोग पीड़ा का, कभी प्रतीक्षा का और कभी अतीत स्मृति का वर्णन मिलता है।

महादेवी का कविमन निरन्तर साधना में लीन है और सांध्यगीत त आते-आते वह सफलता के अत्यन्त निकट पहुँच गई है। आराध्य और आराधिका के हृदय की भिन्नता नष्ट होकर एक ही दिशा की ओर अग्रसर है। वे कहती हैं कि—

'हो गई आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले।'[62]

विरह के क्षण समाप्त होने को हैं और मिलन के पल समीप है। फिर दुख-सुख में कौन तीखा हे,यह जानने और सीखने का समय उनके पास नहीं है। अब तो अपने प्रियतम की मधुर भावनाएँ लेकर विश्व की सभी वस्तुएँ मधुर हो गई हैं। वे लिखती हैं कि—

"मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना से।"[63]

महादेवी प्रतिपल अपने आराध्य से मिलने के लिए विकल हो रही हैं। उनके प्राण अत्यन्त व्याकुल हो उठे हैं। इसलिए वह कह उठती हैं कि इस क्षितिज को नष्ट कर दी जिससे मैं यह तो देखलूँ कि उस ओर क्या है? अनेक युगों से जिस पन्थ की खोज हो रही है उसका छोर क्या है? निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है—

"तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देखलूँ उस ओर क्या है।"[64]

महादेवी चारों ओर दृष्टि फैलाकर अपने प्रिय को देख रही है क्योंकि न जाने कहाँ से वह आ जाये। अचानक उनकी नजर रात्रि के शान्त वातावरण में तारों पर जा पड़ती है। उसको देखकर वे निम्न पंक्तियों में कितनी मार्मिक कल्पना करती है—

'सो रहा है विश्व पर प्रिय तारकों में जागता है।'[65]

महादेवी जानती है कि प्रियमिलन के बाद यह चित्रमय क्रीड़ा अधूरी रह जाएगी परन्तु वे अपने मन को नहीं समझा पा रही है। वे तो चाहती है कि वे दूर रहकर खेलें किन्तु उनका हृदय उनका साथ नहीं दे रहा है। वे कहती हैं कि—

"दूर रहकर खेलना पर मन न मेरा मानता है।"[66]

यद्यपि महादेवी को अभी तक अपने प्रिय का सान्निध्य प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु उन्हें उसका अलौकिक स्पर्श अवश्य ही अनुभव होता है और उनकी स्मृति के लिए यह किसी भी प्रकार से कम नहीं है। वे प्रिय

को स्वप्न मे आया हुआ मानती है और उसकी याद में वे युग बिताने के लिए तैयार है लेकिन उनके मन मे मिलन की कोई चाह नही हैं अत वे कह उठती है कि—

'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ'[67]

प्रिय को स्वप्न में आया हुआ जानकर उन्हे अपने प्रेम की प्रगाढ़ता पर विश्वास दृढ हो जाता है और वे स्वय को अखण्ड सुहागिनी मानती है। वे लिखती हैं—

सखि मै हूँ अमर सुहाग भरी।

प्रिय के अनन्त अनुराग भरी।[68]

इसके पश्चात उन्हें अपने प्रिय के पदचिह्न के दर्शन हो जाते हैं और उनके पदचिह्न देखकर वे विश्व के कण-कण मे उल्लास और उत्साह का दर्शन करने लगती है। साध्यगीत में सग्रहीत महादेवी का प्रसिद्ध गीत है—'मैं नीर भरी दुख की बदलती' जिसके माध्यम से एक ओर तो वे अपना परिचय देती है और दूसरी ओर बदली के प्रतीक द्वारा जीवन की नश्वरता और ससार की असारता का काव्यरूप मे चित्रण प्रस्तुत करती है। इस एक गीत में छायावाद की गई विशेषताओ का समावेश हो गया है जैसे कल्पना की स्वच्छन्द उडान, अनुभूति की गहनता और प्रकृति का मानवीकरण आदि। कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'मैं नीर भरी दुख की बदली।

स्पन्दन में चिर निश्पन्द बसा

क्रन्दन में आहत विश्व हँसा।'[69]

स्पष्ट है कि'सान्ध्यगीत'में सन्ध्या की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखे गए गीत है।'नीहार'से प्रारम्भ करके'सान्ध्यगीत'तक आते-आते महादेवी साधना के अन्तिम सोपान पर पहुँच गई हैं। अब उनका गतव्य स्थान भी निश्चित हो गया है और गहन साधना द्वारा प्राप्त परिणाम भी दूर नहीं है।आराध्य के प्रति अपरिचय की भावना अब प्रगाढ़ परिचय में बदल गई है, आराध्य के साथ अब वे तन्मयता और प्रगाढता की गहन अनुभूति का सघन अनुभव करती है। गगा प्रसाद पाण्डेय'सान्ध्यगीत'के विषय मे लिखते हैं कि—'ह्रदय की आतुरता, दर्शन का असन्तोष, बुद्धि की विवेचना तथा भावनाओ की आकुल आकाक्षा—सभी का इस रचना में एक स्वाभाविक सम्मिश्रण है। प्रारम्भ से ही देवी जी के काव्य की एक अपनी विशेषता रही है किन्तु इस रचना मे तो उन्होंने काव्य सौन्दर्य की सीमा का सहज में स्पर्श कर लिया है। अब तक की रचनाओं में यह उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है।''[70]

दीपशिखा–

सन् 1942 में प्रकाशित 'दीपशिखा' महादेवी वर्मा की काव्ययात्रा का अन्तिम पड़ाव है। इसके पश्चात उनकी काव्यकृतियाँ प्रकाशित तो अवश्य हुई लेकिन वे सभी अनुवादित अथवा सम्पादित है। डा नगेन्द्र उस युग मे 'दीपशिखा' के प्रकाशन को एक घटना मानते हैं। 'दीपशिखा' मे 51 गीत सग्रहीत हैं तथा प्रत्येक गीत के साथ उसकी पृष्ठभूमि के रूप में महादेवी द्वारा बनाया गया एक भावगर्भित चित्र भी अकित है, जो गीत के भावार्थ को समझने मे मदद ही करता है। इसीलिए 'दीपशिखा' को चित्रमय काव्य अथवा काव्यमय चित्र की सज्ञा देते हुए गगा प्रसाद पाण्डेय लिखते है कि—'प्रत्येक गीत की पृष्ठभूमि में एक चित्र अकित है, जो काव्योत्कर्ष की चारुता बढ़ाने में सहज ही समर्थ है, कला एव भाव दोनो दृष्टियो से 'दीपशिखा' अत्यन्त प्रौढ और अपने ढग की अकेली काव्यकृति है।"[71]

'दीपशिखा' का प्रणयन सन् 1942 मे हुआ। उससमय देश राजनीतिक दृष्टि से सक्रमणके दौर से गुजर रहा था। द्वितीय विश्वयुद्ध में अग्रेजो की पराजय के बावजूद अग्रेज भारत छोड़ने को तैयार नही थे और प्रत्येक भारतवासी महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे सगठित होकर अग्रेजो को भारत छोड़ने के लिए और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील था। गाँधी के सत्य, अहिंसा, असहयोग आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन आदि निष्फल सिद्ध हो रहे थे। क्रान्ति की चिनगारियाँ चारों ओर सुलग रही थी, जो भभककर भीषण ज्वाला में परिवर्तित होने को बैचेन थी। ऐसे सक्रमणकालीन युग से छायावादी कवियों का अप्रभावित रहना कठिन था, अत वे सब भी कल्पना के पखों पर बैठकर मुक्तगगन पर विचरण करना छोड़कर यथार्थ की ठोस भावभूमि पर अवतरित हुए। राष्ट्रीय दृष्टि से जनजागरण के ऐसे महत्वपूर्ण समय में 'दीपशिखा' की रचना अपना विशेष स्थान रखती है। 'दीपशिखा' के अधिकाश गीतो का जन्म झझावतों के ऐसे ही दौर से गुजर कर हुआ है।

'दीपशिखा' मे दीपक को आधार बनाकर लिखे गए गीत अधिक है। दीपक महादेवी का अत्यन्त प्रिय प्रतीक है। हजारी प्रसाद द्विवेदी भी लिखते हैं कि—"वस्तुत दीपशिखा के साथ किसी कवि का नाम जोड़ना हो तो वह महादेवी वर्मा ही हो सकती है। 'दीपशिखा' उनका बहुत प्रिय बिम्ब है। इसका प्रयोग उनकी कविता मे अनेक बार हुआ है। सर्वत्र वह एक ही भाव से गाढ-सम्प्रेषण के लिए नहीं आया पर मुख्यरूप से स्वय जलकर प्रकाश देने की महिमा उसमें व्यक्त हुई हैं।"[72] दीपक साधना की एकान्त निष्ठा का प्रतीक है। दीपक आत्मा का भी प्रतीक है जो साधना मार्ग पर आँधी-तूफानों से विचलित हुए बिना निरन्तर प्रकाशित हो रहा है और साधनामार्ग से गुजरने वाले पथिक और विहग के मार्ग और घर को प्रकाशित कर रहा है। स्वय आँधी

प्रलय भी साधनामार्ग के प्रति उसकी आस्था को देखकर उसके लिएमगल गान गाते हुए प्रतीत हो रहे हैं। वे दीपक से निरन्तर जलने का आह्वान निम्न पक्तियो के द्वारा करती है—

"दीप मेरे जल अकम्पित,

घुल अचचल।[73]

दीपक की सार्थकता स्वय जलकर, घुलकर भी दूसरों के लिए मार्ग प्रशस्त करने में है। 'दीपशिखा' तक आते-आते महादेवी साधना की उस उच्चतम भावभूमि पर पहुँच गई है, जहाँ पर न तो उन्हे पथ के अपरिचित होने की चिन्ता है और न ही प्राण के अकेले रहने की। उन्हे अपनी पराजय का भी डर नहीं है वरन् वे पूरी निष्ठा के साथ अपने सकल्प को पूरा करने का विश्वास निम्न पक्तियों में व्यक्त करती है—

पथ होने दो अपरिचित,

प्राण रहने दो अकेला।[74]

महादेवी को अपनी साधना पर अटूट विश्वास है। इसीलिए वे मन्दिर के दीप को निरन्तर प्रज्ज्वलित करने की आकाक्षा व्यक्त करती है। वे दीपक को विश्व का प्रहरी बनाकर ससार के अन्धकार को दूर करने के लिए साँझ के दूत को प्रभाती तक चलने के लिए निम्न पक्ति में आग्रह करती है—

'दूत साँझ का इसे प्रभात तक चलने दो।'[75]

महादेवी साधना के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर हैं। अब चाहें कितनी भी बाधायें आ जायें कोई भी उनकी गति को रोक नहीं सकता। अब उनका रास्ता न तो रात का सघन अन्धकार रोक सकता है और न ही आँधी-तूफान उनकी गति को अवरुद्ध कर सकते हैं। वे लिखती है कि—

'चली मुक्त मै ज्यों मलय की मधुर बात'[76]

महादेवी को अब विरह की घनीभूत पीड़ा, जो प्रारम्भिक रचनाओ में सालती थी, की भी चिन्ता नहीं है क्योंकि विरह के पश्चात ही मिलन के क्षण आते हैं और वे कह उठती हैं कि—

अदन में सुख की कथा है,[77]

विरह मिलने की प्रथा है,

महादेवी अब साधना में इतनी एकाग्र हो गई हैं कि उन्हें विरह मे ही आनन्द आने लगा है। विरह रात्रि

मैं क्यों पूछूँ यह विरह निशा,

कितनी बीत क्या शेष रही?[78]

'दीपशिखा'मे पहुँचकर महादेवी अपने व्यक्तित्व को विश्व के व्यापकत्व मे समाहित कर देती है। अत दुख का वहाँ प्रश्न ही नहीं है। गगा प्रसाद पाण्डेय भी इसी तथ्य की ओर सकेत करते है हुए लिखते हैं कि— "व्यक्ति के विरह मिलन की स्थितियाँ भी इसी तथ्य की परिचायिका होती हैं। दीपशिखा का दीपक व्यापक प्रकाशपुज (सबेरा) से मिलकर स्वय आलोकवाही सूर्य बन बैठा है। व्यक्ति की यह चरम साधना और कवि की यही चरम सफलता है।"[79]

महादेवी के काव्य में व्यक्त रहस्यवाद मध्यकालीन सन्त कवियों के रहस्यवाद से भिन्न है। सन्तकवियो के रहस्यवाद का आदर्श साधक द्वारा अपने अस्तित्व को ब्रह्म में विलीन कर देना है, लेकिन महादेवी अपने अस्तित्व को ब्रह्म मे विलीन करना नहीं चाहती, वे अपनी स्थिति को इतना व्यापक बनाना चाहती है स्वय उसी में ब्रह्म की विराटता का अनुभव हो सके। इसी कारण महादेवी सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए निरनतर प्रयत्नशील रहती है। निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत हैं—

अलि मैं कण कण को जान चली

सबका क्रन्दन पहचान चली।[80]

स्पष्ट है कि 'दीपशिखा' मे साधना के अनेक सोपानों से गुजरते हुए लक्ष्य की प्राप्ति तक की मन स्थितियों का बड़ा ही मार्मिक एव भावपूर्ण अकन किया गया है। 'दीपशिखा' के अन्त तक आते-आते विरहरूपी रात्रि समाप्ति होने को है और रात्रि के समाप्ति हो जाने पर दीपक का बुझ जाना स्वाभाविक है। इस कल्पना का बड़ा ही मनमाहेक चित्र महादेवी निम्न शब्दो मे खीचती हैं—

"कल्पना निज देखकर साकार होते

और उसमे प्राण का सचार होते

सो गया रख तूलिका दीपक चितेरा।"[81]

'दीपशिखा' मे महादेवी ने 'चिन्तन के कुछ क्षण' नाम से एक लम्बी भूमिका लिखी है जिसमें काव्य से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों द्वारा जैसे—क्काव्य का स्वरूप, सत्य और काव्य, उपयोगी कलाएँ, ललित कलाएँ, रहस्यवाद, छायावाद का समर्थन,यथार्थवाद और गीत आदि के सम्बन्ध में अपने पाठकों की जिज्ञासा को शान्त करने का प्रयास किया गया है। 'दीपशिखा' के गीतों मे अनुभूति की गहराई और व्यापकता तो है ही,

साथ ही अभिव्यजना पक्ष भी अत्यन्त समृद्ध बन पड़ा है। 'दीपशिखा' मे महादेवी नेसाधना की उच्चतम भावस्थिति प्राप्त कर ली है और वे अपने जीवन को विश्वजीवन के साथ एकाकार करके समस्त प्राणिमात्र के प्रति सवेदना और सहानुभूति का अनुभव करती है। स्वय को निस्वार्थ भाव से दूसरे के सुख के लिए मिटा देने वाले बादलो के साथ महादेवी के जीवन का साम्य आसानी से खोजा जा सकता है। डा धनजय वर्मा दीपशिखा में लोकहृदय से एकाकार होने की इच्छा प्रमुख मानते हैं। वे लिखते है कि—"आत्मदुख के साथ व्यापक जीवन के दुख को प्रबोधने की शक्ति उनमे है और सुख-दुख का सामजस्य-समरस दृष्टिकोण इनके गीतो का मूल आत्मनिवेदन है और दीपशिखा उनके मन का प्रतीक होकर आयी है।"[82] वस्तुत तत्कालीन परिस्थितियो को अभिव्यक्त करने और सामान्य जन को प्रेरित करने में 'दीपशिखा' के गीतों की महती भूमिका रही है। प्रत्येक गीत के साथ एक चित्र बनाकर महादेवी ने 'दीपशिखा' को एक नये कलेवर मे प्रस्तुत किया है।

बंग-दर्शन–

यद्यपि महादेवी वर्मा पर हमेशा कल्पना लोक की निवासिनी होने का आरोप लगाया जाता रहा है। लेकिन 1943-44 में बगाल में आए हुए भीषण अकाल से द्रवित होकर महादेवी द्वारा'बग दर्शन'की रचना इस आरोप का पूर्णतया नकार देता है।'बग दर्शन'के प्रकाशन के समय 'विशाल भारत' पत्रिका मे एक टिप्पणी प्रकाशित होती है—"पर सन्तोष का विषय है कि श्रीमती महादेवी वर्मा ने बगदर्शन के प्रकाशन के रूप मे न सिर्फ इस दिशा मे सबका मार्ग प्रदर्शन ही किया है, बल्कि हिन्दी और हिन्दी वालो की नाक भी रख ली है। इसके लिए समस्त हिन्दी-भाषा-भाषियों को हृदय से उनका कृतज्ञ होना चाहिए।"[83] बगाल के अकाल को लेकर हिन्दी साहित्यकारो में उतनी व्यापक प्रतिक्रिया नहीं हुई जितनी कि उनसे अपेक्षा की जा रही थी। और जो कुछ प्रयत्न किए भी गए तो उनकी भी आलोचना हुई। एक पत्रिका लिखती है—"यदि ईमानदारी से देखा जाय, तो ड्राइग रूप में बैंठकर किसान-मजदूरों की तरह ही बगाल के अकाल पर लिखी गई इनी-गिनी रचनाओं मे भी यथार्थता की अपेक्षा कवि-कल्पना का पुट ही अधिक है। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी के आज के अधिकाश साहित्यकार देश, काल अथवा समाज के कितने निकट अथवा साथ है।"[84]

'बगदर्शन'की भूमिका लिखते हुए महादेवी हिन्दी साहित्यकारों का इस विपरीत परिस्थिति में बगाल की जनता की पीड़ा को समझने का आह्वान करती हैं। उसके पुनर्निर्माण मे प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग की आकाक्षा व्यक्त करती हैं। साहित्यकारों और कलाकारों से उनकी अपेक्षाये और भी बढ़ जाती हैं क्योकि वे

मानव की व्यथा का समुद्र आज के लेखक को जीवन का कोई महान तथ्य, अमूल्य सत्य न दे सकेगा, ऐसा विश्वास कठिन है। इस दुर्भिक्ष की ज्वाला का स्पर्श करके हमारे कलाकारों की लेखनी-तूली यदि स्वर्ण न बन सकी, तो उसे राख हो जाना पड़ेगा। किन्तु ऐसी कल्पना करना भी सच्चे कलाकार का अपमान करना है। जिस बगभूमि के पुत्र भारतीय ज्ञान-विज्ञान तथा सस्कृति के प्रहरी रहे, वह तो हमारे आदर्शों की सजीव प्रतिमा है। उसे जिस व्यवस्था के कारण इतना असहाय होना पड़ा है, उसके प्रति हमारा जितना सक्रिय विरोध हो, थोड़ा है। बग की जो सतति इस दुर्भिक्ष की बलि हो गई, उसकी स्मृति हमारे भविष्य का आलोक रहेगी। उसकी जो सन्तान आज विपन्न है, उसके प्रति हमारा स्नेह स्थायी और सहयोग निश्चित है।''[85]

'बगदर्शन' मे ग्यारह चित्र और नौ कविताएँ सकलित हैं। चित्रो मे महादेवी वर्मा, शम्भूनाथ मिश्र, मीना अनद और वनलता बनर्जी के चित्र प्रमुख है। मुखपृष्ठ पर महादेवी का बनाया हुआ 'अन्नपूर्णा' नामक चित्र है, जिसमें अकाल की विभीषिका को दर्शाया गया है। उनके एक हाथ में अमृत का पात्र है और दूसरे मे अन्न भण्डार को दिखाया गया है और नीचे चारों ओर पीड़ित जनसमाज अन्न के लिए हाथ पसारे हुए है ओर ऊपर से काल अन्नपूर्णा के हाथ का अन्न भण्डार उठा रहा है। अन्नपूर्णा की मुखमुद्रा में इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाली विरक्ति, क्षोभ, ग्लानि, कुण्ठा, और विवशता को स्पष्ट व्यक्त कर देती है।

कविताओ में सबसे पहले महादेवी वर्मा द्वारा अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त के कतिपय अशों का अनुवाद किया गया है और इस अनुवाद को 'भूवन्दना' शीर्षक दिया गया है। महादेवी द्वारा किये गये अनुवाद के सम्बन्ध मोहनसिंह सेंगर लिखते है—'अनुवाद के विषय मे कुछ कहना छोटे मुँह बड़ी बात होगी। इससे अधिक पृथ्वी-सूक्त के अर्थ ओर छन्द की रक्षा शायद ही कोई कर पाता।''[86]

'बगदर्शन'के अन्तर्गत पहली कविता माखनलाल चतुर्वेदी की 'बगजननी' है। जिसमें उन्होंने पहले तो बगाल की स्वर्णिम देन का वर्णन किया गया है और फिर अकाल के परिणाम स्वरूप बगाल की हीनावस्था का मार्मिक चित्र खींचा है—

उसी बग को आज समय क्या भूखा मारे?
वही बग क्या आज दरबदर हाथ पसारे?

उसी बग के बेटे-बेटी बेचे जावें?
महतर की गाड़ियाँ मृतक शव खेचे जावें?[87]

इसके बाद मैथिलीशरण गुप्त की कविता है जिसका शीर्षक है—'ससार' इस कविता मे उन्होने अकाल के पश्चात जनता को उचित सुविधा न देने वाले व्यक्तियो की कटु आलोचना निम्न शब्दो में की है—

"मृत्यु के बदले जहाँ जन ही जनो को मारते हैं,
आप अपनी-सी पराई पीर कौन विचारते है।
स्वर्ण मृग-सा रक्षको का रूप भक्षक धारते हैं,
दुरित घी पर-धन-घरा पर हाथ पैर पसारते हैं।
शान्ति पर डाले खड़ा है शस्त्र शासन सघन घेरा।"[88]

तीसरी कविता सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की 'पाँचक' कविता है और उसके बाद रामकुमार वर्मा की कविता है—'मानवजीवन की रेखा।' उन्होंने भी बगाल के अकाल से त्रस्त मानव की करुण और मार्मिक चित्र कविता के माध्यम से खींचे है—

यह है अपना देश,यही है अपना प्रिय के बगाल
जाग रहे है जहाँ प्राण, पर देह बनी ककाल।[89]

इसके पश्चात 'हरिवशराय बच्चन' की कविता है, जिसका नाम है—बगाल का अकाल। इलाचन्द्र जोशी की कविता 'विजनवती' में प्रकाशित हो चुकी है। उसी को इसमे भी स्थान मिलता है। सातवीं कविता का शीर्शक है—'रासमणि' जिसके रचयिता सियारामशरण गुप्त है। इसमें अकाल से त्रस्त एक ग्रामीण महिला के जीवन की मर्मस्पर्शा कहानी व्यक्त की गई है। इसकी भूख के कारण ही मृत्यु हो जाती है। इसकी निम्नपक्तियाँ तो मानों हृदय को चीर ही देती है—

सहसा अभय-ओज ज्यों फैला उस सूखे आनन पर
लड़ सकती है प्रेतों से वह स्वय प्रेत ही बनकर।[90]

- 'उद्‌बोधन' शीर्षक कविता गगा प्रसाद पाण्डेय की हे जो अपनी भावव्यजना में पूर्ण समर्थ है। इस सकलन का अत में पूर्ण समर्थ है। इस सकलन का अत महादेवी वर्मा की 'बगवन्दना' नामक कविता किया गया है। इसे 'भव्य भारत की अमर कविता' कहकर बग-भू की वदना की गई है। वे बगाल की अतर्निहित शक्तियो को जागृत करते हुए कहती हैं—

शक्ति की निधि अश्रु से क्या श्वास तेरे तोलते है?
आह तेरे स्वप्न क्या कंकाल बन-बन डोलते हैं?

अस्थियो की ढेरियाँ हैं

जम्बुको की फेरियाँ हैं,

'मरण केवल मरण' क्या सकल्प तेरे बोलते हैं

भेंट मे तू आज अपनी शक्तियों की चेतना ले।[91]

'बग दर्शन' की विषय वस्तु का उपर्युक्त वर्णन स्पष्ट करता है कि तत्कालीन कवियो पर समसामयिक न होने का आरोप कितना निराधार है। ये सभी कवि बगाल के अकाल से पीड़ित लोगो के प्रति सहानुभूति एव सवेदना ही व्यक्त नहीं करते वरन् उत्तेजित होकर आक्रोश में भरकर जिम्मेदार व्यक्तियों की कटु आलोचना भी करते हैं। यह सकलन और उसमे व्यक्त यह दृढ़ स्वर—उस दूषित व्यवस्था के प्रति—जिसके कारण लाखों लोग काल का ग्रास बन गए—विरोध और विद्रोह की तीव्र व्यजना करता है। महादेवी इस अकाल को दैव पर निर्भर न करके मनुष्य कृत मानती हैं और उन लोगों का चेहरा उजाकर करने का प्रयत्न करती है जिसके कारण बगदेश की ऐसी दुर्दशा हुई है। 'बगदर्शन' मे व्यर्थ की करुणा प्रदर्शित नहीं की गई है बल्कि इन सबकी कविताओं मे बग प्रदेश की जनता के साथ सहानुभूति व्यक्त करते हुए शेष का भी उचित सम्मिश्रण है। 'विशालभारत' मे रामविलास शर्मा द्वारा की गई 'बगदर्शन' पर निम्न टिप्पणी इसके महत्व को रेखाकित करती है—"इस पुस्तक का विशेष महत्व यह है कि उसने 'कला-कला के लिए,' वाले सिद्धान्त को सदा के लिए दफना दिया है। यहाँ पर भारत-भारती की राष्ट्रीय परम्परा और छायावाद की विद्रोही धारा एक साथ बगाल की पीड़ा से द्रवित होकर गगा-यमुना की भाँति प्रगतिवादकी सरस्वती से मिल गई है। कोई भी साहित्य युग से दूर रहकर जीवित नहीं रह सकता। महादेवी जी ने बगदर्शन की भूमिका लिखकर हिन्दी के नये पुराने सभी साहित्यिकों के लिए एक घोषणापत्र तैयार कर दिया है। नयी कविता उसके जितना ही अनुकूल होगी, उतना ही वह हमारी भाषा और साहित्य का माथा ऊँचा करेगी।"[92] निश्चय ही, 'बगदर्शन' महादेवी की रचनायात्रा मे नये आयाम जोड़ता है।

सप्तपर्णा–

'सप्तपर्णा' महादेवी द्वारा किए गए अनुवादों का सकलन है जिसका प्रकाशन सन् 1960 में हुआ है। इसमे महादेवी ने सस्कृत कवियों की प्रतिनिधि कवितओं को हिन्दी में काव्यरूप में प्रस्तुत किया है। अनुवाद तो वैसे ही अत्यन्त दुष्कर कार्य माना जाता रहा है क्योंकि अनुवाद अतत अपूर्ण ही रहता है। इसमे मूल रचना की आत्मा को सुरक्षित रखना आसान नहीं है। महादेवी स्वय 'अपनी बात' के अन्तर्गत

स्वीकार करती हैं—"भाषा विचारों एव मनोभावों का परिधान है और इस दृष्टि से एक विचारक या कवि की उपलब्धियाँ जिस भाषा में व्यक्त हुई है, उसमें उन्हे दूसरी वेशभूषा में लाना असभव नहीं तो दुष्कर अवश्य रहता है।"[93] किसी भी कवि के लिए अपनी ही अनुभूतियों की पुन आवृत्ति करना कठिन होता है और उस पर युगो पीछे होने वाले कवियो की अनुभूतियो की पुनरावृत्ति तो निश्चय ही आसान नहीं है लेकिन फिर भी महादेवी वर्मा के सुयोग्य हाथों में पड़कर यह अनुवाद कार्य अत्यन्त प्रशसनीय बन पड़ा है। यद्यपि महादेवी ने सप्तपर्णा के अन्तर्गत जिन अशों को अनुवाद के लिए लिया है, पुस्तक मे उनके मूल अशों को उद्धृत नहीं किया है। उन्हें मूल अशों को उद्धृत करने की कोई आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। उन्होने अपनी बात के अन्तर्गत स्वीकार किया है—"जिनका सस्कृत मूल से परिचय है, उनके निकट अनुवाद पढने का आयास चले हुए राजमार्ग की ओर पगडडियो से लौटने के समान है। और जो सस्कृत से अपरिचित और उसकी दुरूहता सम्बन्धी किवदतियों से अतिपरिचित है, वे सस्कृत के साथ मुद्रित हिन्दी की पुस्तक से भी सभीत रहते है। [94]

'सप्तपर्णा' में महादेवी ने आर्षवाणी से लेकर वाल्मीकि, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति, तथा जयदेव की रचनाओ के कतिपय मधुर अशों को अनुवाद रूप मे प्रस्तुत किया है। आज के व्यस्तता और कोलाहल से भरे हुए जीवन में यह अत्यन्त आवश्यक हे कि हमें अपने स्वर्णिम अतीत का भी ज्ञान होता रह क्योंकि जीवन मे विद्यमान विविध विरोधात्मक परिस्थितियों के बीच और जीवन में प्रगति तथा अपनी मानसिक वृत्तियो के समुचित विकास के लिए अतीत का महत्व अत्यन्त बढ जाता है। इसीलिए महादेवी द्वारा किया गया सस्कृत न जानने वाले व्यक्तियों को सस्कृत साहित्य से परिचित कराने का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़ा है।

'सप्तपर्णा' का प्रारम्भ आर्षवाणी के अनुवाद से हुआ है। निम्न पक्तियो मे प्रात कालीन उषा की सुन्दरता को मनोहारी ढग से व्यजित किया गया हैं

आ रही उषा ज्योति स्मित।

प्रज्ज्वलित अग्नि है लहराती आभा सित।[95]

उषा, ज्योतिष्मती, जागरण, बोध, अग्निगान, प्रश्न, वन्दना, शाति स्वप्न, साम्यमन्त्र, अभय, गृहप्रवेश, स्वस्ति के बाद वेदों के अशो का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। वेदों के अशों का अनुवाद प्रस्तुत किया गया। फिर वाल्मीकि, रामायण, थेरगाथा, अश्वघोश, कालिदास के रघुवश, मेघदूत, ऋतुसहार, अभिज्ञान शाकुन्तल का अनुवाद है। निम्न पक्तियाँ अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पड़ी हैं जिसमें शकुन्तला को विदा

करते समय उसके पिता ऋषि कण्व जब इतने व्यथित हो गए हैं तो फिर सामान्य व्यक्तियों की तो बात ही क्या है—

जब ममता से इतना विचलित,
व्यथित हुआ वनवासी का मन,
तब दुहिता विछोह नूतन से,
पाते कितनी व्यथा गृहीजन।[96]

सम्पूर्ण सप्तपर्णा ऐसे ही मार्मिक उद्‌गारो से भरी हुई है। महादेवी की प्रतिभा का दर्शन इसमे हमें पग-पग पर होते हैं।

लेकिन जयशकर त्रिपाठी महादेवी वर्मा द्वारा किए गए अनुवाद में कुछ दोष भी गिनाते हैं। उन्होने कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है कि अनुवाद मे प्राचीन कवि द्वारा अभिप्रेत अर्थ छूट गया है और महादेवी ने उसपर गलत अर्थ का आरोपण कर दिया है। वे कालिदास के कुमार-सम्भव के एक छद का मूल उद्‌धृत करते हुए अर्थ वैषम्य की ओर दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं—

अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराज
पूर्वा परौ तोयनिधि अवगाह्य
स्थित प्रथिव्या इव मानदण्ड ।

महादेवी द्वारा किया गया इसका अनुवाद इस प्रकार है—

पूर्व और पश्चिम सागर तक
भू के मानदण्ड सा विस्तृत
उत्तरदिशि में दिव्य हिमालय
गिरियो का अधिपति है शोभित।[97]

उपर्युक्त पद्याश मे जयशकर त्रिपाठी चार शब्दों के अर्थ में महादेवी के मत से भिन्न मत व्यक्त करते हैं। ये शब्द है—देवतात्मा, अवगाह्य, स्थित , मानदण्ड।मूल में देवतात्मा हिमालय के लिए प्रयुक्त किया गया

है और आत्मा चेतन है जबकि महादेवी ने अनुवाद मे इसके लिए दिव्य शब्द का प्रयोग किया गया है, जो अचेतन का द्योतक है। मूल में अवगाह्य शब्द का अर्थ है—पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रो मे घुसकर आलोड़न करने वाला हिमालय। जबकि महादेवी ने इसे विस्तृत के अर्थ में प्रयुक्त किया है। स्थित शब्द मूल में हढ चेतन आत्मा की सावधान स्थिति का सकेतक है जबकि महादेवी ने इसे विस्तृत के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। मानदण्ड का अर्थ कालिदास ने पृथ्वी के विस्तार को एक बार मे ही माप देने वाला मापक माना है जबकि महादेवी ने इसे विस्तृत के अर्थ में ही समाहित कर दिया है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों द्वारा भी उन्होंने मूल रचना से महादेवी के अनुवाद की भिन्नता सिद्ध की है।

महादेवी द्वारा पुस्तक मे भू अनुवाद के साथ मूल न दिए जाने को भी वे उचित नही मानते क्योंकि, "मूल न रहने से विज्ञ पाठक उनके भ्रष्ट अनुवाद का अनुमान नहीं कर पाएँगा।[98]

स्पष्ट है कि आलोचना अथवा वाद-विवाद प्रत्येक रचना के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है लेकिन इससे रचना का महत्व कम नही हो जाता। निश्चय ही'सप्तपर्णा'इन आलोचनाओ के बावजूद भी हिन्दी के पाठकों को सस्कृत साहित्य की धारा में अवगाहन कराने मे सफल रही है। महादेवी वर्मा द्वारा किया गया यह प्रयास प्रशसनीय है।

हिमालय–(1966)

'हिमालय'का प्रकाशन उस समय हुआ जब भारत की उत्तरी सीमा से चीन ने आक्रमण कर दिया था तो सभी साहित्यकार एक बार फिर एक ही झण्डे के नीचे एकत्रित हुए और महादेवी वर्मा ने इनका नेतृत्व किया। देश के स्वाभिमान और साहस को जागृत करने के लिए उन्होंने आर्षवाणी से लेकर अब तक के कवियों द्वारा हिमालय पर जो भी कविताएँ लिखी गई थी, उस सबका सकलन करके पुस्तक के आकार मे प्रकाशित करवाया। इसके विषय में महादेवी लिखती है—"हमारे राष्ट्र के उन्नत शुभ्रमस्तक हिमालय पर जब सघर्ष की नील लोहित आग्नेय घटाएँ छा गई, तब देश के चेतना केन्द्र ने आसन्न सकट की तीव्रानुभूति देश के कोने-कोने में पहुँचा दी।"[99] स्पष्ट है कि साहित्यकारों और चिन्तक वर्ग ने जब-जब भी देश के सामने सकट के बादल छाए है, उन्होंने एकजुट होकर इन समस्याओं के समाधान का प्रयत्न किया है। महादेवी लिखती है— "इसी से हिमालय के आसन्न सकट ने उसकी लेखनी को ओज के शख और आस्था की बशी के स्वर दिए है।"[100] महादेवी ने आर्षवाणी, स्मृत्यार्चन, हिमवान, श्री महाशिवपुराण, मत्स्यपुराण, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, कुमार सम्भव, मेघदूत, किरातार्जुनीयम् जैसे सस्कृत ग्रन्थो मे हिमालय पर जो पक्तियाँ है, उनका महादेवी ने हिन्दी मे अनुवाद किया है। निश्चय ही यह अनुवाद अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का बन पड़ा है। इसे

पश्चात तुलसीदास, टैगोर की कविताओं को लेते हुए नये कवियों की कविताओ को इस सग्रह मे स्थान मिला है। सबसे अन्त में महादेवी की हिमालय पर लिखी हुई रचना को स्थान मिला है। 'हिमालय' और 'बगदर्शन' की रचना महादेवी को यथार्थ की भूमि से जोड़ता है और सिद्ध करता है कि व्यक्तिगत अनुभूतियो वाली कवयित्री ने जब भी आवश्यकता हुई अपनी लेखनी और सामाजिक कार्यकलाओ द्वारा विद्रोह को मुखर किया है।

महादेवी की समस्त काव्यकृतियों से इस सक्षिप्त अध्ययन से स्पष्ट है कि उनकी अनुभूतियाँ वयस्कता के साथ-साथ गभीर से गम्भीरतम होती गई हैं।'नीहार'मे जहाँ भावुकता का प्राधान्य है और अलकरण की प्रवृत्ति अधिक है। वहीं'रश्मि' मे यद्यपि'नीहार'की तुलना में कोई गुणातमक विकास तो अवश्य दृष्टिगत नही होता। फिर भी इसमे अनुभूति के स्थान पर चिन्तन प्रधान कविताएँ अधिक हैं। नीहार में महादेवी अन्तर्मुखी रही हैं लेकिन 'नीरजा' मे पहुँचकर वह अपने भावो को अधिक सूक्ष्मता के साथ व्यक्त कर सकी हैं। कलात्मक दृष्टि से नीरजा के गीत उत्कृष्ट कोटि के हैं।'नीरजा'मे भावनाओ पर सयम का आवरण है और भाषा में भी गरिमा के दर्शन होते हैं।'सान्ध्यगीत' में महादेवी ने वैयक्तिक सुख-दुख की सीमा को पार कर लिया है। इन गीतों में करुणा एव वेदना की प्रमुखता होते हुए भी मधुरता का समावेश है।'दीपशिखा'के गीतो में साधना के प्रति आस्था निष्ठा एव अडिग विश्वास प्रकट होता है। वे विश्व की अधकारमयी स्थिति में अपनी साधना के दीप को निरन्तर प्रज्ज्वलित रखती हैं।'दीपशिखा' के बाद महादेवी काव्य क्षेत्र से विमुख होकर गद्य क्षेत्र की ओर उन्मुख हो जाती है। यद्यपि'बगदर्शन'के और'हिमालय'के सम्पादन द्वारा वे उन आलोचकों को जवाब देती है जो उनपर निरन्तर वेदना मे ही डूबी रहने का आरोप लगाते हैं।'सप्तपर्णा'द्वारा महादेवी अनुवाद कार्य को भी सफलतापूर्वक सम्पन्न करती है।'नीहार'से लेकर'सप्तपर्णा'तक के इस अध्ययन से महादेवी की मनोस्थिति मे आए क्रमिक विकास पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

* * *

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1 काव्यधारा, 1955, स शिवदान सिंह चौहान, पृ स 19

2 राग-विराग, स-रामविलास शर्मा, पृ स 66

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल पृ स 445

4 काव्यधारा, 1955 स —शिवदान सिंह चौहान, पृ स 21

5 महादेवी साहित्य समग्र—9, स निर्मला जैन, पृ स 423

6 महादेवी साहित्य समग्र—3 स निर्मला जैन पृ स 410

7 महादेवी साहित्य समग्र—3 स निर्मला जैन पृ स 410

8 महादेवी साहित्य समग्र—3 स निर्मला जैन, पृ स 410

9 नीहार, 'परिचय', महादेवी वर्मा, पृ स 5

10 नीहार, 'परिचय', महादेवी वर्मा, पृ स 6

11 महादेवी का काव्य वैभव स रमेश चन्द्र गुप्त पृ स 219

12 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ स 9

13 नीहार, महादेवी वर्मा,पृ स 76

14 नीहार, महादेवी वर्मा पृ स 18

15 नीहार, महादेवी वर्मा पृ स 29

16 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ स 17

17 सुधा, दिसम्बर—1934 पृ स 396

18 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ स 66

19 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ स 45

20 नीहार, महादेवी वर्मा पृ स 41

21 महादेवी, सत्र शचीरानी गुर्दू, पृत्र स 69

22 सान्ध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ स 9

23 महादेवी साहित्य समग्र—9 स निर्मला जैन, पृ स 583

24 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ स 65

25 महादेवी, स इन्द्रनाथ मदान, पृ स 94

26 महादेवी साहित्य समग्र—9 स निर्मला जैन पृ स 108

27 महादेवी साहित्य समग्र—9 स निर्मला जैन पृ स 131

28 महादेवी साहित्य समग्र—9 स निर्मला जैन पृ स 113

29 महादेवी साहित्य समग्र—9 स निर्मला जैन पृ स 136

30 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ स 44

31 महादेवी अभिनदन ग्रन्थ, स देवदत्त शास्त्री पृ स 102

32 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ स 24

33 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ स 24

34 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ स 65

35 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ स 16

36 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ स 13

37 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ स 52

38 महादेवी, स इन्द्रनाथ मदान पृ स 94

39 महीयसी महादेवी, ले गगा प्रसाद पाण्डेय, पृ स 277

40 महादेवी अभिनदन ग्रन्थ, स देवदत्त शास्त्री पृ स 104

41 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय, पृ स 278

42 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 16

43 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 21

44 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 13

45 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 15

46 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 26

47 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 30

48 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 31

49 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 27

50 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 32

51 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 45

52 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 33

53 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 86

54 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ स 99

55 नीरजा 'वक्तव्य', महादेवी वर्मा पृ स 8

56 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 9-10

57 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 9

58 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 10

59 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 26

60 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 50

61 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 23

62 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 35

63 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 35

64 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 48

65 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स. 39

66 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 39

67 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 31

68 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 79

69 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 42

70 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय पृ स 298

71 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय पृ स 35

72 महादेवी सस्मरण ग्रन्थ स सुमित्रानन्दन पत, पृ स 130

73 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 61

74 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 63

75 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 84

76 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 138

77 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 90

78 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 109

79 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय पृ स 315

80 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 147

81 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 145

82 महादेवी, स इन्द्रनाथ मदान पृ स 96

83 विशालभारत, मई 1944, पृ स 343

84 विशालभारत, मई 1944, पृ स 343

85 विशालभारत, मई 1944, पृ स 343

86 विशालभारत, मई 1944, पृ स 344

87 विशालभारत, मई 1944, पृ स 344

88 विशालभारत, मई 1944, पृ स 344

66 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 39

67 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 31

68 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 79

69 साध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ स 42

70 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय पृ स 298

71 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय पृ स 35

72 महादेवी सस्मरण ग्रन्थ स सुमित्रानन्दन पत, पृ स 130

73 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 61

74 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 63

75 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 84

76 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 138

77 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 90

78 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 109

79 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय पृ स 315

80 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 147

81 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ स 145

82 महादेवी, स इन्द्रनाथ मदान पृ स 96

83 विशालभारत, मई 1944, पृ स 343

84 विशालभारत, मई 1944, पृ स 343

85 विशालभारत, मई 1944, पृ स 343

86 विशालभारत, मई 1944, पृ स 344

87 विशालभारत, मई 1944, पृ स 344

88 विशालभारत, मई 1944, पृ स 344

चतुर्थ अध्याय

महादेवी के काव्य में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष

●

1 अनुभूति पक्ष

  1 1 वेदना

  1 2 करुणा

  1 3 रहस्य

  1 4 प्रकृति

2 अभिव्यक्ति पक्ष

  2 1 गेयतत्व

  2 2 भाषाा

  2 3 बिम्ब

  2 4 प्रतीक

3 महादेवी के काव्य को लेकर उठाए गए विवाद

कविता का जन्म मानवमन में उठने वाले विभिन्न भावो एव मनोविकारो से होता है। यद्यपि मानव मन में निरन्तर भाव की लहरे उठती गिरती रहती हैं लेकिन तन्मयता के कुछ विशेष क्षणो को ही कवि शब्दबद्ध कर पाता है। इन विशेष क्षणो को शब्दबद्ध करने मे उसका परिवेश और वातावरण भी सहायता प्रदान करता है और उसके भावजगत का निर्माण करने में देशकाल, परम्परा, सस्कार तथा कवि की निजी प्रकृति और विशिष्ट अभिरुचि भी सहायक सिद्ध होती है। इस विशिष्ट भावभूमि के आधार पर ही वह अपने काव्य सत्य को प्रकट कर पाता है। इस प्रकार उसकी नितान्त आत्मपरक विशेषताये उसके काव्य मे दृष्टिगोचर होती हैं। कवि जिस किसी भी भाव का वर्णन करता है, उसके व्यक्तित्व की छाया उसके प्रत्येक वर्णन में छायी रहती है। यही काव्य का प्राणतत्व है, जो उसे अन्य समान धर्माओं से विशिष्ट बना देता है।

आदिकाल से ही अनुभव और शास्त्र के मध्य सवाद की स्थिति रही है। कविता मे एक ओर तो व्यक्तिगत निष्ठा का प्राधान्य रहता है तो दूसरी ओर शास्त्र जनित ज्ञान भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके साथ ही कविपर समाज, सस्कृति, दर्शन, साहित्य और धर्म जैसे बाह्य दबाव भी बार-बार पडते हैं। दूसरी ओर उसके निजी अनुभव भी अन्तर्दबाव के रूप मे महत्वपूर्ण हो जाते हैं। प्राचीन साहित्य से ही काव्य मे हम निजी अनुभव और शास्त्र का यह द्वन्द्व देख रहे हैं। कबीर को ही ले, कबीर यदि अपने काव्य में निजी अनुभव को ही सत्य मानते हैं, तो वहीं तुलसी शास्त्र ज्ञान को अपने काव्य रचना का आधार बनाते है। लेकिन विनयपत्रिका की रचना करते समय शास्त्रीय मर्यादा मे जकड़े हुए तुलसीदास भी नितान्त निजी सुख दुखों की अभिव्यक्ति करने लगते हैं। इस प्रकार काव्य जीवन से लेकर जगत तक से सम्बन्धित व्यक्तिगत अनुभवों तथा परिवेश और परम्परा से अनुप्राणित होता है। हम महादेवी वर्मा के काव्य में भी शास्त्र और नितान्त वैयक्तिक अनुभवो—दोनों की प्रधानता पाते हैं। जिन्हें व्यक्त करने के लिए वे रहस्यात्मकता का भी आश्रय ग्रहण करती है और प्रकृति का भी सहारा लेती है और साथ ही इन भावो की अभिव्यक्ति में उत्कृष्ट कोटि के कला साधनो का प्रयोग करती है।

अनुभूति पक्ष-वेदना

प्राचीनकाल से ही वेदना को काव्य के जन्म का मूल कारक तत्व माना जाता रहा है। ससार में प्रथम

कविता का जन्म आदि कवि वाल्मीकि द्वारा क्रौंच पक्षी की मृत्यु से व्यथित होकर अनायास ही हो गया था और उनके हृदय से प्रथम श्लोक फूट पड़ा था—

"मा निषाद प्रतिष्ठात्वमगम शाश्वतीसमा ।

यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधी काममोहितम्।।" [1]

सस्कृत कवि भवभूति भी काव्य का एकमात्र रस करुणरस को ही स्वीकार करते हैं। कवि रवीन्द्र भी अपने अत स्थल मे एक विरहिणी आत्मा की उपस्थिति को स्वीकार करते हैं जो समय-समय पर उनसे कुछ कहलाती रहती हैं। आधुनिक कवि सुमित्रानदन पत कविता का जन्म 'आह' की पीडा से मानते हैं। लिखते हैं—

"वियोगी होगा पहला कवि,

आह से उपजा होगा गान,

उमड़कर आँखों से चुपचाप,

बही होगी कविता अनजान।"[2]

महादेवी वर्मा ने भी वेदना का महत्व स्वीकार करते हुए लिखा है—'मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है और दुख सबको बाँटकर—विश्वजीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र मे मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"[3] स्पष्ट है कि प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक काव्य मे वेदना का महत्व सर्वस्वीकृत रहा है।

महादेवी वर्मा अपने समर्थको और आलोचकों के मध्य वेदना की कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध रही हैं। उनका काव्य पीड़ा का काव्य है। वेदना से तात्पर्य यहाँ विरह वेदना से हैं। प्रिय की प्रतिमा को निरन्तर अपने हृदय में धारण किए हुए और आसुओं से उसका अभिषेक करने वाली महादेवी के काव्य ने भला किस सहृदय को अपनी ओर आकृष्ट नहीं किया। उनका काव्य सम्पूर्ण लोक की वेदना को धारण करने पर भी भावमय है, अभाव का वहाँ कोई स्थान नहीं है। महादेवी को यह वेदना अत्यन्त प्रिय है और इस वेदना के परिणाम स्वरूप प्राप्त पीड़ा से अलग वे अपने जीवन का कोई महत्व स्वीकार नही करती है। इसीलिए वे निरन्तर इस पीड़ा को अपने हृदय में धारण किए हुए हैं। वे अपने प्रिय को पीड़ा में ढूँढना चाहती है। वे लिखती हैं कि—

'तुमको पीड़ा मे ढूँढा

तुममे ढूँढूँगी पीड़ा।'[4]

महादेवी के मन मे यद्यपि प्रियतम से मिलने के लिए अतिशय व्याकुलता है, किन्तु उनके दूर रहने पर जो वियोग है उसी में उन्हें आनन्द मिलता है। इसीलिए वे विरह को ही सर्वस्व मानकर अपना और अपने प्रिय का मिलन नहीं चाहती और कह उठती हैं—

'मिलन का मत नाम ले

मैं विरह में चिर हूँ।'[5]

सुख और दुख मानवमन की सहज प्रवृत्तियाँ है। मानवमन सुख का तो उपभोग अकेले भी कर सकता है। लेकिन दुख मे वह सबको सम्मिलित करता है। यही कारण है कि वेदना से परिपूर्ण काव्य सभी के हृदय को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखता है। महादेवी का हृदय दुख मे भी सुख का अनुभव करता है और वह दुख के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करना चाहती है। वे कहती है—

'प्रिय! जिसने दुख पाला हो।

जिन प्राणों से लिपटी हो

पीड़ा सुरभित चन्दन सी,

तूफानो की छाया हो,

जिसको प्रिय-आलिगन सी

वर दो यह मेरा आँसू,

उसके उर की माला हो।।''[6]

पी वी नरसिंहराव का महादेवी की वेदना के सम्बन्ध में विचार है कि ''उन्होंने दुख का सर्वव्यापी स्वरूप निरूपित किया, नश्वरता की सराहना की, अमरता के प्रति उदासीनता प्रकट की, मृत्यु को उत्सुकता से आमन्त्रण दिया—यह सब कुछ किया पर निराशावश नही, बल्कि एक विशिष्ट तथा अलौकिक आशा से प्रेरित होकर, वहआशा थी— अनन्त मिलन की' यहाँ आकर उनके मिलन सिद्धान्त का प्रयोजन और महत्व स्पष्ट विदित हो जाता है। अत उनके दुखवाद की ओट में एक महान ध्येय से अनुप्राणित अजेय आशावाद कार्यशील पाया जाता है।'' [7]

ससार में वेदना का अस्तित्व दो रूपों में पाया जाता है—1 आध्यात्मिक वेदना 2 सासारिक वेदना। सासारिक वेदना भी दो प्रकार की मानी गई है—1 व्यक्तिगत वेदना 2 दूसरे प्राणी की पीडा से सवेदित एव सहानुभूति से उत्पन्न वेदना। महादेवी की वेदना मे सासारिक पीड़ा से उत्पन्न सवेदना और आध्यात्मिक पीड़ा—दोनों का ही समन्वय हुआ है। इसलिए उनकी वेदना में व्यक्तिगत अभावों से उत्पन्न पीड़ा का अभाव है। उनकी वेदना में करुणा और त्याग का समावेश है। श्री गगा प्रसाद पाण्डेय का विचार है कि, "महादेवी जी की यह व्यापक वेदनानुभूति विश्वकल्याण से अनुप्राणित अपराजेय आशा और उल्लास से सचारित होती हुई अदम्य कर्मशीलता तथा अडिग आस्था का आह्वान करने में सहज ही सक्षम एव अत्यन्त उच्चाशयी है, इसमें सन्देह नही।" उनकी निम्न पक्तियाँ वेदना की सार्थकता को स्पष्ट करती है—

एक घड़ी गा लूँ प्रिय मैं भी

मधुर वेदना से भर अन्तर

दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय,

उपल बने पुलकित से निर्झर

मरु हो जावे उर्वर गायक।[9]

महादेवी की विरह वेदना मे आध्यात्मिकता का भी समावेश हो गया है। इस आध्यात्मिक विरह वेदना की अग्नि में उनका जीवन स्वय के लिए भी भार बन गया है और वे अपने प्रिय से अपनी शिथिल अवस्था का वर्णन करती हैं और उनसे अपनी झन्कार को भी विश्ववीणा मे मिलाने के लिए आग्रह करती है—

विश्ववीणा में अपनी आज

मिला को यह अस्फुट झकार।[10]

महादेवी की विरह वेदना प्रारम्भ से ही विवाद के अनतर्गत रही है। विद्वानों का एक वर्ग इसे लौकिक मानता है जबकि दूसरा वर्ग इसे अलौकिक स्वीकार करता है। प्रथम के अन्तर्गत डा नगेन्द्र, विनयमोहन शर्मा, शचीरानी गुर्टू आदि आते हैं और दूसरे में गगा प्रसाद पाण्डेय, प्रकाश चन्द्र गुप्त, शाति प्रिय द्विवेदी आदि आते हैं। जबकि नन्ददुलारे बाजपेई का विचार है—'महादेवी जी की वेदना पहले व्यक्तिगत भावुकता अथवा दृढ़ भक्तिभावना के रूप में रही है, जो क्रमशः निखरती गई है।"[11] शचीरानी गुर्टू भी महादेवी

के काव्य में पीड़ा की प्रधानता का कारण उनके विफल प्रेम को मानती है। वे लिखती हैं—'यौवन के तूफ़ानी क्षणों मे जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ-पट पर स्नेह-ज्योत्सना छिटकी पड़ रही थी, तभी अकस्मात विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और प्राणो की धूमिलिका मे अस्पष्ट रेखाएँ सी अकित कर गई। आत्मसयम का व्रत लिए हुए उन्होने जिस लौकिक-प्रेम को ठुकराकर पीड़ा को गले लगाया—वह कालातर मे आतरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा।''[12] इसी प्रकार शचीरानी गुर्टू से मिलता-जुलता डा नगेन्द्र का विचार है—''महादेवी का एकाकी जीवन उनके काव्य में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित है। किसी अभाव ने ही उनके जीवन को एकाकिनी बरसात बना दिया है, सुख और दुलार के आधिक्य ने नही।''[13] लौकिक अलौकिक के विवाद मे पड़े बिना इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि लौकिकता और अलौकिकता को उनके काव्य से अलग नही किया जा सकता। यदि उनका प्रिय 'अलौकिक' है तो प्रकाशचन्द्र गुप्त के अनुसार, ''साधक की चिर खोज से निरन्तर उनका काव्य आप्लावित है—

पथ देख बिना दी रैन

मैं प्रिय पहचानी नही।''[14]

और यदि वह 'लौकिक' है तो विनय मोहन शर्मा के शब्दो में कह सकते हें कि—''प्रिय और प्रियतम की इस कल्पित आँख-मिचौनी से उनका काव्य क्रीडामय हो उठा है—

''प्रिय चिरन्तन है सजनि

क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।''[15]

महादेवी ने अपने काव्य मे पीड़ा को प्रयास पूर्वक स्थान नही दिया है, वरन् इस पीड़ा ने उनके जाने बिना ही काव्य में स्थान बना लिया है और अब यह पीड़ा अथवा वेदना इतनी व्यापक हो गई कि महादेवी स्वय अपना परिचय - 'नीरभरी दुख की बदली' के रूप मे देती है। जिस प्रकार बदली बरसकर सम्पूर्ण ससार को सुख प्रदान करती है उसी प्रकार महादेवी के अन्त करण में दुखवाद का वही व्यापक रूप मिलता है जो सर्वत्र उनके काव्य में छाया हुआ है।

महादेवी के प्रथम काव्य ग्रन्थ 'नीहार' से ही पीड़ा और वेदना के दर्शन होने लगते हैं—

पीड़ा का साम्राज्य बस गया

उस दिन दूर क्षितिज के पार।[16]

और पीड़ा निरन्तर गीले कपड़ो के समान उनसे लिपटी रहती है—

पीड़ा मेरे मानस से

भीगे पट सी लिपटी है।[17]

महादेवी पर दुखवाद इस तरह छाया हुआ है कि वे ससार के सुन्दर तथा रमणीय पदार्थों में भी असुन्दरता के दर्शन करती हैं। फूल मुरझा जाते हैं, चन्द्रमा छिपने के लिए उदय होता है, मेघ पानी बरसा कर रिक्त हो जाते हैं, दीप जलकर मन्द पड़ जाता है और इस प्रकार यह सम्पूर्ण जीवन ही अस्थिरता से परिपूर्ण है और अस्थिरता के कारण ही वे इस ससार को माया का देश समझती है। उन्हे इस ससार मे सर्वत्र पीडा के ही दर्शन होते हैं लेकिन इस पीड़ा से प्रेम के कारण यह महादेवी को प्रिय है। वे लिखती हैं—

'इस मीठी सी पीड़ा में

डूबा जीवन का प्याला'[18]

महादेवी ने 'रश्मि' की भूमिका में अपने दुखवाद पर बौद्धदर्शन के प्रभाव का स्पष्ट उल्लेख किया है और इन शब्दों को सभी आलोचको ने अपना आधार बनाया है। महादेवी लिखती हैं—"बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी ससार को दुखात्मक समझने वाली फिलॉसफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। अवश्य ही उस दुखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा।"[19] इसी आधार रामकृष्ण भारती महादेवी की वेदना को आध्यात्मिक मानते हैं वे महादेवी के दुखवाद को ससार के साधारण दुखवाद से भिन्न मानते हैं। वे महादेवी के काव्य में करुणा का वह अश नहीं पाते जिससे प्रेरित होकर वाल्मीकि ने आदिकाव्य की रचना की थी। रामकृष्ण भारती लिखते हैं—"महादेवी की वेदना केवल इस ससार की ही वस्तु नही उसका आध्यात्मजगत से गहरा सबध है और इसी कारण वह स्थायी है। उसका झुकाव वैराग्य की ओर अधिक है क्योकि महात्मा बुद्ध की फिलॉसफी का प्रभाव उन पर अधिक पड़ा मालूम होता है और इसे वे स्वय स्वीकार करती है।"[20] नन्ददुलारे बाजपेई भी महादेवी के काव्य में वैराग्य भावना का प्राधान्य मानते हैं। वे लिखते हैं—"महात्मा बुद्ध की भाँति नहीं (बुद्ध की मूर्तियो में दुख की मुद्रा नही मिलती) किन्तु बौद्ध सन्यासियों और सन्यासियों सरीखी एक चिन्ता मुद्रा, एक विरक्ति एक तड़प; शान्ति के प्रति एक अशान्ति महादेवी जी की कविता में सब जगह देखी जा सकती हैं।"[21]

यद्यपि महादेवी ने भगवान बुद्ध की वेदना की ओर उन्मुख फिलॉसफी को लौकिक रूपकों के माध्यम से सम्प्रेषणीय बनाया है और इसे शृगार रस के दो भागो में से एक विप्रलम्भ शृगार के अन्तर्गत

स्वीकार किया है। लेकिन श्याम नारायण वैजल इसे वैराग्य नाम दिए जाने को अस्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं कि—"पर मैं इसे वैराग्य का नाम न देकर विप्रलम्भ ही का नाम दिया चाहता हूँ, क्योंकि इनके गीत 'रति' नामक स्थायी भाव के चारों तरफ प्रस्फुटित हुए हें। उनसे वियोग प्रकट होता है। रहस्योन्मुख होने के कारण हमे वैराग्य नाम न देना चाहिए, क्योंकि ज्ञान-क्षेत्र का वैराग्य ही काव्यक्षेत्र में विप्रलम्भ-रस-प्रधान है। मिलन का अस्फुट आभास इनके गीतों मे अतर्निहित अवश्य है, पर इन 'स्वप्निल' मिलन की घड़ियो को अपनी आतरिक वेदना के कारण विरह के अतर्गत ही समझना चाहिए।"[22]

महादेवी की विरह वेदना अत्यन्त गम्भीर और व्यापक है। वह बिहारी की नायिका के सामन लौकिक नायक के विरह मे नही तड़प रही है वरन् वह तो अलौकिक जगत से अपनी वेदना को जोड़ती है। इसी कारण उनकी वेदना मे गम्भीरता की अजस्रधारा सदेव प्रवाहित हो रही है। इसमें उर्दू के दीवानो के समान आँधी और तूफानी विरह-वर्णन का सर्वत्र अभाव है। बादल के रूपक द्वारा महादेवी ने अपनी विरह वेदना को व्यक्त किया है—

क्या नयी मेरी कहानी्
विश्व का कण-कण सुनाता
प्रिय वही गाथा पुरानी।
सजल बादल का ह्दय-कण
चू पड़ा जब पिघल भू पर
पी गया उसको अपरिचित
तृषित दरक पक का उर,
मिट गयी उससे तड़ित सी
हाय वारिद की निशानी।
करुण यह मेरी कहानी।[23]

इममें 'विश्व के कण-कण' ने उनके विरह को व्यापक बना दिया है। महादेवी के काव्य में व्यक्त वेदना में केवल गम्भीरता ही नहीं है वरन् उमसे पर्याप्त व्यापकता भी है। वह आकाश मे रहने वाली बदली के समान विस्तीर्ण है। उनकी वेदना इतनी व्यापक है कि वह समस्त ससार को अपने रग में रग देने की सामर्थ्य रखती है। निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत हैं—

मैं नीर भरी दुख की बदली,

स्पन्दन मे चिर निस्पन्द बसा

क्रन्दन मे आहत विश्व हसा।[24]

गम्भीरता और व्यापकता के साथ महादेवी की विरह वेदना मे तीव्रता की मात्रा भी है। यद्यपि इनके विरह में तीव्रता की मात्रा मीरा के समान नहीं हैं। जो अपने प्रिय के विरह में व्याकुल होकर गृह नगर तज कर जगल-जगल घूमी थी, जिन्होंने सामाजिक मर्यादा के सारे बधन तोड दिए थे और गा उठी थी—मैं तो सावरे के रग राची रे, अथवा हेरी मैं तो प्रेमदीवाणी मेरा दरद न जाणै कोय। परन्तु फिर भी आराम कुर्सी पर बैठकर ससार के दुख, वेदना और ईश्वरीय वियोग को देखने वाली महादेवी की आखो ने भी विरह की अनुभूति के वर्णन में धोखा नही खाया है। श्याम नारायण वैजल लिखते हैं—"इनका वर्णन आराम कुर्सी से सबध रखने के कारण मीरा जैसी कसक और पीडा को हमारे हृदय के सम्मुख लाकर नहीं खड़ा करता है, पर तो भी उसमें वैसी तीव्रता मौजूद है, जैसी हमे उन लेखकों के सत्काव्यो मे प्राप्त होती है, जो अपनी लेखनी की सशक्तता के कारण अनुभवहीन बातों का भी अत्यन्त प्राकृतिक वर्णन कर जाते हैं।[25]

'रश्मि' काव्य ग्रन्थ में 'अपनी बात' के अन्तर्गत महादेवी स्वय स्वीकार करती है—'ससार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नही है। जीवन मे मुझे बहुत दुलार बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने ली है।"[26]

इलाचन्द्र जोशी भी महादेवी के शब्दो को ही आधार बनाकर कहते हैं कि महादेवी ने जब दुख की कठोरता का अनुभव ही नहीं किया तो उनके काव्य मे व्यक्त वेदना सारहीन प्रतीत होती है। जैनेन्द्र का भी मानना है—"महादेवी जी की पीड़ा चाहकर अपनाई गई है, मीरा की अनिवार्य। मीरा अपने में बेबस और अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए विकल हैं। वह प्यासी हैं, इसलिए उनमे पानी की पुकार है। महादेवी प्यास को ही चाहती मालूम होती है, इससे अनुमान होता है प्यास को उन्होने जाना नहीं है। घायल घाव नही चाहता। जो अभी घाव ही चाहता है, मालूम होता है उसकी गति घायल की है नही। महादेवी विरह और वियोग में रस अधिक ढूँढ़ती है। इसका अर्थ है, कि विकलता उतनी अनुभव नहीं करती।"[27]

यद्यपि कई आलोचकों ने महादेवी की विरह वेदना को वास्तविक न मानते हुए उस पर अनेक आक्षेप किए हैं पर तत्वत ऐसा नहीं हैं। जो दुख स्वार्थ की सीमा को स्पर्श नहीं करता, जो आत्मा मे

विद्यमान रहता है, वह सासारिक दृष्टि से भले ही वास्तविक न माना जाय परन्तु काव्य की दृष्टि से यथार्थत वही परम सत्य है।

महादेवी की वेदना इतना तीव्र और हृदयस्पर्शी है कि वह वेदना का अनुभव न करते हुए भी वेदना के सागर मे ही डूबी हुई नजर आती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

शलभ मैं शापमय वर हूँ
किसी का दीप निष्ठर हूँ।[28]

अपनी विरह वेदना को तीव्र बनाने के लिए महादेवी ने प्राय सभी सचारी भावों का प्रयोग किया है। जैसे प्रिय की स्मृति, उसका स्वप्न, उसकी आशा, उत्सुकता, प्रतीक्षा, व्याकुलता आदि का वर्णन बिलकुल लौकिक ढग से हुआ है। निम्न पकित्यो मे स्वप्न सचारी भाव का हृदयस्पर्शी वर्णन है जिसमे नायिका का स्वप्न मे प्रिय से मिलन हुआ है और मिलन का प्रत्यक्ष प्रभाव फूलों पर दिखाई पड़ता है। जिसमें अभी तक नायिका के आँसू और नायक के हास भरे हुए हैं। वे लिखती हैं कि—

कैसे कहती हो सपना है
अलि! उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलो मे
मेरे आँसू उनके हास।[29]

व्याकुलता सचारी भाव का उदाहरण निम्नपक्तिया है जिसमें कवियत्री ने प्रिय की कल्पना आँसू के रूप मे की है जो बार-बार नायिका की आँखो से गिर पड़ते हैं। वह कह उठती है—

वे आँसू बनकर मेरे
इस कारण ढुल-ढुल जाते
इन पलकों के बधन में
मैं बाँध-बाँध पछताऊँ [30]

नायिका विरह मे राधा की भाँति तन्मय हो जाती है है और विरह ही उसका आराध्य बन जाता है। विरह के आराध्य बनते ही द्वैत भावना समाप्त हो जाती है। तन्मय सचारी भाव का एक उदाहरण द्रष्टण्य है—

'आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा

विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा।[31]

महादेवी के काव्य की नायिका मे उसका प्रिय स्मृति बनकर खटका करता है और वे कह उठती हैं—

वे स्मृति बनकर मानस मे

खटका करते हैं निशिदिन [31]

प्रतीक्षा सचारीभाव का भी वर्णन उनके काव्य में एक से अधिक स्थलों पर मिलता ही निम्न पक्तियों में महादेवी अपनी पीड़ा को तब तक छूने नहीं देना चाहती, जब तक कि उनका प्रिय न आ जाए—

ठहरो बेसुध पीड़ा को

मेरी न कही छू लेना

जब तक वे आ न जगावे

बस सोती रहने देना।[33]

महादेवी के काव्य मे पीड़ा का स्वरूप अपनी चरम सीमा तक पहुँचा हुआ है किन्तु उसमें कही भी निराशावाद नहीं है। यद्यपि उपर्युक्त सचारी भावों में निराशा का आवरण मिलता तो है परन्तु उसका अत दुख में सुख की सभावना के साथ हो जाता है। स्पष्ट है कि चाहे सुख के रास्ते पर चला जाय, चाहे दुख के रास्ते पर चला जाय परन्तु सीमा पर पहुँचकर न दुख रह जाता है और न सुख ही। दुख सुख की उपयोगिता मार्ग में ही है विरोधी भावनाओं की सीमाएँ एक ही स्थान पर मिलती हैं। महादेवी लिखती हैं—

है पीड़ा की सीमा यह

दुख का चिर सुख हो जाना [34]

महादेवी वेदना से कहीं भी निराशा नहीं होती वरन् वे अपनी आत्मा को दुख का स्वागत करने के लिए और अधिक दृढ बना लेती है। प्रियतम के पथ में आने वाले शूलों का अब उन्हें भय नहीं है। वह लिखती है—

प्रिय के सन्देशों के वाहक

में सुख-दुख भेटूँगी भुजभर।[35]

महादेवी की वेदना पर निराशावाद का आरोप लगाए जाने के सम्बन्ध मे तत्कालीन पत्रिका 'विशाल भारत' मे मुशी रामनाथ सुमन लिखते हैं कि—"उनके काव्य का दुखवाद, समालोचको द्वारा उपहसित निराशावाद का यही रहस्य है—कठोर हृदय समालोचक शायद यह नही समझ सकते कि दुखी होने में जो शान्ति मिलती है तथा जो सन्तोष और सुख है। वह दुनिया के शब्द 'सुख' मे नहीं है।"[36]

स्पष्ट है कि महादेवी की वेदना साधारण घात-प्रतिघातों से प्रभावित होने वाली नही हैं। वह जीवन की समग्रता की स्वीकृति है। उनकी वेदना अत्यन्त व्यापक, गम्भीर और तीव्र है। गगाप्रसाद पाण्डेय का विचार है—"यह वेदना जीवन में आस्था, आनन्द और सौन्दर्य तथा साहस की विधायिका है, किसी निराशा, पराजय और पलायन की कदापि नहीं, कयोकि इसका उत्साह जीवन की अपूर्णता को देखकर उत्पन्न सहज सवेदना है, जो व्यक्ति सीमित न होकर समष्टि व्यापक है।"[37]

करुणा–महादेवी के काव्य में वेदना के साथ-साथ करुणा की अजस्र धारा भी निरन्तर प्रवाहित हो रही है। वेदना से यदि उनके काव्य का आरम्भ हुआ है तो उसका अन्त करुणा मे हुआ है। महादेवी की रचनाओ के गहन अध्ययन-मनन के पश्चात उनके काव्य में करुणा की प्रधानता के निम्नलिखित कारण दृष्टिगत होते हैं—छायावाद की प्रमुख विशेषता के रूप में वेदना का स्वीकार्य प्राचीन काल से ही करुणरस का सर्वस्वीकृत महत्व, बौद्ध र्शन में व्याप्त करुणा का महादेवी पर प्रभाव, व्यक्तिगत रुचि तथा आस-पास का परिवेश। एक अन्य कारण पर भी आलोचकों ने ध्यान आकृष्ट किया है—वह है—असफल दाम्पत्य। लेकिन इससे सभी विद्वान सहमत नहीं है।

छायावादी काव्य में प्रारम्भ से ही वेदना का साम्राज्य रहा है। इस वेदना के दो रूप हैं—दुख और आँसू। सभी छायावादी कवियों के काव्य मे दुख की अधिकता रही है जिसमें व्यक्तिगत पीड़ा से उत्पन्न दुख भी शामिल है और सामाजिक पीड़ा से उत्पन्न दुख भी समाविष्ट है। नन्द कुमार राय छायावादी कवियों में करुणा के जन्म के कारण को क्राति की असफलता से जोड़ते हैं। वे लिखते हैं कि—'छायावादी कवियों ने अपने जीवन में बहुत से युद्ध और क्रान्तियाँ देखी हैं। क्रान्ति की विफलता ने ही उनके मानस को करुणा की भावना से अभिसिक्त किया।"[38] समसामयिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर प्राय सभी कवियों ने आँसू पर कविताएँ लिखी। सुमित्रानन्दन पत लिखते हैं—

बिना दुख के सब सुख निस्सार,

बिना आँसू के जीवन भार,'[39]

और जयशकर प्रसाद तो आँसू से इतना प्रभावित हो गए कि उन्होने आँसू नामक एक ग्रन्थ ही लिख डाला—

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई।[40]

इस प्रकार महादेवी पर भी अपने युगीन साहित्यकारो का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था और वह कह उठती है—

आँसुओं का कोष उर
दृग अश्रु की टकसाल।[41]

अश्रु को केवल छायावाद में ही प्रधानता नहीं मिली थी वरन् प्राचीन साहित्य में भी इसका उल्लेख मिलता है। सूरदास ने कृष्ण के वियोग में दुखी गोपियों की दशा का वर्णन करते हुए लिखा है—

निशि दिन बरसत नैन हमारे,
सदा रहति पावस ऋतु हमपैं, जब ते स्याम सिधारे।[42]

वेदना की इसी प्रधानता ने महादेवी के काव्य में करुणा को जन्म दिया है क्योंकि करुणा ही वेदना का अन्तिम चरण है।

करुणा प्राचीनकाल से ही साहित्य मे स्थान पाती रही है। वाल्मीकि द्वारा प्रथम श्लोक का सृजन उनके हृदय में विद्यमान करुणा की भावना द्वारा ही सम्भव हो सका था। भवभूति ने तो उत्तर रामचरित नामक ग्रन्थ की रचना करुण रस में ही की थी और उन्होंने करुण रस को ही प्रमुख रस के रूप में मान्यता दी है और कहा भी गया— 'कारुण्य भवभूतिरेतनुते'। महादेवी भी करुणा को महत्व देते हुए छायावाद नामक निबन्ध के अन्तर्गत स्वीकार करती है कि—"करुणा हमारे जीवन और काव्य से बहुत गहरा सम्बन्ध रखती है। वैदिक काल में ही एक ओर आनन्द, उल्लास की उपासना होती थी और दूसरी ओर इस प्रवृत्ति के विरुद्ध एक करुण भाव भी विकास पा रहा था। एक ओर यज्ञ सम्बन्धी पशुबलि प्रचलित थी और दूसरी ओर 'मा हिस्यात् सर्वभूतानि' का प्रचार हो रहा था। इस प्रवृत्ति ने आगे विकास पाकर जैन धर्म के मूल

सिद्धान्तों को रूपरेखा दी। बुद्ध द्वारा स्थापित ससार का सबसे बड़ा करुणा का धर्म भी इसी प्रवृत्ति का परिष्कृत फल कहा जाएगा।"[43]

आधुनिक काल मे भी करुणा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। भारतेन्दु युग में पौराणिक चरित्रो को काव्य का विषय बनाया जाना करुण भावना की सामान्यता को ही व्यक्त करता हैं द्विवेदी काल के कवियो ने भी सस्कृत साहित्य से उपेक्षित पात्रों को अपनी रचना का विषय बनाया। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध द्वारा 'प्रिय प्रवास' की राधा के चरित्र को विस्तार दिया जाना और मैथिलीशरण गुप्त द्वारा 'साकेत' की उर्मिला का नये रूप में वर्णन करुणा की प्रेरणा के परिणाम स्वरूप हुआ है। स्वानुभूति के अन्तर्गत करुण भाव और व्यक्तिगत दुख की रेखा ही अस्पष्ट रहती है। करुण भाव और व्यक्तिगत दुख से समन्वित गीत का साधारणीकरण सभी के साथ हो जाता है। छायावाद के सभी कवियो में करुणा की प्रधानता रही है। इसी को लक्ष्य करके महादेवी लिखती है कि—"करुण भाव के प्रति कवियों का झुकाव भारतीय सस्कार के कारण है, पर उसे और अधिक बल सामयिक परिस्थितियों से मिल सका।"[44] महादेवी छायावाद के दुख से भरे हुए गीतों मे शाश्वत करुणा का तत्व विद्यमान पाती है जो जीवन को उज्ज्वलता देता है।

महादेवी मे विद्यमान करुणा की धारा पर बौद्धदर्शन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अपने निबन्ध में उन्होने बोधिसत्व के दो गुण आवश्यक माने हैं—महामैत्री और महाकरुणा। महादेवी लिखती हैं कि—"महामैत्री उसे अन्य प्राणियों के लाभ के लिए अपना सर्वस्व त्यागने की शक्ति देतीं है और महाकरुणा के कारण वह सबको दुख से विमुक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।"[45] महादेवी बचपन से ही भगवान बुद्ध के करुणापूर्ण दर्शन से प्रभावित थी। करुणा की प्रधानता के दर्शन उनके काव्य में पग-पग पर होते हैं।

महादेवी के काव्य मे करुणा की प्रधानता के कारण स्वरूप कुछ आलोचको ने असफल दाम्पत्य को भी गिना है लेकिन यह कारण उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि काव्य में प्राचीन समय से ही करुणा को महत्व मिलता रहा है। छायावाद के तो प्राय सभी कवियो ने करुणा को अपनाया है। इसीलिए महादेवी के काव्य में करुणा की प्रधानता के कारण स्वरूप उनका युगीन परिवेश और मानसिक बुनावट को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, किसी प्रकार की दमित काम वासना अथवा असफल दाम्पत्य को नहीं।

महादेवी के काव्य में करुणा का व्यापक प्रसार हुआ है। यहाँ तक कि वे स्वय को 'करुणा का अभिनव वाहक' घोषित करते हुए लिखती है—

मैं गति विह्वल

पाथेय रहे तेरा दृगजल,

आवास मिले भू का अचल,

मैं करुणा की वाहक अभिनव।[46]

करुणा का जन्म मानव के हृदय में तब होता है, जब वह किसी दूसरे की पीड़ा को इतनी तीव्रता से अनुभव करता है कि उसमें स्व-पर का भेद मिट जाता है, दोनों एक हो जाते हैं और यदि मनुष्य भावनाओं में इस स्तर तक नही पहुँचता तो वह दूसरो के दुख को दूर करने के लिए प्रयत्नशील भी नही रहता। मानवजीवन मे करुणा सबसे अधिक सबल लोक-मगल विधायक भाव है। महादेवी ने अपने काव्य मे करुणा के प्रतीक बुद्ध को स्मरण करते हुए लिखा है—

जाग बेसुध जाग।

अश्रु कण से उर सजया, त्याग हीरक हार,

भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रतिहार,

करुणा के दुलारे जाग।[47]

यहाँ पर महादेवी ने बुद्ध के माध्यम से करुणा की व्याख्या की है। उनकी वेदना सवेदना मे माध्यम से होती हुई करुणा का स्वरूप धारण करती हुई आत्मत्याग द्वारा दूसरों की पीड़ा को दूर करने के लिए उत्सुक है। उनकी वेदना के मूल में करुणा ही है। महादेवी के काव्य मे करुणा आत्मविस्तार का साधन बन जाती है। करुणा का सबसे उपयुक्त आलम्बन मेघ प्राचीनकाल से ही रहे हैं। जो दूसरों को हितार्थ जल बरसा कर स्वय रिक्त हो जाते हैं। महादेवी ने इसीलिए कई गीतों में मेघ को रूपक बना कर लिखा है—

मेघ सी घिर झर चली मैं।'[48]

अथवा

वे मेघ के समान मिट जाने का सकल्प लेती हैं—

"मैं मिटूँ ज्यों मिट गया घन।'[49]

जिस प्रकार बादल घिर कर बरसते हैं उसी प्रकार महादेवी ससार में चारों ओर व्याप्त वेदना की धरोहर को करुणा के रूप में परिवर्तित करके ससार में चारों ओर व्याप्त वेदना की धरोहर को करुणा के

रूप मे परिवर्तित करके ससार में वितरित कर रही हैं। जिस प्रकार आकाश में छाया रहने वाली घटा स्वय मिटकर पृथ्वी को हराभरा कर जाती है उसी प्रकार महादेवी भी स्वय मिटकर ससार की समस्याओ को करुणा के द्वारा सुलझाना चाहती है। महादेवी की वेदना और उससे उत्पन्न करुणा के सम्बन्ध मे गगा प्रसाद पाण्डेय लिखते हैं—"यदि उनकी वेदना उनके व्यक्ति जीवन की पीड़ा की ही प्रतीक होती तो उसकी परिणति करुणा में न होकर ग्लानि में होती किन्तु उनकी वेदना में ग्लानि का कोई भाव नही मिलता।"[50]

फूल भी करुण भावना का आलम्बन रहा है, जो दूसरों को सौरभदान देकर स्वय मुरझा जाते हैं। यद्यपि यह निष्ठुर ससार उसके महत्व को नहीं समझता और सूखने पर उसे जमीन पर फेंक देते हैं। महादेवी लिखती हैं—

कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है,
तेरे लिए दानी सुमन।[51]

यद्यपि यहाँ प्रत्यक्षत ससार की स्वार्थपरता की ओर सकेत किया गया है लेकिन फिर भी फूल की यौवनकालीन सुखद स्थिति से उसकी अन्तिम दुखद परिणति की तुलना करते हुए करुण भाव की अभिव्यक्ति भी की गई है। महादेवी के व्यक्तित्व मे दार्शनिक तथ्यों एव सत्यों का इस प्रकार समावेश हुआ है कि उनकी अधिकाश रचनाओ मे करुणा के साथ बौद्धिकता का आवरण भी अवश्य मिल जाता है। गणपति चन्द्र गुप्त महादेवी की उपर्युक्त कविता को करुण भाव की अभिव्यक्ति की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कविता स्वीकार करते हैं। 'वीणा' में प्रकाशित अपने लेख में ब्रज किशोर चतुर्वेदी स्वीकार करते हैं—"वेदना की गहरी रेखाओं की विविधता, करुणा के अतल गाम्भीर्य के साथ-साथ ह्रदय की विह्वल प्रसन्नता का एक अजीब दृश्य है, जो देखते ही बनता है।[52]

रामकृष्ण भारतीय महादेवी की वेदना का विस्तार करुणा में स्वीकार नहीं करते 'साहित्य सन्देश' में प्रकाशित अपने लेख में वे लिखते हैं, 'उनके काव्य में वेदना प्रधान गीतों में करुणा का वह पुट नहीं जिससे प्रभावित होकर आदि कवि ने काव्य रचना की थी। महादेवी जी की वेदना करुणा में विलीन न होकर अपना निजीपन रखती है।"[53]

कुछ आलोचक महादेवी के काव्य मे विद्यमान करुणा की धारा पर निराशावाद का प्रभाव स्वीकार करते हैं। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में निराशा के कुछ क्षण अवश्य आते हैं लेकिन उनका कोई मूल्य

नहीं है। हाँ! निराशा का स्थायीरूप से मानव मन में बस जाना विघटन की ओर ले जाता है। महादेवी के काव्य मे निराशा कभी भी विघटन की अवस्था तक नहीं पहुँचती है। इसी मत को स्वीकार करते हुए शैलबाला लिखती है—"महादेवी जी की पीठिका के रूप में, एक वाक्य जो मैं कहना चाहती हूँ, वह यह है—कि उनके काव्य में निराशा स्थायी भाव कभी नहीं रही है। मनन करने पर हमें उनकी कृतियों मे जो भाव प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होते है वे हैं अडिग विश्वास, दुर्दम साहस अनन्त धैर्य, उत्कट कर्मठता और महान कर्तृत्य।

पथ रहने दो अपरिचित

प्राण रहने दो अकेला।

क्या इस प्रकार की पक्तियों का सृजन निरन्तर निराशा में रहने वाली कवयित्री कर सकती है।"[54]

यह तो आलोचकों की अपनी अपनी दृष्टि है लेकिन यह तो उनके काव्य का अध्ययन करने के बाद लगता है कि बाह्य जगत के सन्दर्भ में करुणा के विषय में पूरी तरह से नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता है। लेकिन यह भी सच है कि जो सवेदना बाह्य जगत के प्राणियों के प्रति उनके गद्य मे मिलती है वह काव्य में प्राय एकातिक होती हुई दिखाई देती है।

रहस्य–मनुष्य अपने जन्म के साथ ही जिज्ञासा और कौतुहल की प्रवृत्ति साथ लेता आया है और निरन्तर इस जिज्ञासा की सन्तुष्टि के लिए प्रयत्नशील भी रहा है। वास्तव में मानवजीवन साँसो, प्रश्नो और समाधानो का जीवन है। भारत भूमि प्रारम्भ से ही जीवन-जगत की समस्याओ को समझने और उनको सुलझाने में अग्रणी रही है और जिज्ञासा तथा उसके समाधान का यह प्रयत्न वेदो से लेकर आज तक अक्षुण्ण रूप से चला आ रहा है। मानव का ध्यान बहिर्मुखी प्रवृत्ति से सम्बनिधत होने के कारण सर्वप्रथम प्रकृति के स्थूल रूप पर जाता है और फिर स्थूल से सूक्ष्म पर होते हुए वह अपनी जिज्ञासा का विस्तार पाता है। इस प्रकार सत्य की खोज, जिज्ञासा और ज्ञान में प्रकृति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। जीवन और जगत से सम्बन्धित इस रहस्यात्मक प्रवृत्ति और ज्ञान की जिज्ञासा से अनुभूति का प्रारम्भ होता है। इस जिज्ञासा के सम्बन्ध मे गगा प्रसाद पाण्डेय का विचार है कि—"जिज्ञासा ऐसी वृत्ति है जो दृश्य के अन्तराल में अपने इच्छित विश्वासों और अपनी इच्छित आशाओं से मुक्त होकर प्रवेश करती है और सभी स्थितियों, परिस्थितियों को पार करती हुई सत्य की उपलब्धि पर ही विश्राम करती है।"[55] इस प्रकार जिज्ञासा से ही भावबोध जन्म लेता है और भावबोध के उन्मेष से जीवन ओर जगत में विद्यमान रहस्य के प्रति अनुभूति का उदय होता है। सृष्टि के मूल सत्य से सम्बन्धित जिज्ञासा जब बुद्धि का आश्रय लेती है तब उसके तर्कसिद्ध

बौद्धिक सिद्धान्त दर्शन को जन्म देते हैं और जब वह हृदय की सवेदनशीलता तथा अनुभूति के द्वारा सचरणशील होती है तो उसके सामान्यीकरण आध्यात्मिक काव्य को जन्म देते हैं। प्राचीन समय से ही दर्शन काव्य का अभिन्न अग रहा है। कई विद्वान काव्य को दर्शन की पूर्णता के रूप में स्वीकार करते हैं। महादेवी सत्य के स्वरूप को लेकर अवश्य कवि और दार्शनिक में साम्य मानती हैं लेकिन साधन और प्रयोग की दृष्टि से वे दोनों को भिन्न मानती है। महादेवी दार्शनिक के सम्बन्ध में लिखती है कि—"दार्शनिक बुद्धि के निम्नस्तर से अपनी खोज आरम्भ करके उसे सूक्ष्म बिन्दु तक पहुँचाकर सन्तुष्ट हो जाता है।"[56] और जबकि कवि का दृष्टिकोण भिन्न है— "वह तो जीवन को, चेतना अनुभूति के समस्त वैभव के साथ स्वीकार करता है। अत कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।"[57]

इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी का काव्य जीवन की स्वीकृति का काव्य है और उनके काव्य में निहित आध्यात्मिकता का तत्व उनकी आस्था के कारण है।

भारतीय साहित्य परम्परा में रहस्यवाद का जन्म इसी उपर्युक्त पृष्ठभूमि मे हुआ है। रहस्यवाद का दर्शन हमें वेदों से ही होने लगता है और जो कई रूप बदल कर मूलत एक होते भी आधुनिक काल तक विद्यमान रहा है। रामचन्द्र शुक्ल रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं—"साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र मे वही रहस्यवाद है।"[58] लेकिन आधुनिक काल की छायावाद की शाखा के अन्तर्गत शुक्ल जी छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थ में मानते हैं जिसमे एक अर्थ रहस्यवाद से सम्बन्धित है तथा दूसरा अभिव्यजना पद्धति से सम्बन्ध रखता है। रामचन्द्र शुक्ल लिखते है—"एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है अर्थात जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यजना करता है।"[59] डा रामकुमार वर्मा रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं—"रहस्यवाद आत्मा की उस अतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और वह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों मे कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता है।"[60] गगाप्रसाद पाण्डेय रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं—"आध्यात्मिक अनुभूतियों की मधुस्निग्ध रसमयी सजल अभिव्यक्ति ही रहस्यवाद है।"[61]

इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य प्रारम्भ से ही सृष्टि के रहस्य को जानने के लिए उत्सुक रहा है। अतः उस अव्यक्त, अज्ञात प्रिय को आलम्बन बनाकर हृदय की मधुर अनुभूतियों को व्यक्त करता है लेकिन प्राचीनकाल में इसके लिए योगदर्शन के इड़ा, पिंगला जैसे साधनों का भी आश्रय लिया गया है।

आधुनिककाल में रहस्यवाद का स्वरूप थोड़ा परिवर्तित हो गया। प्राचीनकाल के रहस्यवाद में चिन्तन और तर्क की प्रधानता थी जबकि आधुनिक काल में रहस्यवाद भावना और अनुभूति का सम्बल ग्रहण करके चलता है।

महादेवी वर्मा ने अध्ययन के दौरान वेद, उपनिषद और सस्कृत साहित्य का गहन मनन और अनुशीलन किया था। वे इनके दर्शन से पूर्णतया परिचित भी थी, इसलिए उनके काव्य में इन दर्शनो के कुछ तत्वो का मिलना स्वाभाविक ही था क्योकि ये तत्व बीज रूप में उनके मस्तिष्क के किसी कोने मे विद्यमान थे, और अनायास ही उनके काव्य में आ गए थे। यद्यपि युगीन परिस्थितियो के परिणामस्वरूप इसमे ज्ञान के स्थान पर रागात्मकता का अवश्य समावेश हो गया है। महादेवी रहस्यवाद के जन्म के कारणों का उल्लेख करते हुए लिखती है—"मानवीय सम्बन्धो मे जब तक अनुराग जनित आत्मविसर्जन का भाव नही घुल जाता, तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नही हो जाती, तब तक हृदय का अभाव नहीं दूर होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना, इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।"[62]

महादेवी के उपर्युक्त कथन मे व्यक्त मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण और उसके प्रति आत्मनिवेदन से नन्द दुलारे बाजपेई सहमत नही हैं क्योंकि आत्मनिवेदन करने वाले बहुत से भक्त कवि है, जो धार्मिक दृष्टि से तो आदरणीय है, परन्तु जिन्हें रहस्यकाव्य का स्रष्टा नही माना जा सकता। नन्ददुलारे बाजपेई हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखते हैं—"महादेवी जी ने अपने इस वक्तव्य मे आवश्यक सतर्कता से काम नही लिया। यही नही, उन्होंने रूढ़िबुद्ध धार्मिक काव्य और वास्तविक रहस्यकाव्य का स्पष्ट अन्तर सदैव अपने सामने नही रखा, जिससे उनकी रचनाओ में स्थान स्थान पर पारदर्शी अध्यात्म की जगह रूढ़ि के चिह्न मिलते हैं।"[63] नन्द दुलारे बाजपेई के इस कथन से पूर्णतया सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योकि महादेवी का रहस्यवाद वेद, उपनिषद आदि से प्रभावित होते हुए भी अनुभूति और रागात्मकता के कारण अपनी विशिष्ट स्थिति रखता है।

हिन्दी के प्राचीन रहस्यवादी कवि साधनात्मक रहस्यवादी कहलाते थे। उनके रहस्यवाद की नींव आध्यात्मिकता पर आधारित थी और ज्ञान ही परमतत्व की प्राप्ति का एकमात्र साधन था। आधुनिक काल मे व्यक्त रहस्यवाद भावात्मक है। इन कवियों का मूल आधार प्रेम है। प्रेम ही परमतत्व की प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन है। कबीर हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम रहस्यवादी कवि हैं। उनका रहस्यवाद ज्ञान और

हठयोग की साधना पर अवलम्बित है। कबीर के प्रियतम निर्गुण निराकार हैं। कबीर ने भी परमतत्व के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए लौकिक रूपकों का आश्रय ग्रहण किया है और अपने प्रिय के साथ दाम्पत्य भाव के साथ-साथ अनेक संबंधों को निरूपित किया हैं। वे लिखते हैं—'हरि मोर पिउ', मैं हरि की बहुरिया।' कबीर ने जहाँ अंधविश्वासों और धार्मिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह किया है वहीं वह अद्वैतवाद को भी स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं—

लाली मेरे लाल की, जित देखूँतित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।[64]

सूफियों ने भी अद्वैतवाद का आश्रय लिया है लेकिन उनके काव्य में 'प्रेम की पीर' को प्रधानता दी गई है। इन्होंने सन्तों से भिन्न निर्गुण ब्रह्म को प्रेयसि और आत्माको प्रिय माना। सूफियों ने प्रकृति को परमात्मा का प्रतिबिम्ब मानकर उसी को परमात्मा तक पहुँचाने का साधन मानते हैं।

महादेवी के काव्य पर मीरा के प्रभाव की चर्चा आलोचकों ने बार-बार की हे लेकिन महादेवी को मीरा के स्तर पर रखना महादेवी को युगों पीछे फेंक देना है क्योंकि उन दोनों ने अलग-अलग युग में जन्म लिया है। अतः उन दोनों के रहस्यवाद में अपने-अपने युग का प्रभाव आना स्वाभाविक ही था। मीरा सगुण साकार की उपासिका थी और जबकि महादेवी निर्गुण-निराकार की। मीरा कृष्ण के वियोग में व्याकुल होकर तड़प उठी थी और लोक-लाज, घर, परिवार और सामाजिक मर्यादा के सभी बन्धन तोड़कर साधुसन्तों के समूह में शामिल हो गई थीं। किन्तु महादेवी के लिए सामाजिक सम्भ्रान्तता इतनी नगण्य वस्तु नहीं थी कि वे उस ओर ध्यान ही न देती। अतः उनका काव्य बौद्धिक संयम की सीमारेखा में बँधा हुआ है। मीरा कृष्ण के सगुण रूप का निरन्तर ध्यान किए रहती हैं जबकि महादेवी अपने असीम अव्यक्त प्रिय के प्रति अपनी भावना को प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करती है। मीरा ने योग की शब्दावली का भी अपने गीतों में प्रयोग किया है लेकिन महादेवी के काव्य में योगदर्शन के तत्व ढूँढ़ने पर भी नही मिलते। शैलेन्द्र मोहन झा, लिखते हैं कि—"मीरा ने जिस प्रकार अपने उपास्य के लिए आवेदन क्रंदन किया, उसी प्रकार महादेवी ने भी किया है। अन्तर इतना ही है कि मीरा रूप की साधिका है और महादेवी अरूप की आराधिका।"[65] यद्यपि महादेवी ने मध्ययुगीन रहस्यवादी अभिव्यक्ति के प्रभावों को स्वीकार करके उन्हें छायावादी प्रतीकों और बिम्बों में ढाल कर प्रस्तुत किया है किन्तु फिर भी उन्हें कबीर और मीरा की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। उनमें साधना का प्राधान्य था और महादेवी में रागतत्व का। सुमित्रानंदन पंत महादेवी के रहस्यवाद में मध्ययुगीन काव्य की केवल प्रतिध्वनि सुनते हैं। पंत लिखते हैं—"उनकी सी पीड़ा मीरा, कबीर किसी

मे इतनी मात्रा मे इसलिए भी नहीं है कि चाहे ज्ञान पथ से चाहे भक्तिपथ से वे केवल व्यक्ति मुक्ति ही चाहते रहे और महादेवी का युग लोक मुक्ति का, दारिद्रय, दैन्य, दुख, अशिक्षा, अन्धकार तथा सशकित स्त्री पुरुषो की परस्पर सहानुभूति से पीड़ित असख्यो की सख्या में विदीर्ण लोकजीवन की मुक्ति एव पुनर्निर्माण का युग है, इसलिए उनकी प्रेरणा का स्रोत मध्ययुगीन जीवन दृष्टि मे होना सम्भव नहीं हो सकती।[66]

यद्यपि आधुनिक काल का रहस्यवाद प्राचीन रहस्यवाद के जैसा तो नही है लेकिन फिर भी उसमें प्राचीन परम्परा के सभी तत्व विद्यमान हैं। महादेवी ने 'रहस्यवाद' नामक निबन्ध में स्पष्ट किया है कि गीतो में जिस रहस्यवाद को स्वीकार किया जा रहा है, वह उपर्युक्त सब विशेषताओ से सयुक्त होते हुए भी अलग है। महादेवी लिखती हैं—"उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबके कबीर के साकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र मे बाँधकर एक निराले स्नेह सबध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सकेगा।"[67] महादेवी के इस कथन से स्पष्ट है कि उनका रहस्यवाद आध्यात्मिक है जिसमें प्राचीन काल के सभी दर्शनो का समन्वय है। उसमें पराविद्या की अपार्थिवता भी है, वेदान्त के अद्वैत की छाया भी है, लौकिक प्रेम की तीव्रता भी है और इन सबको कबीर के 'दाम्पत्य भावसूत्र मे, बाँध दिया गया है। शम्भु नारायण लाल 'साहित्य सन्देश' के लिखते हैं "महादेवी ने कबीर की निर्गुण उपासना में मीरा की मधुर साधना का समावेश कर उसका अनुपम रूप अपने गीतो में उपस्थित किया है।"[68]

महादेवी के काव्य में जिज्ञासा और विस्मय की भावना प्रारम्भ से ही मिलने लगती है। जिस जिज्ञासा से प्रेरित होकर वैदिक ऋषि सृष्टि के रहस्य को जानने के लिए उन्मुख हुए थे। वही जिज्ञासा महादेवी को भी बेचैन किए है और वह कह उठती है—

'तोड़ दो यह क्षितिज, मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?'[69]

स्रृष्टि तो अनेक रहस्यों से भरी हुई है और महादेवी इस विश्वप्रतिमा के निर्माण में भी अपनी जिज्ञासा का परिचय देती हैं—

'और किस शिल्पी ने अनजान
विश्वप्रतिमा कर दी निर्माण'[70]।

कभी-कभी यह जिज्ञासा प्रश्न में बदल जाती है और वे पूछ उठती है—

'कौन तुम मेरे हृदय में'?[71]

महादेवी के काव्य में अद्वैतवाद का पर्याप्त प्रभाव है। अद्वैतवाद एकमात्र ब्रह्म को सत्य मानता है और ब्रह्म तथा जीवमूलत एक है। उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। अद्वैतवाद को प्रतिपादित करने वाली अनेक पक्तियाँ उनके काव्य मे मिल जाती है—

"मैं तुमसे हूँ एक, एक है जैसे रश्मि-प्रकाश
मैं तुमसे हूँ भिन्न-भिन्न ज्यों घन से तड़ित विलास?[72]

समस्त ससार उसी प्रकाशपुज की रश्मियाँ हैं अत सब एक ही हैं यदि उनमे भिन्नता है भी तो वह वैसी ही है जैसे बादल से बिजली भिन्न होती है, किन्तु मूलत वह एक ही हे।

अलौकिकता और अद्वैतवाद के साथ लौकिक प्रतीको का भी समावेश कर दिया गया है जिससे एक ओर काव्य मे अनुभूति की प्रधानता हो गई हैं तो दूसरी ओर अभिव्यक्ति ग्राह्य होने के साथ साधारणीकरण भी सम्भव हो सका है। यही कारण है कि प्राचीनकाल के भक्त कवियो ने भी आत्मा-परमात्मा के सबध को लौकिक रूपको के माध्यम से व्यक्त किया है। 'ढोल गवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी' कहने वाले तुलसी को भी भक्त-भगवान के सबध को दिखाने के लिए 'कामिनी नारी पियारी जिमि' जैसी पक्तियाँ लिखने को विवश होना पड़ा और कबीर, जो हाथ में लुकाठी लेकर स्पष्ट शब्दो में घोषित करते हैं कि 'जो फूके घर आपना, चले हमारे साथ' को भी अज्ञात अव्यक्त प्रिय को सुगम बनाने के लिए 'हरि भोर पिउ मैं हरि की बहुरिया' जैसी पक्तियाँ लिखनी पड़ी थीं। अत महादेवी के काव्य में लौकिक रूपको के समावेश द्वारा प्रिय की अभिव्यक्ति की गई है जैसे निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा।
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा।।[73]

अथवा, वे लिखती हैं—

तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या?[74]

महादेवी के काव्य में अद्वैतवाद के मायावाद की स्पष्ट झलक निम्न पक्तियों में मिलती है इसमें वे स्पष्ट करती है—

'सखे! यह है माया का देश

क्षणिक है तेरा मेरा सग'[75]

इसमें ससार को माया का देश कहा गया है और उसे क्षणिक माना गया है और दूसरे उदाहरण में जगत को माया रूपी दर्पण माना गया है, जिसका प्रतिबिम्ब सत्य न होकर भ्रम है और माया के अज्ञान का ज्ञान न होने पर सत्य का ज्ञान हो जाता है—

टूट गया वह दर्पण निर्मम![76]

अद्वैतवाद को महादेवी के काव्य मे पर्याप्त महत्व दिया गया है। विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं— "महादेवी ने अपनी कविता मे रहस्यभावना को स्थान देते हुए यद्यपि अद्वैतमत की अवहेलना नहीं की है, किन्तु उसका अद्वैत काव्य की मृदुल-मोहक सरणियो में होकर माधुर्य सिक्त हो गया है।"[77]

महादेवी के काव्य मे द्वैतवाद की भी कविताएँ मिलती हैं। द्वैतवाद के अनुसार, आत्मा ब्रह्म से भिन्न नहीं है। अत वह ब्रह्म की ही तरह असीम और अनन्त है। वह स्वय ब्रह्म भी है और उसका अशभूत जीव भी—

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।[78]

महादेवी रहस्यवाद के लिए द्वैतवाद एव अद्वैतवाद दोनों को स्वीकार करते हुए लिखती है "रहस्यभावना के लिए द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी, क्योंकि एक के अभाव मे विरह की अनुभूति असम्भव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा आधार खो देती है।"[79] महादेवी ने ब्रह्म के समक्ष कहीं भी जीव के महत्व को कम नहीं होने दिया है वरन् वह गर्व के साथ घोषणा करती है—

चिन्ता क्या है हे निर्मम,

बुझ जाये दीपक मेरा।

हो जाएगा तेरा ही,

पीड़ा का राज्य अँधेरा।[80]

इस प्रकार महादेवी ने जीव के महत्व को ब्रह्म के समक्ष बहुत मधुर ढग से व्यजित किया है।

महादेवी ने किसी दर्शन विशेष के साम्प्रदायिक प्रभाव को ग्रहण नहीं किया वरन् अपनी अनुभूति को व्यक्त करने के लिए उन्हें जिस दर्शन अथवा वाद की आवश्यकता हुई, उसे स्वीकार कर लिया है।

उन्होने निम्न पक्तियो में अपने प्रिय को स्वामी मानकर हास्यभाव की भक्ति स्वीकार की है—

"क्या पूजा क्या अर्चन रे।

उस असीम का सुन्दर मन्दिर, मेरा लघुतम जीवन रे।[81]

महादेवी के काव्य में अलौकिकता कहीं-कहीं अध्यास और मृगमरीचिका के रूप मे व्यक्त हुई है, जैसे निम्नपक्तियाँ द्रष्टण्य है—

"पाने में तुमको खोऊँ, खोने मे समझूँ पाना,

यह चिर अतृप्ति हो जीवन, चिर तृष्णा हो मिट जाना।"[82]

स्पष्ट है कि महादेवी की रहस्यभावना में उपनिषदों का यह मूलमत्र सर्वत्र प्रवाहित होता हुआ दिखाई दे रहा है—'सर्व खल्विद ब्रह्म नेहनानास्ति किञ्चन' अर्थात् सम्पूर्ण जगत ब्रह्म में है और जो विविध रूप में इस ससार में दिखाई पड़ता है वह सत्य नही है, भ्रम मात्र है। उपनिषदो की भाँति महादेवी ने भी ब्रह्म को 'रसो वै स ' माना है। वे यह भी मानती है कि प्रिय की मधुर भावना से समन्वित होकर प्रिय प्राप्ति की साधना मार्ग के सभी कष्ट मधुर लगने लगते हैं और साधिका ने सुख-दुख मे एक अद्भुत सामजस्य ढूँढ लिया है। दुख भी उसे सरस प्रतीत होने लगा हैं—

'विरह का युग आज दीखा

मिलन के लघु पल सरीखा'[83]

सभी रहस्यवादी कवि रहस्यवाद की अतिम परिणति आत्मा द्वारा परमात्मा की प्राप्ति मे मानते हैं लेकिन महादेवी इस सन्दर्भ में एक मौलिक उद्भावना की रचना करती हैं। वे परमात्मा की प्राप्ति नहीं चाहती वरन् उनको तो विरह के परिणामस्वरूप प्राप्त पीड़ा ही अभीष्ट है क्योंकि इसमें साधक निरन्तर प्रयत्नशील रहता है और अभीष्ट की प्रापित के बाद तो वह निष्क्रिय हो जाता है। निम्न पक्तियाँ महादेवी की इस भावना को व्यक्त कर रहीं हैं—

'मिलन का मत नाम ले,

मैं विरह में चिर हूँ।'[84]

मध्ययुगीन सतों की रहस्यभावना के समान महादेवी ने कहीं भी परमतत्व के प्रति दैन्य का प्रदर्शन नहीं किया है। वरन् वह तो किसी भी तरह से स्वय को ब्रह्म से छोटा नहीं मानती। उनका मानना है कि यदि ब्रह्म में अनन्त करुणा है तो उनमें असीम सूनापन है—

उनसे कैसे छोटा है

मेरा यह भिक्षुक जीवन

उनमें अनन्त करुणा है,

इसमें असीम सूनापन।[85]

महादेवी ने भी लौकिक रूपकों का आश्रय लिया है। लेकिन फिर भी वे अपने निजत्व को समाप्त करके प्रिय से मिलन की इच्छुक नही है। वह सगर्व घोषणा निम्न पक्तियो में करती हैं—

सजनि, मधुर निजत्व हैं,

कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।[86]

प्रिय-पथ में अनेक कठिनाइयाँ है लेकिन महादेवी इन कठिनाइयो से भयभीत नहीं है। वरन् उन्हें तो प्रिय के मार्ग मे आने वाली बाधाएँ अत्यन्त प्रिय हैं, जैसा कि निम्न पक्तियाँ में स्पष्ट है—

प्रिय-पथ के यह शूल

मुझे अति प्यारे ही हैं।[87]

रहस्यवादी कवियो ने प्रकृति के प्रत्येक कोने मे अपने प्रिय के दर्शन किए हैं और महादेवी में भी इस प्रवृत्ति का अभाव नही मिलता। उन्होने अपनी रहस्यभावना को जिन प्राकृतिक व्यापारो एव सकेतों के माध्यम से व्यक्त किया है वे स्थल अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पड़े हैं। महादेवी उस अप्रत्यक्ष ब्रह्म और उसकी सौन्दर्य-सत्ता का उन्ही साकेतिक और प्राकृतिक व्यापारों द्वारा इशारा करती है जो अनेक बार व्यवहृत होकर मानव मन से काफी सामजस्य प्राप्त कर चुके हैं। इसी से इनकी रहस्यभावना मे मधुरता और लावण्य है। जैसा कि निम्न पक्तियों से स्पष्ट है—

मुस्काता सकेत भरा नभ,

अलि। क्या प्रिय आने वाले हैं।[88]

श्याम नारायण वैजल महादेवी की रहसयभावना की प्रशसा करते हुए लिखते हैं—"इनका रहस्यवाद पिंगल के नियमों को भग करके खड़ा किया हुआ निरर्थक शब्दाडबर नही, जैसा कि हम आधुनिक हिन्दी-कवियों मे पाते हैं।"[89]

भारत आध्यात्म प्रधान देश होने के कारण यहाँ आध्यात्मिक अनुभूति दुर्बोध नहीं रही है। महादेवी

ने भी कही-कहीं अपनी अनुभूति को साधारण जनता के लिए हृदयगम बनाने के लिए अपनी साधिका को गोपिका के रूप मे प्रकट कर दिया है और निर्गुण, असीम, अव्यक्त प्रिय को सगुण साकार रूप प्रदान कर दिया है जैसा कि निम्न पक्तियों मे स्पष्ट हैं—

"जग ओ मुरली की मतवाली।
दुर्गम पथ हो ब्रज की गालियाँ
शूलो मे मधुवन की कलियाँ,[90]

महादेवी ने अन्य रहस्यवादी कवियो के समान प्रतीक पद्धति का जमकर उपयोग किया है। परन्तु उनके रहस्यवाद की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह सिर्फ ज्ञान क्षेत्र की वस्तु नहीं है वरन् व्यावहारिक स्तर पर सेवा तथा करुणा को जीवनदर्शन के रूप मे स्वीकार करता है। उनका रहस्यवाद अपने प्रिय के पथ को निरन्तर आलोकित करना चाहता है, जिसमें विश्वसेवा और लोककल्याण की भावना भी सन्निहित है। जैसा कि निम्न पक्तियों से स्पष्ट है कि—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।[91]

प्रियतम का पथ आलोकित करने की यह भावना महादेवी मे बुद्ध की महाकरुणा द्वारा आई है। दुर्गाशकर मिश्र भी महादेवी के रहस्यवाद मे सेवा की प्रमुखता मानते हैं। वे लिखते हैं कि—"महादेवी ने रहस्यवाद को आत्मा का गुण माना है अतएव उनका रहस्यवादी जीवन सेवा का जीवनदर्शन ही है और उनकी रहस्यभावना उनके हृदय का सौन्दर्य है तथा यह विशिष्टता बहुत ही कम रहस्यवादी कवियों मे दृष्टिगोचर होती है।"[92] इसी प्रकार 'विशाल भारत' पत्रिका में मुशी रामनाथ सुमन महादेवी के रहस्यवाद की प्रशसा करते हुए लिखते हैं—"सीमा और असीम, अन्त और अनन्त, मृत्यु और अमरता, दुख और सुख, सृष्टि और प्रलय जीवन के दो परम विरोधो को उन्होंने इतनी कोमलता से और इतने सुन्दर ढग से एक कर दिया है कि हिन्दी साहित्य ही नहीं, विश्वसाहित्य उनके रहस्यवाद का ऋणी है।[93]

महादेवी का रहस्यवाद भी वाद-विवाद से परे नहीं रहा है। कुछ आलोचक उन्हें कबीर, जायसी, मीरा की परम्परा में स्थान देते हैं और कुछ उनके काव्य की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक मानने को तैयार नही होते और उसे पूर्णतया लौकिक स्वीकार करते हैं, इसके मूल में कुण्ठा एव अतृप्ति की भावना देखते हैं। नन्ददुलारे बाजपेई महादेवी के रहस्यवाद को मध्ययुगीन सतों के रहस्यवाद के समकक्ष मानते हैं और उसे धार्मिकता

की कोटि मे परिगणित करते हैं। वे लिखते हैं—"प्रचुर कल्पनागुण के कारण महादेवी जी ने रहस्यात्मकता कभी खोई नही, किन्तु उनकी रचनाओं में भक्तो एव निर्गुणियों की रूढ़ि भी कम नही मिलती।"[94] यद्यपि बाद में स्वय नन्ददुलारे बाजपेई अपने ही मत से वैभिन्नय प्रकट करते हैं और उन आलोचकों को आड़े हाथों लेते हैं जो यह नही समझ पा रहे हैं कि वे किस जगत की बात कर रही हैं। नन्द दुलारे बाजपेई लिखते हैं—"यहाँ मैं उन महानुभावो को शुमार नहीं कर रहा हूँ जिनकी राय में रहस्यवाद किसी प्राचीन बर्बर युग की स्मृति है, मनुष्य की अविकसित बाल्यभावना की सृष्टि है और जो वैज्ञानिक विकास सिद्धान्त से बहुत दूर की चीज हो गई है। ऐसे लोग तो काव्याध्ययन के अधिकारी भी हैं, मैं नही मानता।"[95]

नगेन्द्र आधुनिक काव्य की आध्यात्मिकता मे बिल्कुल भी विश्वास नही करते। इसलिए वे महादेवी के गीतों में व्यक्त असीम, अव्यक्त के प्रति प्रणय निवेदन को पूर्णत असन्तोष और कामभावना की अतृप्ति से जोड़ते हैं। स्पष्ट शब्दों में नगेन्द्र लिखते हैं—"परन्तु बुद्धि के इस युग में, जैसा कि महादेवी जी ने स्वय अपनी भूमिका मे स्वीकार किया है, इस प्रकार की रहस्यानुभूति कम से कम एक नवीन शिक्षादीक्षा में पोषित बुद्धिजीवी वर्ग के लिए सम्भव नही है।"[96] वे आगे लिखते हैं कि "बुद्धिजीवी महादेवी में सन्त कवियो का सा विश्वास और समर्पण भी सम्भव नहीं हो सका, इसलिए उनके हृदय में अज्ञात के प्रति भी जिज्ञासा ही उत्पन्न हो सकी है पीड़ा नहीं'।[97]

लेकिन यह आरोप निराधार है कि उनके मन को लौकिक बधन कभी आकृष्ट नही कर सके। ऐसी कोई विवशता भी उनके सामने नहीं थी जिससे बाध्य होकर वे लौकिक बधनों के प्रति उन्मुख नहीं हुई। उनका मानसिक गठन ही ऐसे तत्वों से हुआ था जिसमे लौकिकता की प्रवृत्ति नहीं थी। शान्ति अग्रवाल लिखती है कि "यदि कोई लौकिक अभाव कभी उन्हें अखरा भी होगा तो उसकी लौकिकता भी काव्य में आते-आते अलौकिक बन गई।[98] धनजय वर्मा भी डा नगेन्द्र के मत से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि "उनके काव्य को बुद्धिवाद की सर्जना मानना ही उनके साथ अन्याय करना है। उनके काव्य का चिन्तन प्राधान्य उन्हे दार्शनिकता की ओर ले गया है और इसकी भावात्मक अभिव्यक्ति को रहस्यवाद का परिवेश मिलता है।"[99] महादेवी के काव्य को किसी कुण्ठा का परिणाम मानना किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं हैं।

प्रतीकों के प्रयोग के कारण अनेक आलोचकों ने महादेवी के रहस्यवाद को दुर्बोध माना है और उसमें अस्पष्टता भी आ गई है। ऐसे आलोचक प्रतीको के अधिक प्रयोग का कारण उनके नारी स्वभाव को मानते हैं। इन आलोचको में पत और इन्द्रनाथ मदान दोनों ही मानते है कि यदि महादेवी के प्रतीको के अर्थ को एक बार भलीभाँति समझ लिया जाय तो उसमे इतनी दुर्बोधता नहीं रह जाती। श्याम नारायण

वैजल भी इस मत को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि—"धीरे-धीरे पाठक इन प्रतीको से परिचय और मैत्री स्थापित कर रहे हैं। इस परिचय के साथ रहस्यवादी कवियो की दुर्बोध दीवार भी पतनोन्मुख होती जा रही है।[100]

महादेवी को अनेक आलोचक 'निर्गुण की उपासिका' कहकर सम्बोधित करते हैं और इसके लिए कृष्णदास के निम्न वक्तव्य को आधार बनाते हैं। कृष्णदास लिखते हैं कि—"मीरा ने जिस प्रकार उस परम पुरुष की उपासना सगुण रूप में की थी, उसी प्रकार महादेवी जी ने अपनी भावनाओं मे उसकी आराधना निर्गुण रूप में की है।"[101] यह कथन ही आलोचको के मध्य भ्रम का कारण रहा है। महादेवी ने अवश्य ही निर्गुण की उपासना की है लेकिन वह धार्मिक तत्वों से प्रेरित नहीं है क्योंकि उसमें व्यक्ति मुक्ति नहीं वरन् लोक मुक्ति की आकाक्षा व्यक्त की गई है। विश्व प्रकाश बटुक इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि—"निर्गुण का उपासक नहीं होता, साधक होता है।' महादेवी उपासिका नहीं वरन् साधिका हैं। उनके काव्य में जो प्रश्न जिज्ञासा और विस्मय की प्रवृत्ति पाई जाती है वह एक भक्त के अनुराग के कारण है।"[102]

महादेवी को कबीर, जायसी, मीरा की पक्ति मे नही बिठाया जा सकता जैसा कि अनेक आलोचक करते रहे हैं। महादेवी का रहस्यवाद भावनात्मक है, जबकि इन कवियों का रहस्यवाद साधनात्मक था। कुछ आलोचक तो इनमें आध्यात्मिक अनुभूति का भी अभाव पाते हैं।रामनन्दन प्रसाद सिंह लिखते हैं। "आज के बुद्धिजीवी कवि के लिए वासना को सूक्ष्मतर करना तो साधारणत सम्भव है, परन्तु आध्यात्मिक अनुभूति का होना उसके लिए सहज सम्भव नही है।[103] रामचन्द्र शुक्ल तो समस्त छायावादी कवियों मे केवल महादेवी को ही रहस्यवादी स्वीकार करते हैं लेकिन बाद मे वे उनकी वेदनानुभूतियों के सबध में सशकित होकर लिखते हैं—"इस वेदना को लेकर इन्होने ह्रदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता है।[104]

कुछ आलोचक महादेवी को रहस्यवाद की कोटि में रखने में कठिनाई पाते हैं क्योंकि उनकी उक्तियों में एकरूपता का अभाव है। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए कहीं अद्वैत का आश्रय लिया है, तो कभी द्वैत के सहारे अपनी भावनाओ को व्यक्त करती है और कहीं स्थूल के प्रति भी अपनी ममता प्रकट करती हैं। रामनन्दन प्रसाद सिंह लिखते हैं—"सन्तो की वाणी में हमे जिस ईश्वरीय अनुभूति का साक्षात्कार होता है, वह महादेवी में देखने को नहीं मिलता। उनका रहस्यवाद तो काव्य विलास सा लगता है और उसमें कल्पनालोक का विहार मिलता है।[105]

महादेवी के रहस्यवाद के इस वर्णन से स्पष्ट है कि महादेवी के रूढ़ अर्थ मे रहस्यवादी नही कहा जा सकता और न ही यह स्वीकार किया जा सकता है कि उनके काव्य में आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का अभाव है। महादेवी ने, जैसा कि अपने 'रहस्यवाद' नामक निबन्ध में स्पष्ट किया है कि उन्होने परम्परा से कुछ न कुछ तत्वों को अवश्य ग्रहण किया है। वैसे भी कोई प्रवृत्ति परम्परा से पूर्णतया अलग हो भी नही सकती। अत महादेवी ने रहस्यवाद के परम्परागत रूप को स्वीकार करके युगीन आवश्यकताओ के अनुरूप उसमे परिवर्तन कर लिया है। महादेवी ने कबीर के विचारो को अवश्य ग्रहण किया लेकिन उनमें प्रिय के प्रति जो व्याकुल कर देने वाला प्रणय निवेदन है, वह पूरी तरह से उनका अपना है। इसी प्रकार सूफियो की 'प्रेम की पीर' को वे ग्रहण करती है किन्तु सूफियो मे 'प्रेम की पीर' जहाँ एकान्तिक साधना बन गई है। वहीं महादेवी मे यह करुणा का आश्रय लेकर काव्य मे कम लेकिन गद्य मे पूर्णतया सामाजिक हो गई है। मीरा में जहाँ ह्रदय की सहज अभिव्यक्ति हुई हैं वही महादेवी में वह बौद्धिक नियन्त्रण से युक्त है। इसीलिए महादेवी को इन कवियों के साथ एक पक्ति मे नही बिठाया जा सकता। कई आलोचकों का यह आरोप कि दमित काम वासना अथवा अतृप्ति के कारण अपने लौकिक प्रेम को व्यक्त करने के लिए उन्होने प्रतीको का आश्रय लिया यह भी उचित नहीं है क्योंकि प्रतीकों का प्रयोग सिर्फ महादेवी ही नहीं करती वरन् हिन्दी साहित्य के प्रथम रहस्यवादी कवि कबीर के काव्य में भी प्रतीको का प्रयोग मिलता है अत केवल नारी होने के कारण महादेवी पर लगाया गया यह आरोप उचित नही प्रतीत होता। महादेवी का रहस्यवाद परम्परा प्रचलित रहस्यवाद से भिन्न अवश्य है लेकिन वह प्राचीन रहस्यवाद के अधिक विकसित रूप को प्रकट करता है। इसमें करुणा, सेवाभाव और सम्पूर्ण विश्व के प्रति एक मानवतावादी दृष्टिकोण का भी समावेश हो गया है। महादेवी के रहस्यवाद में आध्यात्मिकता का अभाव नहीं है, जैसा कि कुछ आलोचकों ने माना है। बल्कि महादेवी द्वारा किया गया वेद, उपनिषद और सस्कृत साहित्य के गहन अध्ययन के कारण आध्यात्मिकता के तत्व का समावेश स्वत ही हो गया हे। इस प्रकार महादेवी के रहस्यवाद में सतों जैसा दैन्य नही, वरन् दृढ आत्मविश्वास प्रकट होता है और वे कह उठती हैं—

"पंथ होने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला।[106]

प्रकृति–प्रकृति अनन्त काल से मनुष्य की चिर सहचरी रही है। मनुष्य ने अपने जन्म के साथ पहला साहचर्य प्रकृति का ही पाया और प्रकृति मे व्याप्त असख्य रहस्यो एव विस्मय को देखकर उसके मन में जिज्ञासा वृत्ति ने जन्म लिया, जिसके परिणामस्वरूप दर्शन एव विज्ञान का उद्‌भव एव विकास सम्भव हो सका। प्रकृति में व्याप्त अनन्त सौन्दर्य चेतना ने उसके ह्रदय को कोमल भावनाओं को जागृत

किया और उन भावानुभूतियों ने प्राचीनकाल से लेकर आज तक के साहित्य में सरस अभिव्यक्ति पाई। प्रकृति इतनी उदारमना है कि मनुष्य ने अपने समस्त भावों का तादात्म्य प्रकृति के साथ इस प्रकार कर लिया कि वह उसे अपने सुख में पुलकित और दुख मे उदास दिखाई देने लगी। वास्तव मे प्रकृति के सान्निध्य मे रहकर ही हम अपना जीवन सरस बना सकते हैं। महादेवी भी एक स्थान पर स्वीकार करती हैं कि "रोगी की व्याधि विशेष के लिए औषधि विशेष उपयोगी हो सकती है पर उसके सिरहाने किसी सहृदय द्वारा रखा हुआ अधखिला गुलाब का फूल भी कम उपयोगी नहीं।[107] इस प्रकार स्पष्ट है कि 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश' ने प्रारम्भ से ही मनुष्य की सवेदना को विकसित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

प्राचीन समय से प्रकृति कवियो द्वारा प्रमुख विषय के रूप मे गृहीत की जाती रही है। वेदों एव उपनिषदो से लेकर आज तक के आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रकृति नाना रूपों के साथ उपस्थित है। वेदो और उपनिषदो में प्रकृति को दिव्य शक्तियो का प्रतीक माना गया। और सस्कृत साहित्य में तो कालिदास द्वारा प्रकृति का एक अश 'मेघ' को लेकर 'मेघदूत' जैसे सरस काव्यग्रन्थ की रचना की गई। हिन्दी सात्यि मे आदिकाल के अर्न्तगत तो अवश्य प्रकृति को उतना महत्व नहीं मिला लेकिन भक्तिकाल में कबीर और जायसी दोनो ने अपनी रहस्यात्मक अनुभूतियो को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का आश्रय लिया और अपने असीम अव्यक्त, अज्ञात प्रिय को पाने के लिए प्रकृति को माध्यम के रूप मे स्वीकार किया। सूरदास और तुलसीदास जैसे भक्त कवियों के काव्य मे भी प्रकृति का प्रयोग आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपो मे किया गया है। रीतिकाल में अवश्य प्रकृति के शुद्ध चित्रण को स्थान नहीं मिला क्योंकि रीतियों और लक्षण ग्रन्थो की प्रधानता के कारण वे प्रकृत्ति का अपने काव्य में भरपूर उपयोग नही कर पाए। यद्यपि इसका अपवाद सेनापति का ऋतु-वर्णन रहा है। इस प्रकार हिन्दी के मध्ययुगीन कवियों एव रीतिकालीन कवियो ने प्रकृति को वह महत्ता प्रदान नही की जो सस्कृत साहित्य मे प्रकृति को प्राप्त हुई थी। उन्होने प्रकृति का चित्रण या तो अप्रस्तुत विधान के रूप मे किया या उद्दीपन के रूप में किया। मध्ययुगीन कवि प्रकृति से सम्बन्धित विषयों की सूची गिनाकर ही सतोष करते रहे। भारतेन्दु युग मे भी काव्य में प्रकृति का सीमित उपयोग ही हुआ लेकन द्विवेदी युग के कवियों ने एक बार फिर से प्रकृति को स्वतन्त्र रूप से काव्य का विषय बनाया। डा दुर्गा शकर मिश्र स्वीकार करते हैं—"सतोष का विषय है कि द्विवेदीयुग में प्रकृति ने फिर से अन्मुक्त वातावरण में साँस ली और तथाकथित शास्त्रीय बधन से छूटकर वह कवि के मानस में हर्षोल्लास की तरग उत्पन्न करने की क्षमता जुटा सकी।[108]

आधुनिक काल में आकर कवि को प्रकृति में व्यापक आयाम मिले। समाज के घुटते हुए वातवरण में उसने पर्वत, नदी, वृक्ष, पेड़, पौधे, पुष्प, मेघ में नई स्वच्छन्दता के दर्शन किए। छायावाद में आकर

तो प्रकृति काव्य की मुख्य प्रवृत्ति बन गई। पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' स्वीकार करते हैं कि "प्रकृति को अलग कर लिया जाय तो छायावाद पगु हो जाता है।"[109] छायावाद ने प्रकृति को पूरी तरह से मध्ययुगीन बधनो से मुक्त कर दिया। अब कालिदास के काव्य में वर्णित मेघ केवल सदेश वाहक की भूमिका का निर्वाह ही नहीं करता वरन् वह अपने विषय में स्वय बताता भी है। प्रकृति का केवल स्थूल रूप ही काव्य में व्यवहृत नही हुआ वरन् अब एक छोटे से फूल पर भी कविता लिखी जाने लगी और एक छोटी सी ओस की बूँद को भी कविता का विषय बनाया जाने लगा। इस प्रकार छायावादी कवि ने उपेक्षित प्रकृति को सम्मान देते हुए उसे स्वतन्त्र रूप से काव्य का विषय बनाया और सुमित्रानन्द पन्त, जो प्रकृति के ही सुकुमार कवि माने जाते हैं, यहाँ तक कह दिया—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया

बाले! तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन।[110]

ऐसे परिवेश में महादेवी वर्मा का समकालीन प्रवृत्तियों से अप्रभावित रहना कठिन था अत महादेवी ने भी उस विराट, अव्यक्त, असीम प्रिय को पाने का प्रयास प्रकृति के द्वारा किया। उनके काव्य में उस प्रिय के प्रति अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने का सबसे सफल माध्यम प्रकृति बन गई। प्रकृति महादेवी की प्रिय सहचरी रही है। छायावाद नामक निबन्ध मे महादेवी ने प्रकृति और मानव के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए लिखा कि—"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीनकाल से विम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप से चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनके रूपों मे प्रकट एक महाप्राण बन गई। अत अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बिन्दुओं का एक ही कारण एक ही मूल्य है।[111]

महादेवी ने जब काव्य रचना के बालप्रयास प्रारम्भ किए तभी से प्रकृति उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने लगी। उन्होंने समस्यापूर्तियों का समाधान भी प्रकृति के माध्यम से किया। 'प्रथम आयाम' के अन्तर्गत वे स्वय स्वीकार करती हैं कि—"मैंने प्रायः सब समस्याओं में प्रकृति का सहारा लिया है, अत वे कठिन नहीं रही। यदि मैं जीवन से कुछ लेना चाहती तो सफलता नहीं मिलती, क्योकि जीवन से मेरा परिचय थोड़ा-सा था। हमारे बहुत से विचार, दर्शन, सौन्दर्यबोध आदि प्रकृति के कारण ही जन्म पाते तथा समृद्ध होते हैं।"[112] 'प्रथम आयाम' के अतर्गत सकलित महादेवी की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक-दो उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं—

"यह घटा घिरती रहे।

पर भूमि पर बरसी नही।"[113]

अथवा

"मेघ बरसने वाला है,

मेरी खिड़की में आ जा तितली।"[114]

स्पष्ट है कि बालिका महादेवी की दृष्टि सबसे पहले प्रकृति के सबसे रमणीय रूप 'मेघ' पर ही टिकती है।

महादेवी के प्रकृति विषयक दृष्टिकोण को छायावाद के अतिरिक्त अद्वैतवाद, सर्ववाद एव रहस्यात्मक अनुभूतियो ने भी प्रभावित किया। अद्वैतवाद की प्रमुख विशेषता यह है कि जड सृष्टि में व्याप्त ससीम सत्ता एव सूक्ष्म रूप मे विद्यमान असीम ब्रह्म मूलत एक है। महादेवी भी स्वीकार करती हैं कि—"प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलायें,अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निबिड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युतरेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चचलता-निश्चलता और मोह ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं।"[115] सर्ववाद प्रकृति मे भी परमात्मा की सत्ता स्वीकार करता है अत वह प्रकृति को मिथ्या नही मानता। महादेवी भी लिखती है कि—"जहाँ तक भारतीय प्रकृतिवाद का सम्बन्ध है, वह दर्शन के सर्ववाद का काव्य मे भागवत अनुवाद है।"[116] रहस्यानुभूति के अन्तर्गत महादेवी ने उस असीम, अव्यक्त प्रिय के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का कई रूपो में वर्णन किया है। जैसा कि गणपति चन्द्र गुप्त भी स्वीकार करते हैं कि—"वे अपने प्रियतम से आँखमिचौनी खेलने या उनकी मुस्कराहट और अपने आँसुओ का आदान प्रदान करने के लिए प्राय; प्रकृति को माध्यम के रूप मे अपनाती है।"[117] स्पष्ट है कि महादेवी के प्रकृति सबधी दृष्टिकोण को विकसित करने मे समसामयिक परिवेश एव सस्कृत साहित्य और वेद-उपनिषद के अध्ययन ने भी पर्याप्त योग दिया।

काव्य में प्रकृति का चित्रण अनेक प्रकार से हुआ है जिसमे एक मुख्य रूप उसका आलम्बन रूप है। आलम्बन के अन्तर्गत प्रकृति का स्वतन्त्र एव निरपेक्ष चित्रण किया जाता है और इसमें आश्रय के रूप मे कवि रहता हैं। महादेवी की काव्य रचनाओं मे प्रकृति का आलम्बन रूप में प्रयोग कम मिलता है क्योंकि उनकी अधिकाश कविताओं मे रहस्यवाद की प्रधानता है और रहस्यवाद के अन्तर्गत प्रकृति कुछ दूर तो आलम्बन रूप में प्रयुक्त हो सकती है लेकिन जब वह किसी अन्य प्रेमी, चाहे वह प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष

का आधार बन जाती है तब प्रकृति उद्दीपन के अन्तर्गत आ जाती है। आलम्बन भाव को चार भागें मे बाटा जाता है—1 यथा तथ्य वर्णन 2 सश्लिष्ट वर्णन 3 चेतन रूप मे 4 भावाक्षिप्त। यथातथ्य वर्णन मे प्रकृति का निर्जीव यथातथ्य वर्णन होता है। महादेवी के काव्य मे प्रकृति का इस रूप मे वर्णन नहीं मिलता। सश्लिष्ट वर्णन के अन्तर्गत कवि द्वारा अपनी चयन वृत्ति के अनुसार प्रकृति का सश्लिष्ट चित्र अथवा बिम्ब ग्रहण करने का प्रयत्न किया जाता है। यद्यपि महादेवी के काव्य में इस भावना का भी प्रकृति के अन्तर्गत स्वतन्त्र रूप से कोई चित्र नहीं मिलता लेकिन फिर भी इसका पूरी तरह से अभाव भी नहीं है। जैसे निम्नगीत में महादेवी ने सूर्य की प्रथम किरण के ससार मे आगमन का चित्र सश्लिष्ट रूप मे प्रस्तुत किया है—

चुभते ही तेरा अरुण बान।

बहते कन-कन से फूट-फूट,

मधु के निर्झर से सजल गान।'[118]

अन्तर सिर्फ इतना है कि यहाँ प्रभात के उदय का चित्र स्थिर रूप मे नही वरन् गत्यात्मक रूप मे प्रस्तुत किया गया है। डा सत्यपाल चुघ महादेवी के काव्य में सश्लिष्ट वर्णन के चित्र न मिलने का कारण गीतिकाव्य को मानते हैं क्योंकि गीति काव्य में आत्मा के अन्तर्निहित भावों की अभिव्यक्ति होती है। इसीलिए वहाँ प्रकृति का जहाँ कहीं उपयोग होता भी है तो वह कवि की भावनाओं की अभिव्यक्ति ही करती है—जैसे निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य है, जहाँ कवयित्री साध्यकालीन नभ में अपने ही भावों का विस्तार पाती है—

फैलते हैं साध्य नभ में भाव ही मेरे रगीले

तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले[119]

प्रकृति का मानवीकरण के रूप में प्रयोग सभी प्रमुख छायावादी कवियो की विशेषता रही है। कुछ आलोचक मानवीकरण की प्रवृत्ति को अग्रेजी साहित्य की देन मानते हैं लेकिन महादेवी अपने 'छायावाद' नामक निबन्ध में मानवीकरण की प्रवृत्ति को वेद और उपनिषदो से जोड़ती हैं और लिखती हैं—"हम वीर पुत्रों और पशुओं की याचना से भरी वेद ऋचाओ में जो इतिवृत्त पाते हैं, वही उषा, मरुत आदि को चेतन व्यक्तित्व देकर एक सरल और सहज सौन्दर्यानुभूति में बदल गया है।"[120] मानवीकरण में प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोपण कर दिया जाता है और गहरी रागात्मकता के कारण प्रकृति को मानव के समान समस्त कार्य व्यापारों को सम्पन्न करते हुए दिखाया जाता है। महादेवी की निम्न कविता मानवीकरण का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है जिसमें वे रात्रिरूपी नायिका को प्रकृति के समस्त उपकरणो द्वारा स्वय को सजाकर धीरे-धीरे नीचे आने का आह्वान करती हैं—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से

आ बसन्त रजनी,

तारकमय नव वेणी बन्धन,

शीशफूल कर शशि का नूतन,

रश्मि वलय सित घन अवगुण्ठन

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे

चितवन से अपनी।

पुलकती आ बसन्त रचनी।[121]

महादेवी को प्रकृति निरन्तर चेतनवत् ही व्यवहार करती नजर आती है। कभी सन्ध्या उन्हे मनाने आती है, कभी उन्हे आकाश मुस्कराता हुआ दिखाई देता है और कभी बासन्ती निशा उन्हे शृगार किये हुए दिखती हे। इस प्रकार के अनेको उदाहरण महादेवी के काव्य मे मिलते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

फिर आई मनाने साँझ मैं बेसुध मानी नही।[122]

अथवा

मुस्काता सकेत भरा नभ, अलि क्या प्रिय आने वाले हैं।[123]

महादेवी के समान निराला के काव्य में भी हमे मानवीकरण का बहुत सुन्दर उदाहरण मिलता है जो इस प्रकार है—

दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह सन्ध्या सुन्दरी परी-सी

धीरे-धीरे-धीरे[124]

मानवीकरण के इस रूप के अतिरिक्त महादेवी के काव्य में विरल और स्फुट मानवीकरण भी मिलता है। स्फुट मानवीकरण वहाँ होता है जहाँ जड़ जगत में मानव व्यापारों एव चेष्टाओं, विशेषकर रतिपरक चेष्टाओं का आरोपण किया जाता है। जैसे निम्नपक्तियों द्रष्टव्य हैं—

'तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घुँघट सुकुमार'[125]

उपर्युक्त पक्ति मे लज्जाशील नायिका की चेष्टा का वर्णन है। मानवीकरण के द्वारा महादेवी ने प्रकृति के विराट रूप को सीमित करने का भी प्रयास किया है। निम्न कविता मे प्रकृति को अप्सरा रूप में चित्रित किया गया है। इसमें उसे प्रकाश-अन्धकार, श्वेत और श्याम वस्त्र समुद्र की गर्जना, मजीर की झन्कार के रूप मे चित्रित किया गया है। निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

लयगीत मदिर, गति ताल अमर

अप्सरि! तेरा नर्तन सुन्दर

आलोक तिमिर सित-असित चीर

सागर गर्जन रुनझुन मजीर'[126]

महादेवी के काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप में भी प्रयोग मिलता है। उद्दीपन रूप के अन्तर्गत कवि का प्रकृति के प्रति स्वतन्त्र अनुराग नहीं झलकता बल्कि प्रकृति मानवसापेक्ष रूप मे सामने आती है। कवयित्री जब अपने आन्तरिक भावों का आरोपण प्रकृति परकरती है तब उससे तादात्म्य स्थापित कर लेती है और प्रकृति भी कवि के साथ बातचीत करती है और उसके मन मे नाना सवेदनाएँ, आशाएँ जगा देती है। कवयित्री स्वय की सत्ता को प्रकृति मे विलीन कर देती है। जैसा कि निम्न पक्तियाँ दर्शाती हैं—

मेघपथ में चिह्न विद्युत के गये जो छोड़ प्रियपद

जो न उसकी चाप का मैं जानती सदेश उन्मद

किसलिए पावस नयन मे

प्राण मे चातक बसाती।[127]

महादेवी प्रकृति मे एक ओर तो उस व्यापक विराट सत्ता को देखती है तो दूसरी ओर वह प्रकृति में अपनी छाया भी देखती है। अब प्रकृति कवि के हृदयगत भावों से भिन्न नहीं प्रतीत होती वरन् वह उसके जीवन का एक अग बन जाती है। जैसे निम्न पक्तियों में कवियत्री ने अपने जीवन का प्रकृति से ही तादात्म्य कर दिया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

प्रिय साध्यगगन! मेरा जीवन![128]

अथवा,

मैं नीर भरी दुख की बदली।[129]

अथवा,

मैं बनी मधुमास आली।[130] आदि

इन कविताओं में महादेवी ने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया है। कही-कही महादेवी ने प्रकृति से तादात्म्य स्थापन के लिए विरोधी तत्वों की भी योजना की है, जैसे निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

जग करुण-करुण मैं मधुर मधुर

दोनो मिलकर देते रजकण।[131]

प्रकृति पर रहस्यानुभूतियो का आरोपण तो छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने किया है। विशाल भारत मे रामनन्दन प्रसाद सिंह लिखते हैं कि—"यह सामान्य सी बात है कि जब कवि प्रकृति से अभिनत्व का अनुभव करते हैं तो वे प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करने में समर्थ होते हैं।"[132] जिस व्यक्ति ने प्रकृति के भीषण, मधुर शान्त और क्षुब्ध सभी रूपों का रोमाच और पुलक के साथ अनुभव किया हैं उसे प्रकृति के भीतर निहित चेतना का आभास भी निरन्तर होता रहता है। प्रकृति के चारों ओर विद्यमान असीम सौन्दर्य उसमें निहित असीम सृजन और सौन्दर्य की शक्ति देखकर विस्मय और कुतूहल का भाव जाग्रत होता है और महादेवी सम्पूर्ण प्रकृति में उसी असीम, अव्यक्त प्रिय की झलक देखती हैं और पूछ बैठती हैं—

अवनि अम्बर की रुपहली सीप मे

तरल मोती सा जलधि जब काँपता

तैरते घन मृदुल हिम के पुज से

ज्योत्सना के रजत पारावार में,

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे

नीद के उच्छवास सा, वह कौन है?[133]

महादेवी के काव्य में अन्य छायावादी कवियों के समान प्रतीकों के रूप में प्रकृति और उसके उपकरणों का प्रयोग किया गया है। प्रतीक पद्धति द्वारा किया गया प्रकृति वर्णन विशुद्ध प्रकृति वर्णन की सीमा में नहीं आता क्योकि कवि प्रकृति के माध्यम से किन्हीं अन्य सत्यों की व्यजना करता है। महादेवी ने प्रतीकों के द्वारा परोक्ष सत्ता का आभास कराया है। निम्न पक्तियों उदारहण के रूप में प्रस्तुत हैं—

"सजनि कौन तम में परिचित सा,

सुधि सा छाया सा आता।[134]

अथवा

"करुणामय को भाता है

तम के परदो में आना।"[135]

राष्ट्रीय आन्दोलन में रत् लोगो की भावनाओं की अभिव्यक्ति भी महादेवी ने प्रकृति से प्रतीक लेकर किया है। जैसे निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।

प्रलय घन में आज राका घोल दो।[136]

महादेवी ने प्रकृति का प्रयोग आलकारिक रूप मे भी किया है। इसके लिए उन्होंने उपमान को चुना है। महादेवी ने उपमान को अलग-अलग वस्तुओं के रूप में नही लिया है वरन् वे सजीव दृश्य को प्रस्तुत करते चलते हैं। गणपति चन्द्र गुप्त लिखते हैं—"उन्होंने उपमान रूप में प्रकृति का उपयोग सर्वत्र भाव बोध की दृष्टि से ही किया है—उनके काव्य में उपमानों का अवाछित आरोपण कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता।"[137] आलकारिक वर्णन के लिए महादेवी ने दो उपमान चुने हैं—1 बसन्त 2 वर्षा ऋतु। बसन्त मुस्कान से सम्बन्धित है और आँसू वर्षा ऋतु से। इन ऋतुओ मे आने वाले पक्षियो को ही वे अपने प्रकृति वर्णन में स्थान देती है। फूलों मे भी वे कमल हर सिंगार और गुलाब का उल्लेख करती है। दोपहर को छोड़कर सभी समयों का उल्लेख भी इनकी कविता मे मिल जाता है। पद्य सिंह शर्मा 'कमलेश अपने लेख मे लिखते हैं—"इन दृश्यो के अकन या इनके उपकरणों को भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने में महादेवीजी ने वैभव विलास की ही दृष्टि रखी है।"[138]

महादेवी ने प्रकृति के माध्यम से उपदेश देने का भी कार्य किया। 'मुर्झाया फूल' शीर्षक गीत में पुष्प का सुन्दर और मनोरम वर्णन करने के उपरान्त वह कहने लगती है—

जब न तेरी ही दशा पर,

दुख हुआ ससार को

कौन रोएगा सुमन,

हमसे मनुज नि:सार को।[139]

ससार शीर्षक गीत भी ऐसे उपदेशो से भरा है। यद्यपि यह एक उपदेशक का उपदेश न होकर कवि का है अत कवि सुलभ सरसता इसमे छिपी हुई है।

महादेवी ने अपने प्राकृतिक वर्णन को प्रभावशाली बनाने के लिए सूक्तियों का भी प्रयोग किया हे जिससे काव्य मे भी चमत्कार का प्रदर्शन हो जाता है ओर भाव को स्पष्ट करने में भी ये सूक्तियाँ सहायक होती है। कुछ सूक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

जो वे सपना बन आवे

तुम चिर निद्रा बन जाना[140]

अथवा,

वह कौन सा पी है पपीहा तेरा

जिसे बाँध हृदय मे बसाता नही।[141]

अथवा,

एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ।[142]

महादेवी के काव्य में स्वतन्त्र मे प्रकृति चित्रण कही नहीं मिलता। प्रकृति हमेशा भावों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त की गई हैं। यद्यपि 'हिमालय' नामक कविता मे स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण प्रारम्भ में तो मिलता है लेकिन अन्त तक आते-आते कवयित्री उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने की इच्छुक प्रतीक होती है—

हे चिर महान!

मेरे जीवन का आज मूक

तेरी छाया से हो मिलाप

तन तेरी साधकता छू ले

मन ले करुणा की थाह नाप।[143]

'महादेवी के काव्य में स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण का अभाव इन्द्रनाथ मदान और नन्ददुलारे बाजपेई भी पाते हैं। नन्ददुलारे बाजपेई लिखते हैं कि—'दृश्य प्रकृति में हिमालय पर ही उनकी एक रचना 'यामा' में देखने को मिली किन्तु वहाँ भी अन्तर्मुखी भावना ही उभर पायी है।''[144] नन्ददुलारे बाजपेई महादेवी के

प्रकृति वर्णन मे प्राकृतिक सुखदुख का अथवा उसके सामजस्य का अभाव पाते हैं। वे लिखते हैं कि "प्रकृति के किसी भी दृश्य का मानव मनोभाव का आकलन उनकी रचनाओ मे नही के बराबर है।[145] नन्ददुलारे बाजपेई इस बात पर भी असन्तोष व्यक्त करते हैं कि महादेवी ने प्राकृतिक रूपो, दृश्यो और भावों को चेतना का प्रेरक न मानकर उन्हें चेतन व्यक्तित्व दे दिया है। उन्होने महादेवी की पहली कविता को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है—

निशा को धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलके खोल

कली से कहता था मधुमास
बता दो मधु मदिरा का मोल"[146]

और लिखते हैं कि, "उनकी पहली रचना यद्यपि व्यक्त सौन्दर्य की भी झलक लिये हुए है, किन्तु वहाँ वह गौण है और महादेवी जी की रचनाओं में उत्तरोत्तर गौण होता गया है। और आगे चलकर सारी प्रकृति और उसके समस्त उपकरण एक निखिल वेदना की अनेक रूप अभिव्यक्ति के लिए भाँति-भाँति की दौड लगाते हैं।"[147]

कमलाकान्त पाठक भी महादेवी के प्रकृतिवर्णन को रहस्यात्मक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति तक ही सीमित मानते हैं क्योंकि प्रकृत छायावादी अनुभूति मे प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई है और वे महादेवी के काव्य मे प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण का अभाव पाते हैं। श्याम नारायण वैजल भी इसी समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। 'सुधा' में वे लिखते हैं कि—"मानवता का प्रेम इनके प्राकृतिक दृश्यो मे मानवता का आरोप करने भर से ही, सन्तोष नहीं ग्रहण करता। यह मानवीय समस्याओं को भी प्राकृतिक वर्णनों के साथ सुलझाने लगती है। इस कारण शुद्ध वर्णन क्रीड़ा स्थल के रूप में झूलने लगता है।"[148] रश्मि की निम्न कविता में यद्यपि प्रकृति का शुद्ध चित्रण किया गया है किन्तु अन्त तक आते-आते वह कहने लगती है—

अध खुले हगों के कज कोष
पर छाया विस्मृति का भार।[149]

डा मो दि पराड़कर भी महादेवी के प्रकृति वर्णन से यही शिकायत व्यक्त करते हैं। वे लिखते हैं—"प्रकृति की इस मानव सापेक्षत ने उनके प्रकृति चित्रण में एकरसता का निर्माण किया है, इसे अस्वीकार

नहीं किया जा सकता।''[150] इन सबसे विपरीत डा देवेन्द्र कुमार महादेवी के प्रकृति वर्णन के स्वरूप की प्रशसा करते हैं क्योकि महादेवी ने प्रकृति को सचेतन तो मानती ही हैं साथ ही सुख-दुख का भागीदार भी मानती है। वे लिखते हैं कि—''उनके कवि और प्रकृति मे बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव में ही तादात्म्य है। दोनो सहयात्री है। यह अजीब सी बात है कि हिन्दी आलोचक महादेवी की साधना को एकाकिनी समझते हैं जबकि उनकी साधना कितने ही रागात्मक सबधों के ताने-बाने बुनती चलती है।[151]

विनयमोहन शर्मा अपने लेख मे महादेवी के प्रकृति वर्णन पर कटु टिप्पणी करते हैं। वे लिखते हैं—''महादेवी के काव्य मे प्रकृति से परिचय पाना शहराती ड्राइगरूम के फर्श पर वन प्रागण की हरी दूब को खोजने के समान अप्राकृत प्रयत्न है।[152] महादेवी को वे पूरी तरह से मानवमन की कवयित्री मानते हैं। महादेवी की कविता में प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत एक दोष व्रे यह मानते हैं कि महादेवी को फूलो के विषय मे अधिक जानकारी नही है। वे लिखते हैं कि—''उन्होंने फूलों के नाम सुन रखे, पढे भी है पर कौन फूल कब कहाँ खिलता है। इसकी चिन्ता उन्हें नहीं रही। हरसिंगार, शेफाली, दुपहिरया का फूल भिन्न-भिन्न नहीं एक ही फूल के नाम हैं इसे जानने का उन्हे अवकाश नहीं।[153] विनयमोहन शर्मा महादेवी के काव्य को कल्पना जन्य मानते हैं। उसमें अनुभूति का समावेश कम है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि महादेवी अपने काव्य में प्रकृति के सौन्दर्य को भव्यता प्रदान करती है' और वहीं प्रकृति भी उनकी कविता को अनुप्राणित करती हैं। महादेवी का प्रिय कभी प्रकृति मे अवतरित होता है और कभी प्रकृति ही उनके प्रिय में तन्मय हो जाती है। महादेवी के काव्यम में प्राय प्रकृति के सभी रूपो का प्रयोग मिलता है। छायावादी कवियो के समान प्रकृति महादेवी का प्रमुख काव्य विषय रही है और इसकी शोभा का वर्णन वे पूरी तन्मयता के साथ करती हैं। निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि महादेवी के काव्य में प्रकृति पूरी तरह से घुलमिल गई है।

अभिव्यक्ति पक्षः गेय तत्व–

इस ससार मे मनुष्य सुख और दुख की अनुभूतियो को साथ लेकर ही अवतरित होता है। शैशव में चेतना शक्ति के अविकसित होने के कारण वह इन अनुभूतियों को हसकर अथवा रोकर अभिव्यक्त करता है। किन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है, सुख और दुख की यही अनुभूतियाँ गम्भीर से गम्भीरतम होती जाती है तथा विश्व में विद्यमान जड़ चेतन सभी वस्तुओं से सम्बद्ध हो जाती हैं। उदार हृदय वाले मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह दूसरों की व्यथा से दुखी होकर उसमें वेदना का आभास सा पाने लगता है

और दूसरों के सुख से सुखी भी हो जाता है। इस प्रकार जब वह विश्व के दुख मे अपने विषाद को और उसके सुख में अपने आनन्द को मिला देता है, तब उसके हृदय से जो शब्द स्वरो के सामजस्य से फूट पड़ते हैं। वे ही गीत की सज्ञा धारण कर लेते हैं। कवि, लोकगायक, सगीतज्ञ तथा सामान्य जन-सभी इसी विशेषता को आधार बनाकर गीत का सृजन करते हैं।

गीत की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह कवि की किसी एक विशेष भावना को आधार बनाकर ही लिखा जाता है। एक से अधिक भावनाओ का गीत मे समावेश किया जाना उसे सदोष बना देता है। गेयता का तत्व भी गीत के लिए अनिवार्य है क्योकि सगीत मानव मन की कोमल, मधुर और उदात्त वृत्तियो का प्रकाशन करता है। गीत में सगीत के समावेश से उत्कृष्ट कोटि के गीतों का निर्माण हुआ है। छोटे-छोटे गेय पदो मे एक ही भावविशेष की तीव्रता एव सरस, सुस्पष्ट और सामजस्यपूर्ण शैली का सहज समन्वय ही गीत है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गीत मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं का सगीतात्मक शब्द चित्र है। लेकिन गीत भावना के क्षेत्र में जितना स्वच्छन्द है, शब्दो मे व्यक्त होकर वह उतना ही सीमित हो जाता है। इस प्रकार गीत एक ओर तो स्वतन्त्र वातावरण में उन्मुक्त भाव से जन्म लेता है और वहीं दूसरी ओर वह अपनी ही लघु सीमा मे आबद्ध रहता है। गीतों में प्रयुक्त होने वाले शब्दो को भी कोमल भावनाओं के अनुरूप सरल, सरस एव मधुर होना चाहिए। गीत मे मनुष्य के सुख-दुखों की प्रधानता होने के कारण वह कभी अपने अश्रु-कणों से सभी के नेत्रों को सजल कर देता है और कभी अपने हास्य से उज्ज्वलता और निर्मलता बिखेर देता हैं।

ससार में सभ्यता के विकास के साथ गीतों की परम्परा भी विकसित होती रही है। हमारा प्राचीन काव्य अधिकाशत गेय है। गीतो की परम्परा का प्रारम्भ भी वैदिक ऋचाओ से ही स्वीकार किया जाता रहा है। ऋग्वेद में वर्णित उषा की स्तुति मे हमें गीत की झलक मिलती है। सामवेद तो ऋचाओ का सगीतबद्ध गायन है ही। सस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य की लम्बी परम्परा रही है। सस्कृत साहित्य में गीतकाव्य के अन्तर्गत प्रसाद और माधुर्य गुण की प्रधानता रही है और साथ ही कवि ने उन्हीं भावानुभूतियों को स्वर दिया है जो सहृदय पाठक के हृदय में भी समान अनुभूतियों को जाग्रत कर सकती है। आदिकवि बाल्मीकि ने जब क्रौञ्च पक्षी के जोड़े को ससार की जटिलताओ से मुक्त होकर स्वच्छन्द रूप से विचरण करते देखा होगा तभी उनके हृदय में जीवन की सबसे मनोरम और सरस भावना का उदय हुआ होगा और उसी समय किसी बहेलिये के मर्मभेदी बाण से पक्षी की मृत्यु हो गई और पक्षी की वेदना कवि की वेदना बनकर गीत के रूप मे अनायास ही फूट पड़ी और वे कह उठे—"मा निषाद प्रतिष्ठां' त्वमगमः शाश्वती सम·।" सस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ गीतों का सकलन जयदेव का 'गीत गोविन्द' है और उन्हीं के गीतों को आधार बनाकर

मैथिली कवि विद्यापति गीति काव्य के क्षेत्र मे आए और उनके द्वारा रचे हुए गीत आज भी अपनी रसात्मकता के कारण गुन-गुनाये जा रहे हैं। विद्यापति ने राधाकृष्ण को आलम्बन बनाकर माधुर्य भाव के द्वारा अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। विद्यापति के पश्चात कबीर का हिन्दी साहित्य क्षेत्र मे पदार्पण होता है जिनका काव्य यद्यपि हठयोग के ताने-बाने में उलझा हुआ और ज्ञान से गुँथा हुआ था लेकिन वहाँ भी कबीर ने वैयक्तिक भावों की अभिव्यक्ति गीतों अथवा पदों के माध्यम से की है। भक्तिकाल के अन्तर्गत सूरदास भी पदों की रचना में अग्रणी रहे हैं, जिन्होने मुख्यत गोपियो की विरह भावना को आधार बनाकर अनेक सुन्दर और मधुर भावनाओ को वाणी प्रदान की है। भक्तिकाल के एक प्रमुख कवि तुलसीदास हैं, जो एक ओर तो 'रामचरित मानस' जैसे पूर्णतया सामाजिक महाकाव्य की रचना करते हैं और इसकी रचना द्वारा राम को समाज मे प्रतिष्ठित करते हैं और फिर दूसरी ओर बिल्कुल वैयक्तिक स्तर पर उतर कर नितान्त निजी सुख-दुखो की अभिव्यक्ति के लिए गीत को माध्यम बनाते हैं और 'विनयपत्रिका' जैसे ग्रन्थ की रचना मे प्रवृत्त होते हैं, जो उनके आत्म निवेदनात्मक गीतो का सग्रह है। तुलसीदास के व्यक्तित्व मे यह अन्तर्विरोध देखकर आश्चर्य होता है कि एक ओर घोर सामाजिक कवि गीतो में आकर नितान्त निजी सुख-दुखो की बाते करने लगता है और यही प्रकृति आधुनिक काल में आकर हमें महादेवी के साहित्य में मिलती हैं, जहाँ कवियत्री काव्य के क्षेत्र में नितान्त वैयक्ति अनुभूतियों को स्वर देती हैं और गद्य क्षेत्र में आकर पूर्णतया सामाजिक होकर समाज के दीन-हीन, शोषित प्राणियो के सुख-दुख को अपना विषय बनाती हैं। गीतिकाव्य के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम मीराबाई है, जिनके गीत हृदय के सहज भावोद्‌गार कहे गए हैं। मीरा के गीतों मे प्रेम के आधिक्य के कारण भावना ही वाणी के रूप में मुखर हो गयी हैं। मीरा के गीतो में मानो स्वरलहरी ही साकार हो उठी है। उनके गीतों में हृदय का क्रन्दन समाहित है। कहीं-कहीं तो वे ऐसी दीवानी हो गई हैं कि गीतों मे न कहने वाली बातों को बिना हिचक कह गई हैं। रीतिकाल में आकर गीतों की धारा अवरुद्ध हो जाती है। इसका कारण रीतियो और लक्षण ग्रन्थों की प्रधानता रही है। इस काल में हिन्दी कविता रूढ़ और परम्परागत हो जाती है। रीतिकालीन युग बाह्य वर्णन तक ही सीमित रहता है, हृदय के मार्मिक उद्‌गारो को उद्‌घाटित करने के लिए उसमें अवकाश ही कहाँ है। अत इस युग में गीतों की रचना की ओर कवि का झुकाव ही नहीं हुआ।

आधुनिक काल के अन्तर्गत भारतेन्दु युग के आविर्भाव द्वारा एक बार फिर से सामान्यजन के जीवन को काव्य का विषय बनाया गया और भारतेन्दु युग मे भक्तिकालीन कवियों और शृगारपरक कवियो के आधार पर गीतो की रचना आरम्भ हुई। इसके साथ ही भारतेन्दु ने अपने नाटकों में सघर्ष, पराभव, वेदना, करुणा आदि भावों की अभिव्यक्ति करने बाले गीतों को स्थान दिया। द्विवेदीयुग में आकर गीतों में प्रणय

निवेदन, सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, जीवन मे विद्यमान अवसाद-विषाद तथा रहस्यात्मक भावो की अभिव्यजना प्रधान हो गई। इस युग मे मैथिलीशरण गुप्त की 'उर्मिला' तथा अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' की राधा के चरित्राकन द्वारा हमारे जीवन की प्राचीन स्मृतियों को पुन व्यक्त किया गया है। इसमें एक स्वर, एक लय, और जीवन का सामजस्य है। छायावाद मे आकर गीतो मे आत्माभिव्यजना का प्राधान्य हो गया। यद्यपि जीवन के अन्य विषयों की ओर भी कवि का ध्यान गया, किन्तु अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का उद्घाटन वहाँ प्रमुख विषय था। छायावाद के प्रतिष्ठापक कवि प्रसाद जहाँ एक ओर अपने गीतों में वैयक्तिक अनुभूतियों का उद्घाटन करते हैं वही दूसरी ओर दर्शन के आनदवाद की प्रतिष्ठा भी करते चलते हैं। सुमित्रानदन पत के गीत सौन्दर्य की भावना से आवृत्त दिखाई पड़ते हैं और सूर्यकात त्रिपाठी निराला भी शास्त्रीय बधनो का पूर्णतया परित्याग करके वैयक्तिक सुख दुखों को वाणी देते हैं।

इसके पश्चात महादेवी जब हिन्दी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करती हैं तो गीत को ही माध्यम के रूप मे चुनती हैं और गद्य के क्षेत्र में उन्मुख होने तक गीत ही लिखती रही हैं। काव्य का कोई अन्य माध्यम उनको अपनी ओर आकृष्ट ही नहीं कर पाया। गीत रचना की ओर अपनी प्रवृत्ति को वे 'दीपशिखा' के अन्तर्गत स्वीकार भी करती हैं। वे लिखती है कि—"शैशव ही से मैं गीतो के सस्कार में पली हूँ। माँ की भावभरी गीताजलियाँ, घर में जन्म, विवाह आदि शुभ अवसरों पर गाई जाने वाली गीति कथाएँ, परिचारकों के ऋतुपर्व आदि से सम्बन्ध रखने वाले लोकगीत, कलाविदों का ध्वनि सगीत, प्राचीन ज्ञान और सौन्दर्य द्रष्टाओ के वेद, छन्द, माधुर्य भरे सस्कृत और प्राकृत पद और पिछले अनेक वर्षों से सुने सहस ग्राम गीत सभी के प्रति मेरा स्वाभाविक आकर्षण रहा है।[154] यद्यपि कुछ आलोचक महादेवी की गीति रचना की प्रवृत्ति को उनके स्त्री होने से जोड़ते हैं और गीत की प्रकृति को भी स्त्रैण ही मानते हैं। वे प्रमाण के रूप में विश्व की लेखिकाओं और कवयित्रियों का उदाहरण देते हुए जिन्होंने हृदय की सहज भावों की अभिव्यक्ति के लिए गीत को माध्यम के रूप में चुना हैं। वास्तविकता यह है कि युगीन परिस्थितियो के परिणामस्वरूप छायावाद मे लम्बे-लम्बे प्रबन्धकाव्य लिखना सम्भव ही नहीं था और छायावाद को वैसे भी द्विवेदी युग की स्थूलता और इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया स्वरूप जन्मा माना गया है, अत॰ इस युग में सभी कवियों ने हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए गीत को ही माध्यम के रूप में चुना। महादेवी वर्मा भी गीत को युग की आवश्यकता के अनुरूप मानते हुए लिखती है कि—"हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत प्रधान ही कहा जाएगा। हमारा व्यस्त और व्यक्ति प्रधान जीवन हमें काव्य के किसी और अग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए ससार है। हम अपनी प्रत्येक साँस

का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपने प्रत्येक कम्पन को अकित करने के लिए उत्सुक है और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं। सम्भव है, यह उस युग की प्रतिक्रिया हो, जिसमें कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कहकर ससार भर का इतिहास कहना था, हृदय की उपेक्षा कर शरीर को आदृत करना था।"[155] यद्यपि यह उद्धरण अत्यन्त लम्बा है लेकिन इससे गीत की युगीन आवश्यकता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। प्राचीनकाल से लेकर छायावाद तक गीतों का बहुमुखी विकास और उसकी समूह परम्परा का महादेवी अवलोकन करती हैं और गीतो की परम्परा को वेदो से जोड़ते हुए गीतिकाव्य के सम्बन्ध मे एक मौलिक और प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत करती हैं। महादेवी वर्मा गीत को परिभाषित करते हुए लिखती हैं—"सुख-दुख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का, गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत हैं।"[156] इस कथन का विश्लेषण करने पर गीत की वही विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं जिन्हे प्राचीन परम्परा भी मानती चली आ रही है।

इस कथन मे महादेवी सर्वप्रथम सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था पर बल देती है अर्थात गीत व्यक्ति के नितान्त निजी सुख-दुख को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। गीत को महादेवी आत्मा की अभिव्यक्ति मानती हैं। जिस प्रकार हर्ष की अधिकता में अथवा विषाद की अधिकता मे हास्य और रुदन स्वत ही व्यक्ति के हृदय मे फूट पड़ते हैं, उसी प्रकार गीत को भी वे मानव के हृदय में स्वत उत्पन्न मानती है। गीत कल्पना अथवा बौद्धिकता से प्रभावित नही होता वरन् वह हृदय की रागात्मक अनुभूतियो को वाणी देता है। गीत के लिए भावात्मकता के साथ-साथ महादेवी सयम भी आवश्यक मानती है और इस सयम की प्राप्ति सहज नही है क्योकि भावों का प्रवाह जब बह निकलता है तो वह कलागत सीमा से आगे निकल जाता है। महादेवी लिखती हैं कि—"वास्तव मे गीत के कवि को आर्त्तक्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को, दीर्घ विश्वास में छिपे हुए सयम से बाँधना होगा, तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।"[157] यद्यपि सुख-दुख की भावेशमयी अवस्था में 'मैं' का भाव ही प्रमुख रहता है किन्तु सामाजिक परस्थितियाँ भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं क्योंकि वहीं परिस्थितियाँ व्यक्ति के चारो ओर विद्यमान परिवेश का निर्माण करती हैं। हाँ, यह अवश्य है कि इनका गौण स्थान ही रहता है, गीत मे रागात्मकता का भाव ही प्रबल होता है।

महादेवी गीत की रचना के लिए अवस्था विशेष को भी महत्वपूर्ण मानती है क्योंकि गीत की रचना किसी क्षण विशेष में ही सम्भव होती है। उस विशेष क्षण में भावनाओ में तारतम्यता और अखण्डता रहती है तथा मानसिक स्थिति भी एक जैसी रहती है। हृदय में एक भाव ही प्रबल होता है जो उस क्षण विशेष के लिए पूर्ण सत्य होता है। अनुभूति की यही एकता गीत को प्रभावशाली बनाती है। महादेवी स्वय स्वीकार

करते हुए लिखती हैं—"याद नही आता जब मैंने किसी विषय-विशेष या वाद-विशेष पर सोचकर कुछ लिखा हो।[158]

महादेवी के उपर्युक्त कथन मे तीसरा तत्व 'गिने चुने शब्द' हैं। गिने-चुने शब्दों से तात्पर्य सक्षिप्तता से है अर्थात् गीत में शब्द बहुत कम होने चाहिए क्योकि शब्दगत विस्तार से भावो मे शिथिलता आ जाती है। वैसे भी अनुभूति की तीव्रता की स्थिति बहुत समय तक नही रहती। गीत मे एक ही भाव मुख्य होता हे और अन्य गौण रहते हैं अत उस भाव को व्यक्त करने के लिए ऐसे शब्दो का चुनाव होना चाहिए जो कवि की अनुभूति को पूर्णतया व्यक्त कर सके। गीत के अनुसार शब्द कोमल, मधुर और सरल होने चाहिए। शब्द ऐसे हों, जिससे अर्थ स्पष्ट हो जाये और भाव भी अपनी सम्पूर्ण कल्पना प्रवणता के साथ सहसा प्रकाशित हो कर सह्रदय को चमत्कृत कर दे। सुमित्रा नन्दन पन्त भी गीत मे शब्द योजना के महत्व को स्वीकार करते हुए लिखते हैं—"जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित है, ऋणानुबन्ध है, उसी प्रकार शब्द भी, इनका आपस का सम्बन्ध, सहानुभूति, अनुराग-विराग, जान लेना, इनकी पारस्परिक प्रीति-मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है, प्रत्येक शब्द एक कविता है, लक्ष और भील द्वीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दों की कविता को खा-खाकर बनाती है।[159]

महादेवी के कथन में 'स्वर साधना के उपयुक्त' इन शब्दों का तात्पर्य सगीत से है। गीत मे सगीत का समावेश प्राचीन परम्परा से ही चला आ रहा है। यहाँ सगीत का अर्थ शास्त्रीय सगीत से नही है, वरन् गीत का सगीतमय होना आवश्यक है। इसमें गीत सगीत की रागरागिनी मे नही बँधा होता है। वह स्वर के माधुर्य एव लय के लचीलेपन से सम्पन्न होना चाहिए। महादेवी आगे लिखती हैं—"साधारणत गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख- दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता मे गेय हो सके।"[160] उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि महादेवी गीत के लिए निम्न तत्वों को आवश्यक मानती है—1 आत्माभिव्यक्ति अवस्था विशेष, सक्षिप्तता और शब्द चयन और अन्तिम है—सगीतात्मकता। प्राय सभी विद्वानों ने उपर्युक्त तत्वों को ही गीत काव्य के अन्तर्गत स्वीकार किया है।

आत्माभिव्यक्ति महादेवी के गीतों की सर्वप्रमुख विशेषता है। आत्माभिव्यक्ति से तात्पर्य है—कवि के नितान्त निजी सुख-दुखों की अभिव्यक्ति। उसका ह्रदय सचित अनुभूतियों का आगार है और जब यह अनुभूतियाँ उसे उद्वेलित करती है तो वह अभिव्यक्ति के लिए विवश हो जाता है। महादेवी का सम्पूर्ण काव्य इसका उदाहरण है। इसमें उन्होंने अपने निजी दृष्टिकोण और निजी भावनाओं को ही अभिव्यक्त किया है। वे 'सान्ध्यगीत' में स्वीकार भी करती है—"मेरे गीत मेरे आत्मनिवेदन मात्र हैं"[161] महादेवी ने अज्ञात, अव्यक्त, असीम, ब्रह्म पर अपने व्यक्तिगत भावों का आरोपण किया हैं। इस प्रकार उनके गीत साधना के

विभिन्न सोपानो को व्यक्त करते हैं। इनके गीतो में हास-रुदन, सयोग-वियोग, आशा-निराशा तथा सकल्प-विकल्प की अनेक अवस्थायें मिलती हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—प्रिय उनसे मिल कर लौट गया है और यह स्वप्न नही है, वरन् सत्य है अत वे प्रमाण स्वरूप कहती हैं—

"भरे हुए अब तक फूलो में
मेरे आँसू उनके हास।[162]

इसी प्रकार निम्न पक्तियो में वे तब तक अपनी पीड़ा को जगाना नहीं चाहती, जब तक कि उनका प्रिय आ न जाए। वे कहती हैं—

"ठहरो बेसुध पीड़ा को
मेरी न कही छू लेना
जब तक वे आ न जगावें
बस सोती रहने देना।"[163]

अपने प्रिय की प्रतीक्षा में बेसुध वह कह उठती हैं—

"जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने सदेश, पथ मे बिछ जाते बन पराग।[164]

महादेवी ने व्यक्तिगत सुखदुखो के साथ ही सामाजिक सुख-दुखो की अभिव्यक्ति भी कुछ कविताओ में की है—

"मेरे हँसते अधर नहीं
जग की आँसू लड़िया देखो
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाई कलियाँ देखो।"[165]

इन थोड़े से उदाहरणों से ही स्पष्ट है कि महादेवी के गीत उनकी निजी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं, जिसमें कल्पना का समावेश हो गया है। अन्तर्मुखी अनुभूति का प्रकाशन उनके हर गीत में है। कई आलोचक महादेवी के गीतों में आत्मतत्व की प्रमुखता का कारण विषाद भाव को मानते हैं क्योंकि विषाद

भाव की अभिव्यक्ति में आत्मतत्व स्वत ही अभिव्यक्त हो जाता है। महादेवी भी छायावाद मे दुख की अभिव्यक्ति को स्वीकार करती हुई लिखती है—"छायावाद व्यथा का सवेरा है, अत उसके प्रभाती गीतों की सुनहली आभा पर आँसुओं की नमी हैं।"[166]

महादेवी ने अपने निबन्ध मे गीत की सृष्टि के लिए तीव्र भावावेश को आवश्यक माना है। उनके सभी गीतो मे भावतत्व सर्वत्र विद्यमान है लेकिन उन्होने अधिकाश गीतों मे अपने भावो का आलम्बन एक अलौकिक ब्रह्म को माना है जो कि एक विचार मात्र है और दूसरी ओर महादेवी ने काव्य को सत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम माना है। इस प्रकार विचार, सत्य एव दर्शन पर आधारित होते हुए भी उनके काव्य मे भावों की प्रधानता है। जैसे निम्न उदाहरण मे ब्रह्म के साथ अपने सबध की व्यजना पूरे गीत मे की गई है—

तुम हो विधु के बिम्ब और मै मुग्धा रश्मि अजान
जिसे खीच लाते अस्थिर कर कौतुहल के बाण।[167]

लक्ष्मी नारायण सुधाशु ने अपने लेख में स्वीकार किया है कि—"उन्होंने अपनी भावधारा को एक स्वाभाविक तथा निश्चित क्रम से प्रवाहित होने दिया है, उसमें ज्वारभाटा के कारण तरगो का आवर्त्तन-प्रत्यावर्त्तन तो होता रहा है, पर प्रवाह को अपनी सीमा मे रखने वाले दोनो तट प्राय सुरक्षित रहे हैं।"[168] कई आलोचकों का विचार है कि महादेवी के गीतों में भावगत एकता तो है लेकिन वह तीव्र भावावेश नहीं है जो हमें मीरा में मिलता है। मीरा के गीत ह्दय के सहज उद्‌गार हैं लेकिन महादेवी की अनुभूति सयमित रहती है। कमलाकान्त पाठक लिखते हैं कि—"निश्चय ही उनका गीतिकाव्य वैयक्तिक है, विरहानुभूति से अनुप्राणित है, अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय है, पर वह तीव्र या भावावेशपूर्ण भी है, यह नहीं कहा जा सकता वह आवेशमयी गीतकार हैं ही नहीं।"[169] इसका कारण अधिकाश आलोचक यह मानते हैं कि महादेवी पीड़ा का अनुभव नही करती वह सिर्फ पीड़ा का अनुमान करती है। लेकिन धनजय वर्मा मानते हैं—"मैं महादेवी के गीतिकाव्य की पीड़ा को अनुमान और काव्य को बुद्धि-प्रसूत नहीं मानता हूँ। उनके गीतों में अनुभूति का वैपरीत्य है, भावों का वैषम्य भी है, फिर भी एक अन्त सगीत है जो समेटता चलता है और समग्रता प्रदान करता है।"[170]

महादेवी के सम्पूर्ण गीतकाव्य में सगीत की सुमधुर धारा प्रवाहित हो रही है। स्वर एव लय द्वारा उन्होने अपने प्रत्येक गीत को भाव प्रवण बनाया है। संगीतात्मकता द्वारा उन्होंने अपने प्रत्येक गीत मे गेयता की मधुरसृष्टि की है। महादेवी ने अन्य छायावादी कवियों के समान छदों के राजपथ को छोड़कर न तो कभी

छन्द विहीन मार्ग पर कदम रखा और न ही कभी तुकान्त का परित्याग करके अतुकान्त का मार्ग अपनाया। महादेवी के गीतो में अन्तस्सगीत है जो हृदय की रागात्मक भावनाओ से ही ध्वनित होता है। महादेवी ने अन्य कवियों के समान शब्दो के बाह्य साँचे नहीं बनाए वरन् वर्ण, शब्द, वाक्य, छन्द स्वत ही उनकी भावनाओं का अनुकरण करते हैं। यद्यपि उन्होंने सभी छन्दों का प्रयोग नहीं किया परन्तु सीमित छन्दो द्वारा वे उसकी लयात्मक विविधता का परिचय देती है। वे मात्रिक छन्दो का प्रयोग करती है और इसमे हृदय के भाव एव लय के अनुसार चरण और पदो का विन्यास और क्रम स्थापन करती है। उनकी कविता में कही पहले और दूसरे चरण का तुकान्त मिलता है, एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सजल रोमों में बिछे है पॉवड़े मधुस्नात से
आज जीवन के निमिष भी दतू हैं अज्ञात से।[171]

कभी दूसरे और चौथे चरण का तुकान्त मिलता है—

इन श्वासो का इतिहास
आँकते युग बीते,
रोमों में भर कर पुलक,
लौटते पल रीते।[172]

इस गीत मे सभी चरण समतुकान्त है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे।
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।[173]

महादेवी के कुछ गीतो मे गजल के का सा क्रम मिलता है जिसमें प्रथम चरण विषम तथा द्वितीय समतुकान्त रहता है जैसे निम्न पत्तियाँ—

तुम दुख बन इस पथ से आना
शूलों में नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना।"[174]

महादेवी ने उर्दू छन्दों को हिन्दी मे परिवर्तित करने का कार्य अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है। उनके गीतों मे पहली पक्ति टेक के रूप मे ली जाती है। यह इतनी मधुर होती है कि इसे बार-बार हर पक्ति के साथ दोहराने की इच्छा होती है। जैसे निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

1 मुखर पिक हौले बोल।[175]

2 पथ देख बिना दी रैन।[176]

3 प्राणपिक प्रिय नाम रे कह।[177]

4 अलि वरदान मेरे नयन।[178]

5 झरते नित लोचन मेरे हों।[179]

कुछ गीतो मे महादेवी ने परम्परा से मुक्त होकर नूतन सगीत सुरुचि का परिचय दिया है। कुछ गीत उदाहरण के रूप मे द्रष्टय है—

प्रिय गया है लौट रात।

अथवा,

लाये कौन सदेश नये धन।[181]

इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी का गीति काव्य सगीत की स्वर लहरी में बँधा हुआ और गेय हैं। यद्यपि महादेवी ने निराला के समान गीत का विभाजन राग-रागिनियों में नही किया है लेकिन फिर भी सभी गीत सगीतमय है। डा० विनय मोहन शर्मा भी इसी बात को स्वीकार करते हुए लिखते हैं-"प्रसाद और महादेवी के गीतों में सगीतशास्त्र का कोई बधन नहीं है।"[182] महादेवी के गीतों की प्रशसा में तत्कालीन पत्रिका 'सुधा' में श्याम नारायण वैजल लिखते हैं कि-"देवी जी के गीत जितने सगीतपूर्ण हैं, उतने आधुनिक काल के किसी अन्य कवि के नहीं। वे सगीत के घर हैं। मुझे तो उनके पढने में सगीत का आनन्द मिलता है और जिन्हें उनमे सगीत नहीं मिलता या जो उन्हें तरन्नुम के साथ नही पढ सकते। उनके विषय में वही कहना ठीक होगा कि वे नाच तो जानते नहीं, पर आँगन टेढ़ा बतलाते हैं।"[183]

हृदय के किसी एक भाव को अभिव्यक्ति प्रदान करने के कारण गीत के कलेवर का सीमित होना स्वाभाविक है। महादेवी के कुछ गीत तो अत्यत सक्षिप्त है जबकि कुछ अत्यधिक लम्बे हो गए हैं। 'नीरजा' में सकलित गीत 'धन बनूँ वर दो मुझे प्रिय' सात पक्तियों में सिमट गया है और 'नीहार' में सगृहीत गीत 'मुर्झाया

फूल' 52 पक्तियों तक फैल गया है। इस प्रकार के लम्बे गीतो मे भावुकता के स्थान पर अनुभूति इतिवृत्त, क्रिया व्यापार आदि तत्वो का समावेश हो गया है। महादेवी के समस्त गीतो को दृष्टिगत करने पर स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे उनमें काव्यकला का विकास होता गया वैसे-वैसे गीत मे पक्तियो की सख्या भी कम होती गई।

महादेवी ने अपने गीतों में कोमलकात पदावली का प्रयोग किया है जिसके प्रत्येक चरण मे कोमल एव सुकुमार शब्दों का प्रयोग किया गया है। महादेवी की भाषा उनके हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति करने में पूर्ण सक्षम है। अपनी भाषा को समृद्ध बनाने के लिए महादेवी ने अलकार, बिम्ब, प्रतीक आदि का प्रयोग किया है। महादेवी के गीतो की भाषा बड़ी ही परिमार्जित एव व्यजनापूर्ण है जिसमे सुगढ शब्द योजना द्वारा इन्होंने अपनी कलात्मक क्षमता का प्रदर्शन किया है। महादेवी की कविताओं में माधुर्य एव प्रसादगुण अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है। साथ ही उपनागरिका वृत्ति भी महादेवी के गीतो के अनुकूल है। महादेवी ने अपने गीतों में खड़ी बोली को कोमलता और मधुरता का आगार बना दिया है। उन्होंने अधिकतम तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, जो काव्योपयुक्त एव सरसता के पोषक हैं।

महादेवी ने अपने गीतों में लोकगीतों का भी आश्रय लिया है। वे स्वीकार भी करती है कि "मेरे गीत अध्यात्म के अभूर्त आकाश के नीचे लोकगीतो की धरती पर पले हैं।[184] उन्होने लोकगीतो की लय को अपनी प्रतिभा के अनुसार गीतो मे रूपातरित कर दिया है। कुछ गीत उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत हैं जिनमें लोकगीतों की लय का उपयोग किया गया है-

1 मुखर पिक हौले बोल,
हठीले हौले-हौले बोल।[185]

2 प्राणपिक प्रिय नाम रे कह।[186]

3 पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नहीं।[187]

4. कहाँ से आए बादल काले?[188]

लोकगीतों से प्रभावित रहने के कारण इनके गीतों में सादगी, सहजता और सदा रहने वाला ताजापन है।

स्पष्ट है कि महादेवी का गीति साहित्य छायावादी कवियों में अप्रतिम है। उनके गीतों में गीतिकाव्य की सभी विशेषताओं का समावेश हुआ है। महादेवी के गीतों में भी हृदय की सहज भावनाओं को ही वाणी मिली है यद्यपि यह सच है कि उनकी भावुकता पर बौद्धिक सयम का वितान अवश्य तना हुआ है। लेकिन

इस बौद्धिकता ने उनके गीतो को बोझिल नहीं होने दिया है। यही कारण है कि उनके गीतो को बार-बार पढने पर भी मन को तृप्ति नहीं मिलती। कलात्मक दृष्टि से भी उनके गीत उत्कृष्ट कोटि के बन पड़े हैं।

भाषा

मानवमन में जितने भी मनोभाव एव विचार आते है, उन सबको व्यक्त करने का एकमात्र साधन भाषा है, जिसका निर्माता मनुष्य स्वय है। भाषा मनुष्य द्वारा किया गया एक ऐसा आविष्कार है जो निरन्तर परिवर्तित होता रहा है। जैसे-जैसे मनुष्य मे ज्ञान का विस्तार होता गया, वैसे वैसे उसकी भाषा का स्वरूप भी परिष्कृत होता चला गया। शब्दों में भी पुराने अर्थ को छोड़कर नया अर्थ भरा गया, कभी उनका अर्थ विस्तार हुआ, कभी उनमे अर्थ सकोच आया। सुमित्रानदन पत लिखते हैं, "विश्व की सभ्यता के विकास तथा ह्रास के साथ वाणी का भी युगपत विकास तथा ह्रास होता है।"[189]

प्रत्येक युग के अनुरूप भाषा भी अपना स्वरूप बदलती रही। वेद और उपनिषदकाल में दर्शन का प्राधान्य था अत उस काल में विचारों के अनुरूप सस्कृत भाषा का प्राधान्य रहा। इसके पश्चात पालि, प्राकृत, अपभ्रश, अवहट्ठ, पुरानी हिन्दी से गुजरते हुए ब्रजभाषा और अवधी साहित्यिक क्षेत्र मे भक्ति काल के अतर्गत स्वय को प्रतिष्ठापित करती है। भक्ति की नाना मनोदशाओ एव भावो को ये दोनों बोलियाँ पूर्ण उत्कर्ष के साथ प्रस्तुत करती है। रीतिकाल मे आकर जिस प्रकार समाज अनेक रूढ़ियों मे बँध जाता है उसी प्रकार भाषा भी अनेक बधनों में बँध जाती है, शब्दों का अर्थ गौरव नष्ट होने लगता है, वे रूढ़ होकर परम्परागत हो जाते है। आधुनिक काल मे आकर परम्परा प्रचलित बोली के स्थान पर खड़ी बोली को मान्यता प्राप्त होती है। यद्यपि भारतेन्दु युग मे अवश्य काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा चलती रही। लेकिन द्विवेदी युग में खड़ी बोली को प्रतिष्ठापित करने में महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। ब्रजभाषा की कोमलकात पदावली के स्थान पर खरखराहट वाली खड़ी बोली को स्थापित करना आसान कार्य नही था। इस बात को स्वीकार करते हुए महादेवी भी लिखती हैं- "काव्य की भाषा बदलना सहज नही होता और वह भी ऐसे समय मे जब पूर्वगामी भाषा अपने माधुर्य मे अजेय हो क्योंकि एक तो नवीन अनगढ शब्दों में काव्य की उत्कृष्टता की रक्षा कठिन हो जाती है, दूसरे उत्कृष्टता के अभाव में प्राचीन का अभ्यस्त युग उसके प्रति विरक्त होने लगता है।"[190] छायावाद युग मे कवियों का कार्य दुहरा हो गया उन्हें अपने भावों की अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ-साथ खड़ी बोली में सरसता भी भरनी थी। प्रसाद, निराला, पत तथा महादेवी ने भाषा के क्षेत्र में क्रातिकारी परिवर्तन किए। जिन

शब्दों के द्वारा द्विवेदी युग में इतिवृत्तात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया, उन्ही शब्दों के माध्यम से छायावादी कवियो ने सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की। एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

'नीरव' और 'रजनी' जैसे शब्द जब द्विवेदी युग में कविता में आते हैं तो उनका रूप इस प्रकार था-

विकलता उनकी अवलोक के रजनि भी करती अनुताप थी
निपट नीरव हो मिस ओस से नयन से गिरता बहु वारि था

यही शब्द जब छायावादी कविता मे आते है तो बिल्कुल भिन्न प्रकार की व्यजना करते हैं-

"नीरव नभ के नयनो पर
हिलती हैं रजनी की अलकें
जाने किसका पथ देखती
बिछकर फूलों की पलके।"[191]

स्पष्ट है कि छायावाद में आकर भाषा के अन्तर्गत प्रयुक्त शब्दों की अर्थवत्ता बढ जाती है। लाक्षणिकता और व्यजनात्मकता के द्वारा कविता मे नूतन चमत्कार और सौन्दर्य आ जाता है। सभी प्रमुख कवियों ने भाषा की शक्ति को बढाने मे अपूर्व योगदान दिया। महादेवी अपने एक इण्टरव्यू मे स्वीकार भी करती हैं-"छायावाद न आता तो ब्रजभाषा से खड़ी बोली हार जाती। जो मार्दव, जो लालित्य, जो माधुर्य है वह, और फिर भक्तिकाल के अतर्गत की तीव्र भावना को कौन लाया। छायावाद ही लाया। तो कोश उठाकर आप देखिए, कितने शब्द बनाए हैं। कितने शब्द माँजे हैं हमने। हर शब्द को तपाया है, हमने अपनी अनुभूति में उसे ढाला है।"[192] महादेवी की काव्य भाषा का अध्ययन अपने आप में बड़ा रोचक है। उसमें जहाँ एक ओर सस्कृत भाषा के शब्दों की छाया है तो वही दूसरी ओर लोकभाषा के शब्दो का भी प्रयोग है। शब्दों के तद्भव एव अपभ्रश रूप का भी प्रयोग मिल जाता है। वस्तुत भाषा उनकी अनुभूति को अभिव्यक्त करने मे पूर्ण समर्थ है। उन्होंने जब जैसे चाहा, शब्दों को उसी रूप में ढालकर अपनी भाषा को समृद्ध बनाया है।

अध्ययन, मनन और परम्पराये जिस प्रकार अनुभूति और विचारों को प्रभावित करती हैं उसी प्रकार उन्हें अभिव्यक्त करने वाले अगों को भी प्रभावित करती हैं। महादेवी द्वारा सस्कृत भाषा के गहन अध्ययन का प्रभाव उनकी भाषा में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इसीलिए इनकी काव्यभाषा में तत्समता की प्रवृत्ति है। यद्यपि उन्होने तत्सम शब्दों के प्रयोग से अपनी भाषा को बोझिल नही होने दिया है। उन्होंने सस्कृत से शब्द

लेकर उन्हे हिन्दी की प्रकृति के अनुसार ढाला और अप्रचलित शब्दों का कम से कम प्रयोग किया। सस्कृत के शब्दों का प्रयोग होते हुए भी इनकी कविता कोमलकात पदावली से युक्त है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

कण-कण दीपक तृण तृण बाती

हँस चितवन का स्नेह पिलाती,[193]

महादेवी की काव्यभाषा मे सस्कृत शब्दों का तद्भव रूप में प्रयोग भी मिलता है। जैसे-स्वप्न-सपना, रिक्त-रीता, श्वास-साँस, सौभाग्य-सोहाग, प्रतिच्छाया-परछाई, अश्रु-आँसू, शय्या-सेज, मिश्री-मिसरी, रात्रि-रैन, अधकार-अँधियारी, सिदूर-सेदुर, कण-कन, रुदन-रोदन, सुगन्ध-सुवास आदि अनेक शब्द इनकी काव्यभाषा में मिलते हैं।

छायावाद जिस सास्कृतिक जागरण और स्वाधीनता आन्दोलन का परिणाम था वह मध्यवर्गीय नेतृत्व में लोकजीवन का आन्दोलन था। अत इन सभी कवियों के काव्य में लोक प्रचलित शब्द मिल जाते हैं। महादेवी में भी लोक शब्दो का प्रयोग खुलकर किया है। जैसे- हौले, धुँधले, बिछलन, पाते, ढरकीले, हठीले, सजीले, नैन, किलोल, लजीले, भीर, उजियारी, बावली, मारग, मुस्काते, साँस, उजियाले, पाहुन, चितवन, नेह, पीर आदि अनेक शब्दों द्वारा अपनी काव्यभाषा को जीवन्त किया है।

अपनी काव्यभाषा के निर्माण में महादेवी ने व्यापक एव उदार दृष्टि का परिचय दिया है और कहीं कही उर्दू के शब्दों को भी ग्रहण किया है। जैसे- साकी, मदिरा, मादक, खुमार, दीवानी, राह, दाग, बन्दीखाना, बेहोशी, प्याला, प्याली आदि। यद्यपि कुछ स्थानो पर सस्कृत शब्दों के बीच में उर्दू शब्दों का प्रयोग खटकता है। निम्न पक्ति उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है-

छोड़ कर जो वीणा के तार

शून्य में लय हो जाता राग

विश्व छा लेती छोटी आह

प्राण का बदीखाना त्याग।[194]

महादेवी ने भाषा की सजीवता को बढ़ाने के लिए मुहावरों का भी प्रयोग किया है। जैसे निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

सीमा ही लघुता का बन्धन

है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन[195]

अथवा,

तुम विद्युत बन आओ पाहुन

मेरी पलको मे पग धर धर।[196]

सूक्ष्म एव अमूर्त भावो की अभिव्यजना महादेवी ने अत्यत साकेतिक शब्दो द्वारा की है और इसके लिए लाक्षणिक शैली का आश्रय लिया है। लक्षणा का अर्थ है जहाँ मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढि या प्रयोजन द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ का ज्ञान कराया जाय, वहाँ लक्षणा शब्द शक्ति होती है। स्पष्ट है कि महादेवी ने लाक्षणिक शैली का प्रयोग बहुतायत से किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"झरते नित लोचन मेरे हो।"[197]

यहाँ पर नेत्रों से गिरने वाले आँसुओ के स्थान पर नेत्रों के झरने की व्यजना आँसुओं की अधिकता को व्यक्त कर रही है। लक्षणा का एक अन्य उदाहरण विरोधमूलक शब्दो द्वारा प्रस्तुत है-

"शलभ मैं शापमय वर हूँ

किसी का दीप निष्ठुर हूँ।"[198]

यहाँ पर वरदान को शापमय कहा गया है। जलना अवश्य शापमय है किन्तु अलौकिक प्रियतम के लिए जलना ही वरदान है। यहाँ पर महादेवी वेदना को वरदान मानकर ग्रहण कर रही हैं।

महादेवी ने सूक्ष्मतम भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक शैली का आश्रय लिया है। इन प्रतीको मे विविधता तथा अनेकार्थता है। छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रतीक तो महादेवी की भाषा मे मिलते ही हैं, इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रतीक उनके काव्य में हैं। महादेवी का सर्वाधिक प्रिय प्रतीक दीपक है जो साधक की आत्मा का प्रतीक है अन्य प्रतीकों में तेल-आतरिक स्नेह, अधकार-पीड़ा, झझावात-विघ्नबाधाएँ, वर्षा-करुणा, ग्रीष्म-क्रोध, बसन्त-आनद, पतझर-विषाद, मलय-पवन- मधु, मकरद-आँसू, नभ की दीपावली तारो, वीणा-हृदय, उषा-सुख, प्याला-जीवन, कालिन्दी-अश्रुधारा का प्रतीक है। महादेवी के काव्य में प्रतीको की लम्बी शृखला है। जैसे दीपक प्रतीक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"दीप मेरे जल अकम्पित घुल अचचल।"[199]

निम्न गीत में दर्पण माया का प्रतीक बना हुआ है-

टूट गया वह दर्पण निर्मम।[200]

चित्रात्मकता महादेवी की काव्यभाषा की प्रमुख विशेषता है। स्वय चित्रकार होने के कारण महादेवी ने शब्दों में माध्यम से चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है औरइसमें सफल भी रही है। महादेवी के शब्द चित्रो के सम्बध म सत्यपाल चुघ का कहना है-"महादेवी में रगों की समग्रता का सौन्दर्य रहता है। वे मानो इद्रधनुषी तूलिका को चाँदनी के सार मे डुबोकर चित्र अकित करती हैं। कमलदल पर किरण अकित चित्र ही खीच सकती हैं-उनके चित्रों में रगमिश्रित तरलता ही मिल सकती है। वस्तुत महादेवी मे चित्रमयता भी गीतों के अनुकूल है।"[201] भावविह्वलता के अनेक सुन्दर चित्र महादेवी ने अपनी भाषा द्वारा प्रस्तुत किए है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

पुलक-पुलक उर सिहर सिहर तन

आज नयन आते क्यों भर-भर।[202]

इन पक्तियों में क्रियाओं की आवृत्ति के साथ-साथ मन की उस वृत्ति का भी परिचय मिलता है जिसमें रह-रह कर प्रियमिलन की उत्कठा जाग रही है।

वर्णमैत्री भी सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होती है। वर्णमैत्री द्वारा महादेवी ने वेशभूषा और बाह्य आकृति के साथ वातावरण और आँगिक चेष्टाओ का चित्र भी प्रस्तुत किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है-

रुपसि तेरा घन केश पास

श्यामल-श्यामल कोमल कोमल

लहराता सुरभित केश पाश।[203]

महादेवी की काव्यभाषा में चित्रात्मकता की प्रवृत्ति की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए प्रकाशचन्द्र गुप्त लिखते हैं-"हम श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य को एक अनोखी चित्रशाला के रूप में भी देख सकते है। आपके छन्द अधिकतर शब्दचित्र हैं। आपकी अलकृत भाषा और प्रकृति साधना शब्दचित्रों में ही व्यक्त हुई है।"[204]

महादेवी की काव्यभाष मे ध्वन्यात्मकता की प्रवृत्ति भी मिलती है। शब्दचित्रो में जहाँ ध्वन्यात्मकता का उपयुक्त समावेश हो गया है, वहाँ कविता मे चमत्कार और भी बढ़ जाता है जैसे निम्न पक्तियाँ उदाहरण रूप में प्रस्तुत हैं-

"मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि

अलिगुजित पद्मों की किंकिणि

भर पदगति मे अलस तरगिणि"[205]

उपर्युक्त पक्तियो मे उपयुक्त शब्दो की ध्वनियाँ सचमुच नृत्य का चित्र प्रस्तुत करने मे समर्थ हैं। लघुवर्णो की बार-बार आवृत्ति मन्द गति से होने वाले नृत्य को स्पष्ट कर रही है।

काव्य मे अलकारो के प्रयोग द्वारा भावतत्व एव कलातत्व दोनो ही समृद्धि को प्राप्त होते हैं। महादेवी ने भी अलकारों के प्रयोग द्वारा अपनी भावानुभूतियो को नूतन सौन्दर्य प्रदान किया है। अलकारो का प्रयोग तो हमेशा से ही होता आ रहा है लेकिन छायावाद मे भावो की प्रधानता रही और अलकार भी भावो को उभारने मे सहायक सिद्ध हुए हैं। पत लिखते हैं -"अलकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है। वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति,नीति है।"[206] महादेवी ने शब्दालकारों और अर्थालकारो दोनों का प्रयोग किया है। शब्दालकारो मे अनुप्रास, वीप्सा और श्लेष का अधिक प्रयोग मिलता है। श्लेष अलकार का उदाहरण महादेवी की कविता मे द्रष्टव्य है-

'अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।[207]

यहाँ अधर शब्द दो अर्थो में प्रयुक्त हुआ है। पहले अधर का अर्थ ओंठ और दूसरे का अर्थ आकाश है।

यमक के उदाहरण भी महादेवी की कविताओं में मिलते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"जगती-जगती की मूक प्यास।'[208]

महादेवी की काव्यभाषा मे अर्थालकारों का भी प्रचुर उपयोग मिलता है। सूक्ष्मभावों की अभिव्यक्ति के लिए मूर्त तथा मूर्त के लिए अमूर्त की योजना छायावादी काव्यशैली की प्रमुख विशेषता है। महादेवी अप्रस्तुत योजना द्वारा रूप व्यापारों तथा अतर्वृत्तियों-दोनो की अभिव्यक्ति एक नहीं, अनेक अप्रस्तुत वस्तुओं द्वारा करती है। कभी इनकी अप्रस्तुत योजना उपमा-रूपक की समन्वय पद्धति पर चलती है कभी लक्षणा के बल पर ही वह अप्रस्तुतों के किसी व्यापार मात्र से प्रस्तुत हो जाती है। निम्न पंक्तिया द्रष्टव्य हैं-

"स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन मे आहत विश्व हँसा

नयनों में दीपक से चलते
पलकों में निर्झरिणी मचली।"[209]

महादेवी के काव्य में प्रभावसाम्य पर आधारित अनेक अप्रस्तुत प्रतीकवत मिलते हैं-

"तड़ित है उपहार तेरा

बादलो सा प्यार है मेरा।"[210]

महादेवी के काव्य में कही-कही विरोधात्मक किन्तु तुलनात्मक उपमानों का भी प्रयोग किया है-

कह दे माँ क्या अब देखूँ।

तेरे असीम आँगन की देखूँ जगमग दीवाली

या इन निर्जन कोने के बुझते दीपक को देखूँ।[211]

यहाँ एक ओर असीम आँगन अर्थात आकाश की जगमग दीवाली और दूसरी ओर एकान्त में बुझता हुआ दीपक है। यद्यपि दोनो में विरोधाभास है किन्तु प्रकाश का साम्य है।

महादेवी के काव्य में मूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त तथा अमूर्त प्रस्तुत के लिए मूर्त प्रस्तुत का विधान किया गया है। निम्न पक्तियों मे अमूर्त प्रस्तुत का मूर्त विधान स्पष्ट है —

"जिन प्राणो से लिपटी हो

पीडा सुरभित चदन सी"[212]

यहाँ पीड़ा अमूर्त तथा सुरभित चदन मूर्त है। मूर्त प्रस्तुत का अमूर्त विधान इस प्रकार किया है—

"शून्य नभ पर उमड़ जब दुख भार सी।

नैशतम मे सघन छा जाती घटा।[213]

यहाँ घटा छा जाना' मूर्त है, किन्तु मधुमार अमूर्त है

अमूर्त भाव के लिए अमूर्त प्रस्तुत का भी प्रयोग महादेवी की कविता में मिलता है-

"तम सा नीरव नभ सा विस्तृत

हास रुदन से दूर अपरिचित

वह सूनापन हो उनका।"[214]

यहाँ सूनापन जो स्वय अमूर्त है, की उपमा अमूर्त तम से की गई है। महादेवी के काव्य में रूपको का प्रचुर प्रयोग हुआ है। सागरूपक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"प्रिय साध्य गगन मेरा जीवन।"[215]

रूपक के द्वारा महादेवी विराट कल्पनाएँ भी करती हैं-

"विश्ववीणा में कब से मूक
पड़ा था मेरा जीवन तार"[216]

गुण की दृष्टि से महादेवी की काव्यभाषा में माधुर्य गुण मिलता है। इसमें सर्वत्र कोमलकांत पदावली का प्रयोग किया गया है और माधुर्य के साथ-साथ प्रसादगुण युक्त शब्दावली भी मिलती है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"श्यामल-श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केश पाश।"[217]

महादेवी की काव्यभाषा में दुरुक्ति का बहुत अधिक प्रयोग मिलता है कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

1. बूंद बूंद होकर भरती वह
   भरकर छलक छलक जाती।[218]

2. अब अणु अणु सौंपे देता है[219]
   युग-युग का संचित प्यार मुझे।

महादेवी की काव्यभाषा जहाँ छायावादी कवियों में समृद्ध मानी गई है वहीं आलोचक गण इसमें कई दोष भी देखते है। महादेवी ने अपने काव्य में कुछ शब्दों का प्रयोग बहुत बार किया है जैसे-चिर, तुहिन, अवगुण्ठन। महादेवी की प्रारंभिक चार रचनाओं में अवगुण्ठन शब्द 100 से भी अधिक बार आया है, जिसके कारण ब्रजकिशोर चुतर्वेदी इस युग को अवगुण्ठन युग नाम देने की सलाह देते हैं।

आलाचकों का विचार है कि भाषा में प्रयुक्त शब्द या तो कोमल हो या कर्कश क्योंकि कोमल शब्दों के मध्य यदि कर्कश शब्द आ जाता है तो भी भाषा के प्रवाह में बाधा पड़ती है और कर्कश के स्थान पर कोमल आ जाए तो भी। महादेवी की भाषा में कुछ स्थानों पर यह दोष पाया जाता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

प्लावित कर पृथ्वी के पत्त
समतल कर बहुर गह्मगर्त्त

दिखलाकर आवर्त्त-विवर्त

आता हूँ आलोड़ -विलोड़

निकल चला मै पत्थर फोड़[220]

यहाँ प्रयुक्त 'पत्थर फोड़' शब्द से भाषा फोड़कर निकल भागने का आभास मिलता है।

इसी प्रकार का दोष खड़ी बोली के बीचोंबीच एकाएक ब्रजभाषा के शब्दों के आने पर होता है। निम्न पक्तियो मे जहाँ हौले शब्द का प्रयोग है-

'हौले झरें शिथिल कबरी मे गूँथे हर शृगार कामिनी।'[221]

अथवा

'मुखर पिक हौले बोल।'[222]

विश्वम्भर मानव, ब्रजकिशोर चतुर्वेदी आदि विद्वानों का मत है कि हौले-हौले के स्थान पर यदि धीरे-धीरे कर दिया जाता तो भी ठीक था। ऐसा नहीं कि हौले शब्द का प्रयोग अशुद्ध है। पर धीरे का प्रयोग वातावरण के अधिक उपयुक्त था। इसी प्रकार 'फीके' शब्द का भी अनुपयुक्त स्थानों पर अशुद्ध प्रयोग हुआ है। जैसे-

पर तुम्हें पकड़ पाने के

सारे प्रयत्न हो फीके[223]

अथवा,

निराशा का सूना निर्मालय

चढाकर देखा फीका प्रात।[224]

इसी प्रकार महादेवी की काव्यभाषा मे 'औरें' और 'छोरें' का भी अशुद्ध प्रयोग मिलता है-

1 हों मेरे लक्ष्य-क्षितिज की

आलोक-तिमिर दो छोरे।[225]

2 यह दोनों दो ओरे थी

ससृति की चित्रपटी की। [226]

इसी प्रकार महादेवी की काव्यभाषा में कुछ उदाहरण अशुद्ध प्रयोग के भी मिलते हैं जैसे निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

'मैं आज चुपा आई चातक'[227]

मे 'चुपा आयी' अशुद्ध प्रयोग है। इस के स्थान पर 'चुपकर आयी' उचित था।

'झिप-झिप आँखे कहती हैं'[228]

झपक-झपक के स्थान पर झिप-झिप का प्रयोग उचित नही है।

'लुटती घुलती मिसरी सी'[229] मिसरी सी लुटती घुलती अशुद्ध है क्योकि भला मिश्री किस प्रकार लुट सकती है।

'मडराएगी अभिलाषें'[230] में अभिलाषे के स्थान पर अभिलाषाएँ होना चाहिए।

'तब बुझते तारो के नीरव नयनो का यह हाहाकार

आँसू से लिख-लिख जाता है कितन अस्थिर है ससार।[231]

हाहाकार ऊँची आवाज में हुआ करता है इसीलिए नीरवनयनो का हाहाकार कैसा।—

निम्न पक्तियो में अकेली पीडा का हाहाकार बताया गया है, जो अशुद्ध है-

इसी प्रकार महादेवी ने कर्णाधर, अधकार, और हलाहल शब्दों का भी अशुद्ध प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

1 चल चपला के दीप जलाकर

किसे ढूँढ़ता अधाकार।[233]

2 विसर्जन ही है कर्णाधार।[234]

3 हालासी हालाहल सी।[235]

महादेवी की कुछ पक्तियों मे भाव और भाषा अलग अलग व्यक्त हो रहे हैं। जैसे निम्न पक्तियों में-

इन हीरक से तारो का

कर चूर बनाया प्याला[236]

इन पक्तियो में कर चूर का अर्थ ऐसा लगता है जैसे चूर-चूर करके यानी तोड़कर के बनाया हो। परन्तु इसका अर्थ है-मस्ती में सरोबार। अतः यहाँ भाव और भाषा एक साथ ध्वनित नहीं हो रहे हैं।

महादेवी की काव्यभाषा मे पुनरुक्ति दोष भी बहुत अधिक मिलता है। कुछ शब्दो का बार-बार प्रयोग किया गया है। 1942 मे 'वीणा' पत्रिका में एक टिप्पणी छपती है-"यामा मे छायावाद के बेसिक शब्दो को इतनी बार दुहराया गया है कि एक शब्द को बार-बार सुनते-सुनते कान थक जाते है। कही कही कवयित्री के शब्दकोष के सीमित होने का सदेह होने लगता है।"[237] इन शब्दो मे चल, चिर, तुहिन, अवगुण्ठन आदि शब्द द्रष्टव्य हैं-

1 "चल चपला के दीप जलाकर।"[238]

2 चल चितवन के दूत सुना।"[239]

3 मलयानिल का चल दुकूल।

इसी प्रकार'चिर'का प्रयोग द्रष्टव्य है-

"यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना।"[240]

'तुहिन'का प्रयोग द्रष्टव्य है-

"तुहिन के पुलिनों पर छविमान"[241]

अथवा

"रजत करों की मृदुल तूलिका से
तुहिन बिन्दु सुकुमार।"[242]

महादेवी ने अपनी काव्यभाषा में प्याला-प्याली शब्दों का बहुत अधिक प्रयोग किया है और अलग-अलग सदर्भों में प्रयुक्त हुआ है। 'वीणा' में एक आलोचक लिखते हैं -"पता नहीं, इतनी अधिक बार प्याली और प्याले का प्रयोग क्यों किया गया है, शका उत्पन्न होती है कि 'जीवन प्याला' शुद्ध प्रयोग है अथवा 'जीवन प्याली'। प्रश्न यह भी है कि प्याला और प्याली एक ही वस्तु है या इन दोनों में भेद है? हमारे विचार में यह प्रश्न महादेवी जी स्वय सुलझा नहीं सकी। इसीलिए दोनों को समान रूप से प्रयोग में लाई है।"[243] उदाहरण के रूप में जीवन प्याला और जीवन प्याली का एक एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

इस मीठी सी पीड़ा में
डूबा जीवन का प्याला।[244]

अथवा, 'कितनी करुणाओ का मधु

कितनी सुषमा की लाली

पुतली मे छान भरी है

मैंने जीवन की प्याली।[245]

इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी की काव्यभाषा मे दिखाए गए उपर्युक्त दोषों के कारण आलोचकगण उनमे काव्य प्रतिमा का पूर्ण विकास नही पाते। नन्ददुलारे बाजपेई स्वीकार करते हैं कि महादेवी जी की रहस्यानुभूति जितनी समृद्ध है,-उनकी काव्यप्रतिमा उतनी ही उत्कृष्ट नही और भाषा शक्ति भी सीमित है।''[246] रमेश चन्द्र शाह इसका कारण महादेवी का काव्यक्षेत्र में देर से प्रवेश को मानते हैं क्योंकि तब तक ये सभी शब्द इतना व्यवहृत हो चुके थे कि महादेवी में आकर ये शब्द केवल पुनरावृत्ति जैसे लगने लगते हैं। वे लिखते हैं- "वही-वही भाव--- लगभग उन्ही-उन्ही शब्दों उपकरणों के साथ थोड़े हेरफेर के साथ दुहराए जाते हैं। महादेवी का वैभव रूढ अभिव्यक्तियो का वैभव है।''[247] विश्वम्भर मानव यह तो स्वीकार करते हैं कि प्रारम्भ में अवश्य महादेवी से भाषा के क्षेत्र मे कुछ गड़बड़ियाँ हुई हैं पर वे सख्या मे कम हैं। वस्तुत वे महादेवी की भाषा को अत्यन्त कोमल सरस और मधुर मानते हैं। वे लिखते हैं कि-"उसमें कहीं कर्कशता का चिह्न नहीं। खड़ी बोली के कवियो मे जो मसृणता उनकी भाषा मे है, वह समरूप से किसी की भाषा मे नही।''[248]

वस्तुत महादेवी ने काव्य को हृदय की अनुभूति माना है, जो नैसर्गिक है। इसीलिए उसकी काँट-छाँट मे वह विश्वास नही करती, क्योंकि काँट-छाँट से उसका स्वरूप बदल जाता है। इसलिए वह कविता में सशोधन कम ही करती है। वह स्वय कविता लिखते समय का अपनी मानसिक स्थिति के विषय में लिखती हैं कि-"जब तीव्र अनुभूति होती है तब लिखती हूँ और कभी-कभी ऐसे अवसर आते है कि जैसे मैं सो गई हूँ और अचानक जाग जाती हूँ तो लगता है, लिखना है मुझको। जब मैं लिखती हूँ तो लगता है, सब बना हुआ आता है। मुझे प्रयत्न नहीं करना पड़ता। काट छाँट मेरे पास कम है। गीतों में काँट छाँट बहुत चलती भी नहीं।''[249] महादेवी के इस कथन से स्पष्ट है कि उनका काव्य अकृत्रिम है। भावों की अभिव्यजना में उन्होंने शब्दों के अग-भग की भी चिन्ता नहीं की। यही कारण है कि उपर्युक्त गिनाए सभी दोष उनकी भाषा में मिल जाते हैं। लेकिन इन्द्रनाथ मदान भी इन दोषों को दोष के अन्तर्गत नहीं स्वीकार करते। वे लिखते हैं- "तुक और शब्दों के ऐसे प्रयोग काव्य की गति को मन्द नहीं करते, वरन् उसमे स्वाभाविकता ला देते है।''[250]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि महादेवी की काव्यभाषा के उपर्युक्त दोष मात्र भावो की अतिशयता के कारण है। वस्तुत उनकी काव्यभाषा अत्यन्त समृद्ध हैं। यद्यपि वे सीमित काव्य सामग्री का उपयोग अपने काव्य में करती हैं लेकिन नवीन शब्दो की सहायता से अपनी सूक्ष्मतम भावनाओ को प्रकट करने के लिए कोमलतम शब्दो का चयन करके, रगीन और अत्यन्त रोचक कल्पनाओ के द्वारा मानवमन को प्रभावित करने मे वे पर्याप्त सफल रही हैं। महादेवी की काव्यभाषा के सम्बध मे सितम्बर, 1942 की 'वीणा'में एक टिप्पणी छपती है कि -"यामा की भाषा सजीव भाषा है। उसने छायावाद की कठोरता, कर्कशता और विषमता को एक ऐसी स्निग्धता से ढक दिया है जिसकी प्रशसा बरबस करनी पड़ती है।"[251] महादेवी की काव्यभाषा में अनेक दोष दिखलाने के बाद भी आलोचक उसकी प्रशसा करने को बाध्य है।

बिम्बः-

कवि के लिए यह आवश्यक है कि वह तीन बातो मे निपुण हो- 1 अनुभूति-जिसके द्वारा वह काव्यरचना की ओर प्रवृत्त होता है 2 अभिव्यक्ति -जिसके द्वारा वह अपनी अनुभूति को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता है और तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण तत्व है- सम्प्रेषण। अनुभूति सभी को होती है और उसे दूसरों तक सम्प्रेषित भी सभी करते है लेकिन जनसाधारण और कवि की सम्प्रेषण क्षमता भिन्न होती है। सामान्य जन अपनी बात को साधारण ढग से कहता है और कवि या कलाकार अपनी बात को इस ढग से कहते हैं कि दूसरो को भी वह अनुभूति अपने जैसी लगने लगती है और यही कवि की सफलता है। प्राचीन साहित्य में अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति के योग्य बनाने के लिए अलकार, रीति, गुण, वक्रोक्ति, ध्वनि जैसे परम्परागत सिद्धातो का आश्रय लिया जाता था लेकिन आधुनिक साहित्य मे आकर कवि ने अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति क्षम बनाने के लिए प्राचीन सिद्धातो के साथ-साथ विम्ब योजना और प्रतीक विधान का प्रयोग किया है और अपनी अनुभूतियों को सफलता से व्यक्त करने में सक्षम हुए हैं।

छायावाद के प्राय· सभी कवियों ने अपनी कविताओं को प्रभावशाली रूप देने के लिए बिम्बों का सफल प्रयोग किया है। बिम्ब शब्द अग्रेजी के ımage का हिन्दी रूपान्तर है। वस्तुत बिम्ब शब्द एक प्रकार का शब्द चित्र है, जिसका सम्बध जीवन के व्यावहारिक क्षेत्रों से तथा कल्पना के शाश्वत जगत से होता है। सी डी लेविस ने बिम्ब को परिभाषित करते हुए लिखा है कि-"बिम्ब एक प्रकार का भावगर्भित शब्दचित्र है जो किसी न किसी रूप में इद्रियबोध से सम्बधित होता है।"[252] इस प्रकार बिम्ब का सीधा-सीधा सम्बध अभिव्यक्ति तथा मन में उभरने वाले चित्रों से है। कवि अपनी अनुभूतियों को बिम्बों के माध्यम से ही व्यक्त

करता है। बिम्ब कवि की सजीव अनुभूति एव तीव्रभावना से अनुप्राणित होते हैं और गत्यात्मकता, सजीवता, सुन्दरता एव सरसता के कारण कवि की अनुभूति को बिल्कुल सजीव रूप मे हमारे सामने उपस्थित कर देते हैं। जिस कवि की कल्पना शक्ति जितनी तीव्र एव उत्कट होती है, वह उतने ही उत्कृष्ट बिम्बो का निर्माण करने में सक्षम होता है। बिम्ब योजना में कल्पना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। कल्पना को काव्यात्मक रूप बिम्बों के माध्यम से ही मिल पाता है। बिम्बविधान के अन्तर्गत प्रत्येक बिम्ब का सबध उन पदार्थों से होता है जो या तो कवि के सामने विद्यमान है या अतीत समय से उसकी स्मृति में उपस्थित है। बिम्बो के द्वारा कवि अपने मानसिक जगत का सम्बध शेष सृष्टि के साथ स्थापित किया करता है। इस प्रकार कल्पना के साथ साथ स्मृति भी अत्यत महत्वपूर्ण है। क्योकि स्मृति के द्वारा ही हम अतीत की बातो को अपने मस्तिष्क मे सुरक्षित रखते है। बिम्बविधान के लिए तीसरा महत्वपूर्ण तत्व ऐन्द्रियता है क्योंकि इन्द्रियो के माध्यम से ही कवि की स्मृति में कोई चित्र बनता है। पदार्थ के साथ इन्द्रियो का सम्बध प्रत्यक्ष भी होता है और अप्रत्यक्ष भी। जब यह सम्बध प्रत्यक्ष होता है तब इन्द्रियाँ अधिक सक्रिय रहती हैं और जब यह सम्बध अप्रत्यक्ष होता है तो कल्पना अधिक सक्रिय हो जाती है यद्यपि इन्द्रियाँ भी गौण रूप मे सक्रिय हो जाती हैं। बिम्ब स्वय में मूर्त ही होता है लेकिन उसका विषय मूर्त और अमूर्त दोनो हो सकते हैं। बिम्ब पदार्थ का भी हो सकता है और गुण या धर्म का भी। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दों से सहृदय जन के मन पर कुछ रग और रेखाए स्पष्ट की जाती है। इन रग और रेखाओं से निर्मित संश्लिष्ट चित्र ही काव्यबिम्ब हैं। काव्य में बिम्ब की आवश्यकता को रामचन्द्र शुक्ल ने भी स्वीकार किया है। वे लिखते है कि-"कविता में अर्थग्रहण के अतिरिक्त बिम्ब ग्रहण भी आवश्यक है।"[253] रामचन्द्र शुक्ल बिम्बविधान की प्रक्रिया को रूपविधान का नाम देते हैं और इसके तीन रूप मानते हैं-1 प्रत्यक्षरूप विधान, जिसमें ऐन्द्रिय अनुभव मुख्य रहता है। 2 स्मृत रूप विधान, जिसमें स्मृति का आश्रय लेकर नूतन-वस्तु-व्यापार विधान प्रस्तुत किया जाता है और तीसरा है कल्पित रूप विधान, जिसमें विशुद्ध कल्पना प्रमुख होती है और रामचन्द्र शुक्ल इसी के अतर्गत काव्यपक्ष के सम्पूर्ण रूप विधान को स्वीकार करते हैं।

यदि हम विकास की दृष्टि से बिम्बों का वर्णन करें तो बिम्ब की तीन श्रेणिया दृष्टिगत होती हैं। प्रथम श्रेणी में बिम्ब वस्तुविशेष की छाया को स्पष्ट करते हैं द्वितीय में वे छया की छाया को स्पष्ट करते हैं और तृतीय में वे वस्तुबोध से इतने अलग हो जाते हैं कि प्रतीक के समीप पहुँचे हुए से लगते हैं।

बिम्ब विधान में चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्यकला- इन तीनों की विशेषताओं का समावेश रहता है। यही कारण है कि महादेवी के काव्यबिम्ब अत्यत प्रभावशाली बन पड़े हैं क्योंकि मूर्तिकला एवं चित्रकला की ओर महादेवी की प्रवृत्ति रही है। महादेवी ने 'दीपशिखा' में इस बात को स्वीकार भी किया

है। वे लिखती है कि- "व्यक्तिगत रूप से मुझे मूर्तिकला विशेष आकर्षित करती है क्योकि उसमें कलाकार के अन्तर्जगत का वैभव ही नहीं बाह्य आयाम भी अपेक्षित रहता है।"[254] अपनी कविताओ मे चित्रकला और मूर्तिकला के सम्मिश्रण के सम्बध में अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखती है कि— "कुछ अजन्ता के चित्रो मे विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से, चित्रों मे यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष, यह तो मैं नही बता सकती पर इस चित्र-मूर्ति सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार से नही दबा डाला है, ऐसा मेरा विश्वास है।"[255] महादेवी की कविता मे बिम्बो के निर्माण को चित्रकला ने निश्चय ही प्रभावित किया है, परन्तु साथ ही उनकी उत्कृष्ट कल्पना, सस्कार, उनके जीवन के अनुभवों, उनका गहन अध्ययन-मनन तथा उनकी मानसिक सरचना से भी बिम्ब प्रभावित रहे हैं।

महादेवी द्वारा किया गया सस्कृत साहित्य का अध्ययन बिम्ब निर्माण में भी महत्वपूर्ण रहा है। उन्होने सस्कृत मे प्रयुक्त जीर्ण बिम्बों का पुनरुद्धार कर के अपनी कविता में उनका प्रयोग किया है। उदाहरण के रूप में 'लीलाकमल' बिम्ब द्रष्टव्य है जिसका प्रयोग कालिदास ने अपने ग्रथ 'मेघदूत' में किया है-

"हस्ते लीलाकमलक्लके बालकुन्दानुबिद्ध,
नीता लोध्र प्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्री ।
चूड़ापाशे नवकुरबक चारु कर्णे शिरीष,
सीमन्ते च त्वदुपगमज यत्र नीप वधूनाम् ।।"[256]

महादेवी ने इस परम्परा से प्राप्त जीर्ण-शीर्ण बिम्ब को सर्वथा नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। उन्होने इस लीलाकमल को अपने आराध्य को अर्पित करते हुए लिखते हैं-

'जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात
जीवन विरह का जलजात।'[257]

महादेवी ने जिन बिम्बों का अपने काव्य में प्रयोग किया हैं, चित्रकला के कारण उन बिम्बो मे रगो का उचित सयोजन मिलता है। महादेवी की वर्णचेतना पर्याप्त विकसित थी अत. इनके काव्य-बिम्ब स्थान स्थान पर अपनी रग सज्जा के कारण रगीन तथा आकर्षक हो गए हैं। सध्या और प्रात काल का निम्नचित्रण उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है-

सन्ध्या का निम्न बिम्ब अत्यत आकर्षक बन पड़ा है-

"गुलालो से रवि का पथ लीप,

जला पश्चिम मे पहला दीप,

विहसती सध्या भरी सुहाग,

दृगों से झरता स्वर्ण पराग,"[258]

इसी प्रकार प्रात काल का भी एक चित्र द्रष्टव्य है-

कनक से दिन मोती सी रात,

सुनहली साँझ गुलाबी प्रात,

मिटाता रगता बारम्बार,

कौन जग का यह चित्राधार?[259]

रगों का उचित सयोजन बिम्बविधान में अत्यत महत्वपूर्ण है। इससे बिम्बो में ऐन्द्रियता और अभिव्यक्ति मे व्यजक वक्रता आती है। रगों के प्रयोग से महादेवी की आतरिक मनोवृत्ति का भी पता चल जाता है। महादेवी ने श्वेत वर्ण वाले बिम्बों का अधिक प्रयोग किया है जिससे काव्य मे सात्विक भावो की उपस्थिति का ज्ञान होता है। महादेवी के काव्य में ओस, चाँदनी, नीहार, तुषार आदि का अधिक प्रयोग श्वेत वर्ण प्रिय होने के कारण ही है। महादेवी के काव्य मे कलियों के खाली प्याले धोने वाली चाँदनी भी श्वेत है। निम्न पक्तिया उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है-

मधुर चाँदनी धो जाती हे

खाली कलियों के प्याले।[260]

इसी प्रकार महादेवी वर्मा ने शृगार की प्रसाधन सामग्री में भी श्वेत रग का ही अधिक प्रयोग किया है। उदाहरण के रूप में निम्न पक्तिया द्रष्टव्य है-

"पाटल के सुरक्षित रगो से रग दे हिम सा उज्ज्वल दुकूल,

गुँथ दे रशना मे अलि-गंजन से पूरित झरते बकुल-फूल,

आलोचकों का मत है कि धीरे-धीरे महादेवी के काव्य में रगों का प्रयोग क्षीण होता गया है। इस ओर लक्ष्य करते हुए डा0 नगेन्द्र लिखते हैं कि-"सान्ध्यगीत' में सध्या की पृष्ठभूमि होने के कारण उसके चित्रों में रगों का वैभव अधिक था; परन्तु दीपशिखा के गीतों में उसके चित्रों की ही तरह केवल दो ही रग

है- हल्का नीला और सफेद। जहाँ कही अधिक रगो का प्रयोग भी है, वहा ये सभी रग इस प्रकार मिला दिए गए हैं कि किसी की स्वतत्र सत्ता न रहे- इसीलिए तो इन चित्रो में वारद के मोतियो जैसी तरलता आ गई है।"[262]

महादेवी वर्मा के काव्य मे एक अन्य रूप मे बिम्बों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है और वह है— व्यापारविधायक बिम्बो का प्रयोग। निम्न पक्तियों में मोम-बत्ती के धीरे-धीरे घुलने और दीपक के धीरे-धीरे जलने के द्वारा विरह की व्याकुलता को स्पष्ट किया गया है और इसमे महादेवी को पूरी सफलता भी मिली है—

"मोम - सा तन घुल चुका,
अब दीप-सा मन चल चुका है।"[263]

महादेवी ने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार अधिकाश बिम्बो का ग्रहण प्रकृति और नारीजगत से किया है। वैसे तो प्रकृति से लिए गए बिम्बों में सामान्यत सध्या, प्रभात, बसत और पावस ऋतु ही प्रमुख हैं लेकिन कही-कही उन्होंने कल्पना के प्रयोग द्वारा विराट बिम्बो का भी सृजन किया है। जैसे- निम्न उदाहरण मे पृथ्वी और आकाश के बीच में स्थित सागर के लिए सीप के भीतर मोती का बिम्ब ग्रहण किया गया है-

अवनि अम्बर की रुपहली सीप मे
तरल मोती सा जलधि जब काँपता

तैरते घन मृदुल हिम के पुज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में"[264]

कुमारविमल इतने विराट बिम्ब को पाठकों के लिए उचित नहीं मानते क्योंकि पाठक की कल्पना शक्ति को वे सीमित मानते हैं। वे लिखते है कि-"ऐसे स्थलो में इनकी चित्रशृखला अबूझ पहेली बन जाती है और पाठकों को रसोदबोध के बदले मानस चाप ही दे पाती है।"[265]

महादेवी ने सूक्ष्म भावो की अभिव्यजना करने के लिए चाक्षुष बिम्बविधन का आश्रय लिया है और इस प्रकार वे सूक्ष्म भावो को प्रत्यक्षीकरण के स्तर तक ले आई है। सूक्ष्म-भावों की अभिव्यजना महादेवी ने वस्तु अथवा वस्तु व्यापार विशेष का आश्रय लेकर किया है। निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

"सुनहले सजीजे रँगीले छबीले,
हँसित कंटकित अश्रुमकरन्द गीले,

बिखरते रहे स्वप्न के फूल गिन।''[266]

यहाँ वस्तु का आश्रय लेकर गोचन प्रत्यक्षीकरण हुआ है। इसी प्रकार, सहानुभूति का भाव जो अत्यत सूक्ष्म भाव है, उसके निषेध का प्रत्यक्षीकरण भी व्यापार के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है-

अब तरी पतवार लाकर

तुम दिखा मत पार देना,

आज गर्जन में मुझे बस,

एक बार पुकार लेना।[267]

नदी को पार करने वाले किसी व्यक्ति को नौका और पतवार लाकर पार दिखा देना सहानुभूति का व्यापार है और ऐसे व्यापार का 'मत' कहकर निषेध करना उस सहानुभूति की वर्जना का प्रत्यक्ष चित्र प्रस्तुत कर देता है। इस प्रकार सूक्ष्म भावो के गोचर प्रत्यक्षीकरण की सफलता महादेवी के बिम्बविधान की उल्लेखनीय विशेषता है।

सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के साथ-साथ महादेवी ने मूर्त को भावात्मक रूप देकर उनका अमूर्त विधान भी प्रस्तुत किया है। मूर्त को अमूर्त रूप में प्रस्तुत करना कल्पना की उस दुर्बल प्रक्रिया द्वारा सम्भव हो पाता है, जिसे भावानयन कहा गया है। निम्न पक्तिया उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है-

सुधि तेरी अविराम रही जल

पद ध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती।[268]

इन पक्तियों मे किसी की याद में तिल तिलकर जलने वाले व्यक्ति के लिए सुधि के जलने का ही बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

महादेवी की कविताओं में श्रव्य बिम्ब का प्रयोग वहाँ मिलता है जहाँ उन्होंने, 'भक्तिकालीन सत जिसे 'अनहद नाद' कहते हैं, को सुनने और समझने की चेष्टा की है। इस ध्वनि का ग्रहण महादेवी ने श्रव्य बिम्ब का आश्रय लेकर की है। जैसे निम्न पक्तियों में उन्होंने अज्ञात, अव्यक्त प्रिय से प्राप्त श्रवण सुख को सगीत के बिम्ब के माध्यम से व्यक्त किया है, उदाहरण प्रस्तुत है-

कुमुद दल से वेदना के दाग को

पोछती जब आँसुओ से रश्मियाँ

चौंक उठती अनिल के निश्वास छू

तारिकाएँ चकित सी अनजान-सी

तब बुला जाता मुझे उस पार जो

दूर के सगीत-सा वह कौन है?[269]

महादेवी के काव्य मे छायात्मक बिम्बों का भी सबसे अधिक प्रयोग मिलता है। निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है-

मेरा पग पग सगीत भरा

श्वासो से स्वप्न पराग झरा

नभ के नवरग बुनते दुकूल

छाया मे मलय बयार पली।[270]

यद्यपि छायावाद की चित्रात्मक शैली के सभी तत्व इन पक्तियो मे विद्यमान है पर फिर भी ये पक्तियाँ कोई स्पष्ट चित्र पाठक के मन में अकित नहीं करती। ये पक्तियाँ पाठक के मन में केवल छायामात्र का चित्र अकित करके रह जाती हैं। यद्यपि जहाँ इस अस्पष्टता की पृष्ठभूमि अधिक सहज और आत्मीय होती है, वहाँ छायात्मक बिम्ब अधिक व्यजक हो जाते हैं। निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"कौन आया था न जाने

स्वप्न में मुझको जगाने

याद में इन अगुलियों के

हैं मुझे पर युग बिताने।"[271]

इन पक्तियों में बिम्ब है-स्वप्न में देखी हुई अँगुलियाँ। पर यह अगुलियाँ जिस व्यक्ति की हैं, स्वप्न मे देखा हुआ वह व्यक्ति रहस्य की ओट में है, अत अगुलियों का चित्र भी स्पष्ट नहीं है। लेकिन इस अस्पष्ट और अग्राह्य बिम्ब मे जो तीव्रता आई है, वह 'जगाने' क्रिया की ऐन्द्रिय अनुभूति के कारण है।

कुछ आलोचको का मत है कि महादेवी के बिम्बविधान मे सूक्ष्म निरीक्षण से उत्पन्न सश्लिश्ट चित्रण कम मिलता है, जिसके कारण इनके बिम्बों मे ऐन्द्रियता का अभाव है और उनके बिम्ब सुमित्रानदन पत और सूर्यकात त्रिपाठी निराला के समान सुलझे हुए और स्पष्ट नहीं हैं। इसलिए पाठक को इन बिम्बों से रस ग्रहण करने के लिए अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता है। यद्यपि महादेवी अपने बिम्ब विधान मे वस्तुओ और व्यापारो की सश्लिष्ट योजना करती हैं और जहाँ वस्तुओं और व्यापारो की सश्लिष्ट योजना रहती है, वहाँ अस्पष्टता नही रहती है किन्तु इतना सब होने पर भी महादेवी का बिम्ब विधान अस्पष्ट है। इसका कारण यह है कि महादेवी मानसिक वृत्तियो और वातावरण को भी वस्तु व्यापार द्वारा ध्वनित करने लगती है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

रजनी ओढे जाती थी झिलमिल तारों की जाली
उसके बिखरे वैभव पर जब रोती थी उजियाली।[272]

यह चित्र वस्तु व्यापार की सश्लिष्ट योजना और वातावरण निर्माण पर अधिक ध्यान देने के कारण अस्पष्ट है। दूसरा कारण यह है कि इसमें लाक्षणिकता के प्रति अधिक मोह दर्शाया गया है। तीसरा कारण यह है कि इसमे महादेवी ने छायावाद के काव्य की व्यक्त प्रकृति के सौन्दर्य प्रतीकों को न लेकर उन प्रतीको की अव्यक्त गतियो और छायाओ का सग्रह किया है और इसीलिए ऐसी कविताओ में वेदना की व्याकुलता और रहस्यात्मकता बढ गई है किन्तु ये स्थल अधिक कठिन हो गए हैं। उदाहरण के रूप मे निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

उच्छ्वासों की छाया मे, पीड़ा के आलिगन में,
निश्वासों के रोदन मे, इच्छाओं के चुम्बन में

*   *   *

जो बिखर पड़े निर्जन में, निर्भर सपनों के मोती,
मैं ढूँढ़ रही थी लेकर, धुँधली जीवन की ज्योति,[273]

महादेवी ने लौकिक बिम्बों के द्वारा भी अपनी भाव-अनुभूतियो को व्यक्त किया है। जहाँ पर उन्हें उस रहस्यमय प्रिय के आगमन का सकेत मिलता है, वहाँ पर वे शृगार, दर्पण दर्शन, वेणीबन्धन, समासोक्ति के माध्यम से आलिगन-चुम्बन आदि में इन बिम्बो का आश्रय लिया है। शृगार का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है-

शशि के दर्पण मे देख देख,

मैंने सुलझाये तिमिर-केश,

गूँथे चुन तारक-पारिजात,

अवगुण्ठन कर किरणे अशेष,[274]

वस्तुत बिम्बविधान में क्रिया और विशेषण का विशेष महत्व है। महादेवी मे विशेषण पर निर्भर बिम्ब अधिक मात्रा में पाये जाते है। जैसे हिमालय के सन्दर्भ मे वे लिखती हैं-

हे चिर महान![275]

यहाँ पर चिर और महान ये दोनों विशेषण ही पर्वत का बोध कराने मे समर्थ है। इसके साथ ही महादेवी मे क्रिया निर्भर बिम्ब भी मिलते हैं जैसे निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत हैं-

घेर ले छाया अमा बन,[276]

आज कज्जल अश्रुओ में रिमझिम ले यह घिरा घन।

इन पक्तियों मे रिमझिम शब्द का प्रयोग करके रिमझिमा कर बरसने वाले बादल का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

महादेवी के बिम्ब विधान के सम्बध मे आलोचको का मत है कि महादेवी के काव्यबिम्ब कविता मे प्रधान और गौण का सबध-निर्वाह नहीं कर पाते। बिम्ब विधान वही अच्छा माना जाता है जबकि किसी गीत में एक बिम्ब प्रधान हो और अन्य गौण बनकर गीत को आगे बढ़ाते हैं। किन्तु महादेवी के गीतों मे इस विशेषता का सम्यक् निर्वाह नहीं मिलता।

कुमार विमल महादेवी के बिम्ब विधान मे सयोजन सूत्रता का अभाव पाते हैं। उनका मानना है कि इनकी कविता मे बिम्ब एक दूसरे से गुँथे रहते हैं और इसमें विभिन्न प्रकार के बिम्बों का समावेश रहता है। वे महादेवी के बिम्बों की उपमा कन्था शैली से देते हैं जिनकी जमीन फटी-पुरानी साड़ियों जैसी होती है और उस पर चित्र पैबन्दों की तरह चिपके रहते हैं। कुमार विमल कसीदाकारी की भाषा का प्रयोग करते हुए लिखते हैं कि - महादेवी के बिम्बविधान में यत्र-तत्र सलमा सितारे जैसी नयनाभिराम झिलमिली तो मिलती है किन्तु अधिकतर इनकी बिम्बसज्जा में छाया के कामों का पृथुल प्रयोग मिलता है, जिसके कारण इनके बिम्ब विन्यास में दो या दो से अधिक बिम्बों के बीच की मध्यस्थ शृखला को गुप्त रखकर अग्रिम बिम्बों

को चित्रपटवॉं ढग से सलग्न कर दिया जाता है। अत इस प्रकार की बिम्ब-शय्या मे जोड़ का टाँका नही छिप सकता है, फलस्वरूप इनमे पाठको को टाँको की उच्छृखल दोड़ मिलती है।''[277]

प्रतीक-

कई बार ऐसा होता है कि जब मानव मन मे उठने वाली सूक्ष्म भावनाओ और सवेदनाओं की अभिव्यक्ति मे सामान्य भाषा शैली असमर्थ रह जाती है तब कवि द्वारा उन्ही भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीको का आश्रय ग्रहण किया। वैसे प्रतीक शब्द का अर्थ है-चित्र, लक्षण, आकृति तथा किसी के स्थान पर रखी हुई कोई अन्य वस्तु। प्रतीक शब्द प्रति तथा इक के योग से बना हुआ है जिसका अर्थ है-अपनी ओर झुका हुआ। प्रतीक के पर्याय के रूप मे व्यवहृत शब्दो में प्रतिच्छाया, प्रतिबिम्ब, प्रतिकृति, प्रतिरूप तथा प्रतिनिधि प्रमुख हैं। प्रतीक के लिए अग्रेजी भाषा में Symbol शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है कोई ऐसा चिह्न जिससे कोई वस्तु जानी जाय अथवा कोई परम्परागत शब्द सकेत जो कभी-कभा व्यक्ति द्वारा स्वय भी प्रयुक्त होता है तथा कभी-कभी वह किसी अन्य तत्व अथवा पदार्थ का प्रतिनिधित्व करने वाला भी होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रतीक वह विशेष साकेतिक चित्र अथवा शब्द है जिनका प्रयोग स्वय ही अथवा परम्परागत दृष्टि से किसी अन्य वस्तु, पदार्थ अथवा अर्थ के लिए किया जाता है। प्रतीक प्रधानत परम्परा अथवा सस्कृति से सम्बधित होते हैं और इनमें जातीय भावो और विश्वासों की प्रधानता होती है। प्रतीक मे परम्परागत अथवा पौराणिक मान्यताओं के अतिरिक्त लोक तथा व्यक्तिगत मान्यताओं का भी समावेश रहता है। काव्य मे प्रतीकों के प्रयोग द्वारा सरसता एव सुन्दरता आती है और इन प्रतीकों से कवि की बौद्धिक क्षमता तथा सहृदयता का पता चलता है।

यद्यपि बिम्ब और प्रतीक दोनों ही मानवमन से सम्बधित होते हैं लेकिन जहाँ बिम्ब मुख्य रूप से कविता की अभिव्यक्ति करने वाले उपकरणों की उत्कृष्टता से सम्बधित होते हैं वहीं प्रतीक का सम्बन्ध कविता के आलम्बनगत धर्म अथवा साध्य से होता है। बिम्बनिर्माण में जहाँ कवि की बिम्बनिर्माण सम्बधी अभिरुचि और उस निर्माण में अन्तर्भुक्त उसका निजी व्यक्तित्व महत्वपूर्ण है वहीं प्रतीक का सम्बध काव्य के प्रतिपाद्य से होता है और प्रतिपाद्य के अन्तर्गत कवि विशेष की निजी मान्यतायें, धारणाएँ एव व्यक्तित्व की विशेषताओं का अन्तर्भाव हुआ करता है। यही कारण है कि प्रतीक को उसके आश्रय के व्यक्तित्व से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतीक अपनी यात्रा बिम्बबोध के मार्ग से गुजरकर पूरा करते हैं और इसी कारण प्रतीक को बिम्ब का विकसित रूप मानते हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि बिम्बबोध वैयक्तिक होता है और प्रतीक प्राय· पारम्परिक होते हैं। यद्यपि आधुनिक समय में प्रतीक भी आधुनिक जीवन

सन्दर्भों से ग्रहण किये जाने लगे हैं। प्रतीक केवल कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान नही है। वरन् उसके पीछे मानव के अनुभवों के नित्य नये सयोजन की क्रियाशीलता भी विद्यमान है। गणपति चन्द्रगुप्त प्रतीक योजना को विस्थापनात्मक रूप विधान कहते हैं और उसे निम्न प्रकार से परिभाषित करते हैं-"साहित्य के क्षेत्र मे भी जब मूल विषय, पदार्थ, व्यक्ति या प्रसग के स्थान पर किसी अन्य बाह्य विषय अथवा अप्रस्तुत का प्रतिपादन करते हुए उसके माध्यम से ही मूल विषय या प्रस्तुत विषय की व्यजना की जाए तो इसे हम विस्थापनात्मक रूप विधान कह सकते हैं।"[278]

काव्य में प्रतीको का प्रयोग भारतीय साहित्य के लिए कोई नई वस्तु नही है वरन् वेद और उपनिषद से ही प्रतीको का प्रयोग मिलता है। वर्तमान समय मे व्यवहृत प्रतीक शब्द के लिए सस्कृत साहित्य मे 'उपलक्षण' शब्द का प्रयोग किया जाता था जिसका अर्थ था-जब कोई वस्तु अथवा नाम इस रूप में प्रयुक्त हो कि वह वस्तु अथवा नाम अपने गुण सकेत से अपने समान अन्य वस्तु अथवा वस्तुओं का भी बोध करा दे तो वह शब्द उपलक्षण रूप में प्रयुक्त कहा जाएगा। हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के अतर्गत कबीर, सूर, जायसी, मीरा आदि सभी ने रहस्यात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रतीको के माध्यम से ही की है। लेकिन जहाँ पर इन प्रतीको का अर्थ स्पष्ट नही होता, वहाँ पर इनका काव्य दुरूह हो जाता है। आधुनिक हिन्दी कविता में तो प्रतीक काव्यशैली की उल्लेखनीय विशेषता बन जाता है। आज प्रतीक को प्राचीन साहित्य में व्यवहृत उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का स्थानापन्न माना जा सकता है। यद्यपि प्रतीक को अलकार प्रणाली मे उपमान के अतर्गत माना जाता है किन्तु प्रतीक और उपमान मे किचित भिन्नता भी है और वह यह है कि प्रतीक के लिए सादृश्य के आधार की आवश्यकता नहीं केवल उसमें भाव के उद्बोधन की शक्ति होना अनिवार्य है जबकि उपमान में सादृश्य के आधार का रहना आवश्यक है। इसी प्रकार अन्योक्ति, समासोक्ति आदि अलकारों का प्रतीक से गहरा सम्बध है, फिर भी अलकारों में प्रस्तुत अप्रस्तुत का सम्बध बना रहता है और अलकारों के प्रयोग मे कवि रूढ़ियों से पूर्णतया मुक्त नही हो पाता, जबकि प्रतीको का प्रयोग कठिन होता है। अलकार परम्परागत होते हैं और प्रसिद्ध उपमानों के साथ हमारा धारणागत सम्बध होता है अत उनका नाम सुनते ही हमें उसके अर्थ का ज्ञान हो जाता है किन्तु प्रतीकों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हमे प्रसग और काव्य के अर्थ सन्दर्भों को स्पष्ट करना पड़ता है क्योंकि प्रतीक कवि की निजता से सम्बधित होते हैं। यही कारण है कि छायावादी कवियों द्वारा जब अपने काव्य में काव्यरूढियों के स्थान पर प्रतीक बहुल भाषा का प्रयोग किया गया तो परम्परागत काव्य के समर्थको को उनका काव्य ग्राह्य नहीं हुआ इसीलिए उन काव्यरूढ़ि के प्रेमी आलोचकों से उनका संघर्ष हुआ और एक बार जब प्रतीकों का अर्थ स्पष्ट हो गया तब उनकी कविता भी आलोचकों के मध्य स्वीकार्य हो गई।

महादेवी ने अपने काव्य मे कला के माध्यम से सत्य की अभिव्यक्ति की है तथा सूक्ष्म एव अमूर्त भावनाओ को व्यक्त करने के लिए प्रतीको का आश्रय लिया है। महादेवी के प्रतीक विधान पर उपनिषद, कबीर और मीरा के काव्य में प्रयुक्त प्रतीको का सम्मिलित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कुमार विमल छायावादी कवियो के मध्य केवल जयशकर प्रसाद और महादेवी को ही प्रतीकवादी परम्परा का काव्य प्रणेता मानते हैं। महादेवी के काव्य मे प्रतीको की इतनी प्रचुरता है कि उनके प्रतीको का प्रयोग अध्ययन का स्वतत्र विषय बन गया है। उन्होने अपने प्रतीकों का चयन प्रकृति के विशाल परिवेश से भी किया, ललित कलाओ से भी प्रतीक लिये। साथ ही बहुत से वैयक्तिक और आत्मनिष्ठ प्रतीक भी उनके काव्य में मिल जाते हैं। महादेवी की प्रारम्भिक रचनाओ मे कुछ शब्दो का प्रयोग पहले बिम्ब रूप मे किया गया है जो कालान्तर मे व्यापक और गहन अर्थ ध्वनित करने के कारण प्रतीक मे परिवर्तित हो गए। जैसे-शलभ, दीपक, पिजर, पाहुन, दर्पण आदि ऐसे ही प्रतीक हैं।

दीपक महादेवी का सबसे प्रिय प्रतीक है जो उनकी पहली कविता से लेकर अतिम काव्यसग्रह 'दीपशिखा' तक में बार-बार प्रयुक्त हुआ है। ऐसा लगता है कि मानो अपनी कविता में महादेवी ने दीपक प्रतीक के साथ तादात्म्य कर लिया है। एक विशेष बात यह है कि दीपक प्रतीक का प्रयोग सर्वत्र एक ही अर्थ के लिए नहीं हुआ है वरन् अलग-अलग सदर्भो मे प्रयुक्त होने के कारण यह अलग-अलग अर्थ भी देता है। कहीं पर यह जलने, घुलने और गलने के सन्दर्भ मे प्रयुक्त होता है और आत्मदान का अर्थ देता है। निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन

दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल

पुलक-पुलक मेरे दीपक जल।[279]

कहीं पर यही दीपक मदिर में इष्ट देवता के सामने जलता हुआ एकान्त समर्पण का प्रतीक बन जाता है। निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

"यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो।"[280]

छायावाद के सभी कवियों के काव्य मे प्रयुक्त प्रतीक लगभग एक जैसे हैं किन्तु महादेवी ने अपनी

समृद्ध कल्पना शक्ति के द्वारा उसमें नई अर्थवत्ता भर दी है। जैसे पिजर प्रतीक का निम्न प्रयोग एक नये अर्थ की ओर सकेत करता है-

कीर का प्रिय आज पिजर खोल दो।

हो उठी हे चचु छूकर,

तीलियाँ भी वेणु सस्वर,

बन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले,

सिहरता जड़ मौन पिजर।

आज जड़ता में इसी की बोल दो।[281]

महादेवी द्वारा प्रयुक्त प्रतीको मे कल्पना शक्ति का तो प्रयोग हुआ ही है साथ ही इन प्रतीकों के निर्माण मे मन स्थिति की विशिष्टता, अनुभूति की गहनता और उत्कट तन्मयता भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। महादेवी के कुछ प्रतीक तो भाषा की अभिव्यजना शक्ति का प्रतिमान बन गए हैं जैसे निम्न पक्तिया द्रष्टव्य है-

कलियों की घन जाली मे छिपती देखूँ लतिकाएँ,

या दुर्दिन के हाथो मे लज्जा की करुणा देखूँ।[282]

यहाँ पर महादेवी ने लज्जाशील नारी के साथ साथ दुख दैन्य से आर्त क्रन्दन करती हुई मानवता को सकेतिक करने मे सफलता प्राप्त की है।

प्रतीक के माध्यम से वक्रतापूर्ण भावों की अभिव्यजना करने के लिए महादेवी ने लाक्षणिकता का आश्रय लेकर कविता को जीवन्त बना दिया है। निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

इस अचल क्षितिज रेखा के

तुम रहो निकट जीवन के

पर तुम्हें पकड़ पाने के

सारे प्रयत्न हो फीके।[283]

यहाँ पर महादेवी ने पकड़ में न आने वाले अज्ञात, अव्यक्त प्रिय के मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण क्षितिज रेखा पर कर दिया है और उसे पकड़ पाने के सारे प्रयत्न फीके हो गए हैं- यह कहकर मानव की विवशता को लाक्षणिकता के माध्यम से प्रकट किया है क्योंकि क्षितिज रेखा तो वैसे ही अगम्य है।

महादेवी की प्रारम्भिक रचनाओ में कुछ चित्रात्मक बिम्बो का अतनी अधिक बार प्रयोग हुआ है कि वे दीपशिखा तक आते-आते प्रतीकों के लिए उपयुक्त निश्चित अर्थ पाकर प्रतीक मे परिवर्तित हो गए हैं। ऐसे प्रतीको मे दीपक, पुष्प, झझा, समीर, आकाश, निर्झर, दर्पण, पिजर आदि प्रमुख है।

निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप मे द्रष्टव्य हैं-

"यह बताया झर सुमन ने
यह बताया मूक तृण ने
यह कहा बेसुध पिकी ने
चिर पिपासित चातकी ने
सत्य जो दिव कह न पाया था अमिट सन्देश मे।"[284]

इन पक्तियों मे बिम्ब के रूप मे प्रयुक्त अप्रस्तुत प्रतीक मे परिवर्तित हो गए हैं। इसी प्रकार महादेवी की रचनाओं मे प्रयुक्त उपमान भी प्रतीक की कोटि मे पहुँच गए हैं। बीन, शलम, चातक, मेघ, पाहुन आदि ऐसे ही उपमान है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'[285]

अथवा

'नव घन आज बनो पलको मे।
पाहुन अब उतरो पलकों में।'[286]

अथवा

'शलभ मैं शापमय वर हूँ
किसी का दीप निष्ठुर हूँ।'[287]

महादेवी अपनी काव्य रचनाओं में परम्परागत और पौराणिक प्रतीको का भी प्रयोग करती हैं। जैसे-शलभ दीपक, बुलबुल आदि ऐसे ही प्रतीक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ

फूल को उर मे छिपाए विकल बुलबुल हूँ।[288]

लेकिन महादेवी के प्रतीक विधान की वास्तविक शक्ति उनके आध्यात्मिक प्रतीकों के सन्दर्भों मे देखी जा सकती है। जहाँ उनकी सूक्ष्म कल्पना के साथ साथ गहन अनुभूति के भी दर्शन होते है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

टूट गया वह दर्पण निर्मम

उसमे हँस दी मेरी छाया

मुझमे रो दी ममता माया

अश्रुहास से विश्व सजाया

खेल रहे थे आँख मिचौनी

प्रिय जिसके परदे मे हम-तुम।[289]

महादेवी ने भावों की सूक्ष्म अभिव्यजना के लिए प्रकृति से उपादान लेकर उन्हें प्रतीको के रूप मे प्रयुक्त किया है। उने काव्य में वर्षा करुणा का, ग्रीष्म क्रोध का, पतझर दुख का, बसत आनद का, मलय पवन मधु का , रश्मि सुख का, मकरद, नक्षत्र तुहिनकण आँसू का, बादल अतिथि का, नौका जीवन का, तम अज्ञान का, प्रकाश ज्ञान और चैतन्य का, मधुप प्रेमी या साधक का, मधुमास आनद का, प्रभात प्रसन्नता और प्रफुल्लता का, पतवार सहारा का, वीणा ह्रदय का, लहर मन के भावों का और सावन अश्रु या वर्षा के प्रतीक के रूप मे प्रयुक्त है। महादेवी के प्रतीकों की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि एक प्रतीक सर्वत्र एक ही भाव की व्यजना नहीं करता। जैसे शलभ प्रतीक को ही ले। इसका प्रयोग महादेवी आदर्श प्रेमी के रूप में भी करती है और मोहासिक्त व्यक्ति के रूप में भी करती हैं। शलभ का मोहान्ध व्यक्ति के रूप में प्रयोग निम्न पक्तियों में द्रष्टव्य है।

शलभ अन्य की ज्वाला से मिल

झुलभ कहाँ हो पाया उज्ज्वल

कब कर पाया वह लघुतन से

नव आलोक प्रसार।[290]

किन्तु नीचे की पक्तियो में शलभ प्रतीक का प्रयोग आदर्श प्रेमी के रूप में हुआ है-

क्यो जग कहता मतवाली?

क्यो न शलभ पर लुट-लुट जाऊँ

झुलसे पखो को चुन लाऊँ

उन पर दीपशिखा अँकवाऊँ

अलि मेने जलने मे ही जब

जीवन की निधि पा ली।[291]

इसी प्रकार महादेवी ने कही कही पर एक ही भाव की व्यजना के लिए अलग-अलग प्रतीको का प्रयोग किया है जिसके कारण उनका काव्य दुर्बोध हो जाता है क्योकि जब तक समस्त प्रतीको का अर्थ स्पष्ट नहीं होता, तब तक वाछित अर्थ का ग्रहण नही होता। जैसे महादेवी आँसू के लिए मोती, मकरद और तुहिनकण- इन तीन प्रतीको का प्रयोग करती हैं।

निम्न पक्तियाँ उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत हैं-

उस सोने के सपने को

देखे कितने युग बीते

आँखो के कोष हुए हैं

मोती बरसाकर रीते।[292]

यहाँ पर आँसू के लिए मोती का प्रयोग किया गया है। मकरन्द प्रतीक का प्रयोग निम्न पक्तियो मे द्रष्टव्य है-

समीरण के पखों मे गूँथ

लुटा डाला सौरभ का भार,

दिया, ढुलका मानस मकरन्द

मधुर अपनी स्मृति का उपहार,[293]

आँसू के लिए तुहिनकणों का प्रयोग निम्न पक्तियों में द्रष्टव्य है-

रजतकरो की मृदुल तूलिका

से ले तुहिन बिन्दु सुकुमार

कलियो पर जब आँक रहा था

करुण कथा अपनी ससार[294]

इस प्रकार स्पष्ट है कि इन प्रतीको का अर्थ स्पष्ट करने के लिए मुख्यतया सन्दर्भ पर निर्भर रहना पड़ता है तभी उनकी रचनाओं मे प्रयुक्त प्रतीको का अर्थ खुलता है। सन्दर्भ का ध्यान न रखने पर भ्राति हो जाना स्वाभाविक है।

सगीत, चित्रकला, मूर्तिकला तथा दर्शनशास्त्र से विशेष प्रेम के कारण महादेवी के काव्य मे इन क्षेत्रो से लिए गए प्रतीक भी मिलते हैं। सगीत कला के क्षेत्र से लिए गए प्रतीको मे विहान, तरन, मूर्च्छना, तार, झकार, वीणा आदि प्रमुख है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

वीणा होगी मूक, बजाने-

वाला होगा अन्तर्धान,[295]

चित्रकला से गृहीत प्रतीकों मे चित्रकार रग, रेखा, तूलिका आदि का प्राधान्य है। तूलिका प्रतीक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

रजतकरो की मृदुल तूलिका

से ले तुहिन बिन्दु सुकुमार[296]

दर्शनशास्त्र से गृहीत प्रतीकों मे माया, छलना, विराट पुरुष, प्रकृति, लहर, बिन्दु सिन्धु और चेतना प्रमुख है। माया प्रतीक का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"सखे! यह माया का देश

क्षणिक है तेरा-मेरा सग"[297]

महादेवी ने रहस्यात्मक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से की है इन प्रतीको द्वारा साधना के माध्यम से साध्य तक पहुँचने की अनुभूति व्यक्त की है। यही कारणा है कि उनके काव्य में पथ, पाथेय तरी और नाविक जैसे प्रतीक बहुलता में मिलते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

पथ मेरा निर्वाण बन गया

प्रति पग शत वरदान बन गया[298]

प्रतीको के द्वारा महादेवी ने उस रहस्यमय प्रिय के प्रति माधुर्य भावो की व्यजना भी की है। महादेवी की काव्य रचनाओ में मदिर, पुजारी, दीपक नीराजना के प्रतीक भी बार-बार मिलते है।

वेदों और उपनिषदो के अध्ययन के कारण सूर्य, कमल, नक्षत्र, चन्द्रमा, रात-दिन, उषा, सध्या, शख, मुरली, सम्पुट जैसे प्रतीक भी महादेवी की कविता मे मिलते है। उपनिषदों में माता पिता को सीप सम्पुट की तरह माना गया है जिससे जीवन मुक्ता का जन्म होता है। महादेवी के काव्य मे भी इस प्रतीक का प्रयोग मिलता है। निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य है-

नीलम मरकत के सम्पुट दो

जिनसे बनता जीवन मोता [299]

अथवा

शख मे ले नाश मुरली मे छिपा वरदान,

दृष्टि में जीवन अधर मे सृष्टि ले छविमान।[300]

महादेवी के काव्य में कुछ स्वनिर्मित प्रतीक भी मिलते हैं। जैसे- बदली सेवा करने वाली, साध्यगगन लौकिक के प्रति विराम और अलौकिक के प्रति अनुराम ओस, गीले फूल आँसुओं की लड़ी के रूप में वेदनाजल आँसू के रूप मे, सरिता करुणा और प्रेम की वाहिका, बादल करुणा के रक्षक, उषा राग के रूप मे, झझा बाधाएँ के प्रतीक रूप में मिलते हैं।

स्पष्ट है कि महादेवी के प्रतीकों की प्रयोग भूमि अत्यत व्यापक है। यद्यपि उनके प्रतीक अनेक अर्थ का वहन करने के कारण दुर्बोध तो अवश्य हैं किन्तु एक बार अर्थ स्पष्ट हो जाने पर वे भलीभाँति पाठकों द्वारा हृदयगम कर लिए जाते हैं। निश्चय ही महादेवी मे कल्पनाशक्ति अत्यत उत्कृष्ट कोटि की है क्योकि समृद्ध कल्पना शक्ति के द्वारा ही वे उत्कृष्ट बिम्बों और प्रतीकों का निर्माण करती है। साथ ही उनके बिम्ब विधान और प्रतीक योजना पर उनके परिवेश सस्कार, अध्ययन तथा लोक परम्परा का प्रर्याप्त प्रभाव पड़ा है। बिम्ब और प्रतीक के माध्यम से उन्होंने हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्मतम अनुभूतियों का भी भलीभाँति व्यक्त किया है। उन्होंने प्राचीन प्रतीकों को भी नये अर्थ सन्दर्भों में प्रयुक्त करके इस क्षेत्र में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

महादेवी के काव्य को लेकर उठाए गए विवाद :-

महादेवी वर्मा के काव्य साहित्य के इस विश्लेषण के पश्चात हम आलोचको के दो वर्ग पाते है। एक वर्ग वह है, जो उनके काव्य को पूर्णतया छायावादी काव्यप्रवृत्तियों से अनुप्राणित मानता है और दूसरा वर्ग वह है जो उनके काव्य में छायावादी प्रवृत्तियो का पूरी तरह से अभाव पाता है। इन दोनो वर्गों के अतिरिक्त भी कुछ आलोचक विद्वान ऐसे भी है जो दोनो ही वर्गो मे स्थान नही पाते। शायद समस्त छायावादी कवियो में महादेवी वर्मा ही एकमात्र ऐसी कवयित्री रही है जिनके काव्य के सम्बध मे आलोचकों के मध्य यह विचित्र विरोधाभास पाया जाता है। आलोचकों द्वारा महादेवी के काव्य के सम्बध में निरन्तर उठाये जा रहे विवादों के मध्य हम उन सबके बीच में महादेवी की स्थिति को समझ सकते हैं। महादेवी के सम्बध मे जो एक प्रश्न बार-बार उठाया जाता रहा है कि महादेवी 'दीपशिखा' की रचना के अनन्तर काव्यक्षेत्र का सर्वथा परित्याग करके गद्य क्षेत्र की ओर उन्मुख क्यों हो जाती है ? हो सकता है कि हम इस प्रश्न का समाधान भी महादेवी के काव्य की बराबर की जा रही आलोचना मे ढूँढ सके।

प्रथम वर्ग जो महादेवी वर्मा के काव्य को पूर्णतया छायावाद से निष्पन्न मानता है उनमे नगेन्द्र प्रमुख हैं। जिनका मानना है कि महादेवी छायावाद को सिर्फ पढती नही है वरन् छायावाद को महसूस भी करती हैं। अप्रैल 1944 मे 'विशाल भारत' पत्रिका में वे महादेवी के सम्बध मे प्रमुख स्थापना करते हैं, जो इस प्रकार है कि- महादेवी के काव्य मे हमे छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद की अन्तर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम जो बाह्य तृप्ति न पाकर अमासल सौन्दर्य की सृष्टि करता है, मानव और प्रकृति के चेतन सस्पर्श, रहस्य चिन्तन (अनुभूति नही), तितली के पखो और फूलों की पखुड़ियों से चुराई हुई कला और इन सबके ऊपर स्वप्न सा पुरा हुआ एक वायवीय वातावरण -ये सभी तत्व जिसमे घुले मिलते हैं, वह है- महादेवी की कविता। महादेवी ने छायावाद को पढा नहीं है, अनुभव किया है।''[301] डा0 नगेन्द्र के कथन से स्पष्ट है कि वे महादेवी को पूर्णतया छायावादी कवयित्री मानते हैं लेकिन महादेवी की रहस्यानुभूतियो में जहाँ वे अज्ञात, अव्यक्त प्रिय का सकेत पाते हैं वहाँ वे इन सकतों के आधार पर एक बिल्कुल नई दृष्टि विकसित करते हैं, जहाँ वे इन सकेतो में काम का स्पन्दन निहित मानते हैं। वे स्पष्टत स्वीकार करते हैं कि-''वास्तव में सभी ललित कलाओं के -विशेषत काव्य के और उससे भी अधिक प्रणयकाव्य के मूल में अतृप्त काम की प्रेरणा मानने में आपत्ति के लिए स्थान नहीं है।''[302] विनय मोहन शर्मा भी महादेवी और छायावाद को एक दूसरे का पर्याय मानते हैं। वे अपने लेख में लिखते हैं कि - ''छायावाद-युग ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन। प्रगतिवाद (साम्यवाद) के नारे से प्रभावित हो जब छायावाद के मान्य कवियों ने अपनी आँखे पोंछकर भीतर से बाहर झाँकना

प्रारम्भ कर दिया, महादेवी की आँखे भीगती रही, हृदय सिहरन भरता रहा, ओठो की ओटो मे आहे सोती रही और मन किसी निष्ठुर की आरती उतारता ही रहा।"[303] लेकिन इन आलोचको के मत से बिल्कुल अलग मत छायावाद के सुधी समालोचक नन्ददुलारे बाजपेई का है जो महादेवी की रचनाओ मे छायावादी प्रवृत्तियो का अभाव पाते है। वे लिखते है कि- "हिन्दी मे महादेवी जी का प्रवेश छायावाद के पूर्ण ऐश्वर्य काल मे हुआ था किन्तु आरम्भ से ही उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओ से प्राय एकदम रिक्त थी।[304] यदि नन्ददुलारे बाजपेई के इस कथन को प्रमाण स्वरूप माना जाय तो निश्चय ही सम्पूर्ण छायावाद पर पुनर्विचार की आवश्यकता है क्योंकि फिर स्वभावत यह प्रश्न उठता है कि वे कौन से छायावादी प्रतिमान हैं जो महादेवी की कविता मे नही है। यदि प्रसाद की कविता मे सास्कृतिक दृष्टिकोण का प्राधान्य रहा है, निराला के काव्य में प्रगतिशील तत्व प्रधान रहे हैं तथा प्रकृति और सौन्दर्य के सुकुमार कवि के रूप में पत की गणना होती रही है तो हमे यह भी मानने को तैयार रहना चाहिए कि अगर छायावाद मे कही अध्यात्म और स्त्री को केन्द्र में रखा गया है तो वह महादेवी की कविता रही है। इसलिए निश्चय ही, महादेवी के काव्य को छायावादी प्रवृत्तियों से शून्य नही माना जा सकता।

आलोचकों का मत है कि महादेवी की कविता ऐसे सघर्षशील समाज मे जन्म लेती है जबकि चारो ओर देश मे उहापोह से भरा वातावरण व्याप्त है। ऐसे समय मे महादेवी की कविता मे एक काल्पनिक ससार का जाल बिछाया गया है। ऐसा काल्पनिक ससार-जो आज की कुरूपता से भरी वास्तविकता की ओर एक उपेक्षा का भाव दर्शाता है और जो जिन्दगी की समस्याओं का एकमात्र उत्तर उन ससस्याओं की ओर से आँख बन्द करके अपने अन्दर वाले असीम और शाश्वत सौन्दर्य में ढूँढ़ना चाहता है। महादेवी की कविता उनकी प्रथम रचना 'नीहार' से लेकर अन्तिम रचना 'दीपशिखा' तक एक-सी रही है। जबकि समय बदला और समय के साथ दुनिया भी बदली। कल का समय रीतिरिवाज, विचारधारा, ज्ञान की जिज्ञासा का स्वरूप-सब कुछ बदल गया। कल तक जो युवावर्ग सपनों की दुनिया में खोया रहता था, आज वह यथार्थ की ठोस भूमि से टकराकर उसके स्वप्न चूर-चूर हो गए। लेकिन फिर भी महादेवी की कविता की भावभूमि मे कोई परिवर्तन नहीं होता। 'विशाल भारत' मे भी टिप्पणी छपती है कि -"इसका एक कारण है-समय बदला, पर महादेवी नहीं बदली। उनका अस्तित्व, उनका दृष्टिकोण, उनके जीवन का क्रम एक रस रहा है। उनकी कल्पना की मादकता अक्षय रही है।"[305] और महादेवी भी अपनी पुस्तक मे स्वीकार करती हैं कि -"मेरी दिशा और पथ एक रहा है, केवल इतना ही नहीं वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर हो गए है।"[306] महादेवी के काव्य के विषय में उनकी यह स्वीकारोक्ति पूर्णतया सत्य है क्योंकि उनकी प्रारम्भिक काव्य रचना 'नीहार' में जहाँ उनकी अनुभूतियाँ बालरूप में थी वे 'दीपशिखा' तक आते-आते

अत्यन्त परिपक्व हो गई है, उन अनुभूतियो मे कही शिथिलता नजर नही आती। कही पर भी रस का अभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। उनकी आत्मा ओर उनके व्यक्तित्व का पूर्ण प्रकाशन उनकी कविताओ मे हो रहा है। महादेवी की कविता की विषयभूमि के सम्बध म एक अत्यन्त कटु टिप्पणी जनवरी 1940 मे 'विशाल भारत' मे छपती है, जो पूरी की पूरी यहाँ उद्धृत की जा रही हे-"मनुष्य वर्तमान की उपज है- वह वर्तमान से ही बना है। वर्तमान की उपेक्षा करना जीवनहीनता का लक्षण है और सामने वाली चीजो के प्रति जबरदस्ती आँख बन्द कर लेने का इससे बढ़कर उदाहरण साहित्य मे कहाँ मिलेगा? यह भक्ति, यह तन्मयता-यह सब अकर्मण्यता से भरी गुलामी के चित्र है, जो हमारी उलझनो को और भी भयानक बनाए देते हैं। जीवन कर्म है- सघर्ष है और यह कविता अपनी समस्याओ को तथा उनकी भयानकताओं को क्षण भर के लिए भुला देने का मीठा नशा भर है, जिसके उतरने के बाद हम अपने को और भी विकराल परिस्थिति मे पाएँगे। असीम और अनन्त से हमारी रोटी का सवाल तो नही हल होता। फिर हम मनुष्य है- कर्ता है हमारा कर्तव्य है काम करे, अपनी उलझनों को खुद दूर करें, न कि एक काल्पनिक भगवान की दुहाई देकर उसके सामने नाचकर, गाकर, हम आँसू बहा दे।"[307]

लेकिन वही एक दूसरे आलोचक महादेवी के स्त्री होने के कारण उन्हे थोडी छूट देते हैं क्योकि हमारे समाज मे कर्ता पुरुष को माना गया है, स्त्री इस उत्तरदायित्व से मुक्त है। इसलिए सामर्थ्य कर्म, सब पुरुष के हिस्से में आ जाते हैं। कोमलता, भावुकता, मधुरता, ममता आदि स्त्री की चारित्रिक विशेषताएँ मानी जाती हैं और महादेवी स्त्री होने के कारण इन विशेषताओ से युक्त हैं। इसीलिए उनकी कविता स्त्री की कविता है और स्त्री की कविता होने के कारण वह इतनी सफल कविता है। भावना की प्रखरता और कल्पना के सम्मोहन से उनकी कविता ओतप्रोत है। भगवती चरण वर्मा महादेवी की कविता के विषय में लिखते हैं कि- "महादेवी की कविता करुण रस प्रधान है। वियोग और पीडा उसका मुख्य विषय है। पर महादेवी का वियोग और उनकी पीड़ा इस दुनिया की न रहकर दूसरी दुनिया की हो गई है। उनका प्रेम उनकी भावना मानवीय सतह से ऊपर उठकर एक ऊँची सतह पर स्थित है।"[308] परन्तु यहीं से महादेवी की कविता के विषय मे दूसरा प्रश्नचिह्न लगता है कि यह भक्ति, यह आराधना, यह उपासना इन सबका एक लक्ष्य होना चाहिए और महादेवी की कविता में लक्ष्य अस्पष्ट है अथवा इसी बात को हम यूँ भी कह सकते हैं कि भावना को केन्द्रीभूत करने के लिए कोई भौतिक वस्तु होना चाहिए, फिर वह भौतिक वस्तु पत्थर की ही क्यों न हो। मीरा के काव्य की सफलता का कारण भी यही माना गया है कि उनका आराध्य मोरमुकुट धारण करने वाला साँवला कृष्ण था और दर्शनशास्त्र का ब्रह्म निराकार होता है और निराकार होने के कारण उसकी पूजा नहीं की जा सकती। यद्यपि निराकार की उपासना कबीर भी करते हैं लेकिन कबीर में बुद्धि प्रधान और

भावना गौण हैं, इसलिए उनकी कविता मे बौद्धिकता का प्राधान्य है, भावुकता भी है लेकिन वह बौद्धिकता की तुलना मे कम है। जबकि महादेवी की कविता भावनात्मक है ओर निराकार असीम, अव्यक्त को अपनी भावना का केन्द्र बनाना आसान कार्य नही है। यही कारण है कि महादेवी की कविता को अस्पष्टता के दोष से मुक्त नहीं किया जा सकता। इसी बात की पुष्टि भगवती चरण वर्मा का निम्न कथन भी करता है कि- "असीम की कल्पना ही एक अस्पष्ट और धुँधली कल्पना है। उस कल्पना को अकित करने मे अस्पष्टता के दोष को बचाया नहीं जा सकता।"[309] यद्यपि भगवती चरण वर्मा महादेवी की कविता को सीधी सादी भावनामय सगीत की कविता मानते हैं लेकिन फिर भी वे उसमें कुछ दोष भी देखते हैं जैसे उसमे रूपक अधूरे हैं, भाव बिखरे हुए विशृखल से हैं और कल्पना अस्पष्ट है। महादेवी की कविता पर जो एक सबसे बडा दोष लगाया जाता है- वह एकरसता है अर्थात 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक कविताओ की भावभूमि एक रही है, उसमे वैविध्यता नही है। यही महादेवी जैसे कवि-कलाकर की सबसे बड़ी सीमा मानी गयी है क्योंकि अब वह समय तो निश्चय ही नहीं रहा है जबकि शरीर के नख-शिख सौन्दर्य के वर्णन पर हजारो दोहे लिखे जाते थे और वे सभी रस ले लेकर पढ़े जाते थे। आज के इस बौद्धिक युग मे, जबकि नित्यप्रति नई-नई चीजे सामने आ रही हैं, सबसे बड़ी आवश्यकता कला की ताजगी है इसलिए वही कलाकार महान माना जाता है जो जिन्दगी के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर सके। भगवती चरण वर्मा विशालभारत में 'यामा' की समीक्षा लिखते समय इस ओर सकेत करते हैं कि-"महादेवी मे एकरसता है- उनका एक व्यक्तित्व है- उनकी एक हस्ती है। पर उनमे एक बहुत बड़ा दोष है, उनमे ताजगी नही है, उनमें एक भयानक मोनोटॉनी (monotony) है। उनके जीवन की परिधि बड़ी सकुचित सी है- उनकी चार कविताओं को पढ लेने के बाद एक साधारण पाठक के लिए उनकी बाकी कवितायें व्यर्थ सी हो जाती है। एकरसता ठीक है, पर विषय भी एक होना एक कलाकार मे बहुत बड़ी कमी दर्शाता है।"[310]

लेकिन अधिकाश आलोचक महादेवी पर लगाए गए एकरसता के आरोप को उचित नहीं मानते। विशाल भारत में भगवती चरण वर्मा के लेख के प्रकाशित होने के बाद दूसरे ही अक में शिवसिह 'सरोज' महादेवी के काव्य को शुद्ध आध्यात्मिक और अनुभूति का काव्य मानते हैं। यह सच है कि महादेवी उन भौतिक वस्तुओं के प्रति आकर्षित नही होती जिनका प्रेम उनकी नश्वरता के साथ स्वय नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत उनका हृदय उस अनन्त की अनुभूति में छटपटा रहा है, जो चैतन्य और अमर है, जो स्वय प्रेमरूप है जिसने केवल शुद्धप्रेम से ही सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण किया है। इस अनन्त और अज्ञात प्रिय के प्रति अमर प्रेम महादेवी के काव्य का आधार है। शिवसिह 'सरोज' उनके काव्य में एकरसता का कारण भी इसी को मानते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी की कविताओं में कृत्रिम कल्पना नहीं वरन् उस अनन्त की

अनुभूतिभरी हुई है। शिवसिह 'सरोज' का मानना है कि जब महादेवी की साधना ही उसी एक अभाव मे, उसी एकरस मे रगी है तो उनकी कविता मे बहुरसता ढूँढना न्यायसगत नही है। यह एकरसता इस प्रकार की सभी कविताओ मे मिलेगी। शिवसिह सरोज इस तथाकथित एकरसता के सम्बध में लिखते है कि-'जिस प्रकार आँसुओ का खारा जल प्रति बार अपना वही खारापन लिए हुए हृदय के स्तर-स्तर को प्लावित कर जाता है। ठीक उसी तरह महादेवी का प्रत्येक गीत मानवहृदय को हर बार अनत अनुभूति का आनन्द देता है। अस्तु, महादेवी की कला ने जिस आधार पर अपने को विकसित किया है। उसमे तथाकथित Monotony स्वाभाविक है, पर वह किसी प्रकार भी वास्तविक Monotony नही है, न उसको दोष ही कहा जा सकता है और न उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता हे।''[311]

महादेवी के काव्य मे सर्वत्र पीड़ा का जो अथाह सागर लहराता हुआ दिखाई देता है उसे भी अधिकाश आलोचक अनुमानजन्य मानते हैं। इसी प्रकार महादेवी के काव्य में मिलन की उत्कण्ठा के अभाव को भी आलोचको ने उनमे विरह की पीड़ा को न जानना माना है। 'साहित्य सदेश' मे जैनेन्द्र लिखते है कि- ''महादेवी जी के काव्य मे ईशवेदना से घायल प्राणो की ध्वनि मुझे अनुभव नहीं हुई। हाँ! वैसा घाव चाहती हैं। चाहती है, इसी में है कि वह वहाँ है नही। वियोगी मिल चाहता है, वह वियोग ही चाहती दीखती है। इससे क्या यह अनुभव न हो कि वियोग की पीर उन्होने जानी नही। इसी से मिलन का भरपूर उत्कण्ठा का स्वर उनके काव्य मे नहीं है। तभी उस विषाद का रस भी उत्कट उल्लासमय दीख आता है। मीरा की कोटि तो मैं अलग मानता हूँ।''[312] फिर जैनेन्द्र प्रश्न करते हैं कि क्या महादेवी की कविता रसस्फूर्त है? सोची हुई सी फिर वह क्यो लगती है?

महादेवी द्वारा अपने काव्य में व्यक्त सयोग समय छिप जाने की अभिलाषा तत्कालीन पाठक वर्ग को भी आश्चर्य में डाले हुए थी। यह प्रश्न उन्हें इतना उद्वेलित करता है कि उस समय की पत्र पत्रिकाओ में निरन्तर इसको लेकर सवाद की स्थिति बनी हुई थी। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं- सितम्बर 1953 की 'साहित्य सदेश' में एक पाठक प्रश्न करते हैं कि ''महादेवी सयोग समय क्यों छिप जाना चाहती है?''[313] जिसका कारण सम्पादक महोदय महादेवी की व्यक्तिगत मानसिक स्थिति और निजी दृष्टिकोण को मानते हैं क्योकि महादेवी वियोग में प्राप्त पीड़ा को मधुर मानती है जिसका सयोग होने पर अन्त हो जाएगा और दूसरा उनके अनुसार मिलन का अर्थ है- पीड़ा का अन्त हो जाना 2 व्यक्तित्व की समाप्ति। इन दो कारणों से ही महादेवी मिलन नहीं चाहती और वे प्रिय के सम्बध से उत्पन्न वियोग पीड़ा को हृदय में सहेज रखना चाहती हैं। उन्हें जीवन में अतिशय प्यार-दुलार मिला अत उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भी उन्हें पीड़ा प्रिय हो गई है। सयोग हो जाने पर उनकी चिर प्रियपीड़ा के समाप्त हो जाने का भय है, अत वे सयोग समय

छिप जाना चाहती हैं। कुछ विचारक इस प्रश्न का उत्तर कवयित्री के व्यक्तिगत जीवन मे खोजते हैं और उनका मानना है कि महादेवी को लौकिक जीवन मे भी वियोग का विषम भार उठाना पड़ा था। वे अपने स्वाभिमान को पीड़ा के पालने मे पालती है। समर्पण उनके व्यक्तित्व के विरुद्ध है। चिरसुन्दर की स्मृति मे घुलते रहना उन्हे प्रिय है, उन्हें वियोग साधना मे निमग्न रहना इष्ट है। समर्पण द्वारा प्राप्त सयोग का आनन्द उन्हे प्रिय नही है। वे लिखती भी है कि-

"तुम अमर प्रतीक्षा हो, मै
पग विरह पथिक का धीमा

चलते-चलते मिट जाऊँ
पाऊँ न पथ की सीमा।"

परन्तु साहित्य सदेश पत्रिका मे सपादक द्वारा दिए गए इस प्रकार के उत्तर से एक दूसरे पाठक सतुष्ट नहीं होते। वे प्रश्न करते हैं कि "एक जगह तो वे अपने कल्पित प्रिय की कमी से प्रतीक्षा कर रही हैं ओर वे लिखती भी है कि-

जो तुम आ जाते एक बार

अथवा

यह सजल मुख देख लेते।

तथा प्रतीक्षा में लिखती हैं-

करुणामय को भाता है, तम के परदे मे आना,
हे नभ की दीपावलियाँ, तुम क्षण भर को बुझ जाना,

इससे यही स्पष्ट होता है कि महादेवी जी सयोग चाहती है।"[314]

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उस पत्रिका में छपता है कि "प्रतीक्षा में अधिक आनन्द है और जब पीड़ा को उन्होंने अपना ध्येय बनाया तब उनके लिए सयोग का महत्व नहीं रहता। इसके अतिरिक्त यह पक्ति उनकी त्यागभावना की भी द्योतक है। वे प्रियतम की प्रतीक्षा में रहना चाहती हैं। प्रियतम से मिलन चाहने में वह नि स्वार्थता प्रकट नहीं होती जो मिलन के समय छिप जाने में है। इसका दूसरा आध्यात्मिक अर्थ यह है कि वे मिलन के समय अपना व्यक्तित्व खो देना चाहती है। मिलन में 'मैं' का अभाव हो जाता है।

"प्रेम गली अति साँकरी जामैं दो न समाय।" इस भावना से 'जो तुम आ जाते एक बार' की पक्तियो का भी विरोध नही है। ये पक्तियाँ उनकी मिलन की चाह की भी द्योतक हैं। यह चाह चिरन्तन की चाह है, पपीहा की रट है। इसमे दया की याचना की ध्वनि अवश्य है किन्तु इसके आगे कुछ नही। तम के पर्दे में आने की बात उनके रहस्यवाद से सम्बध रखती है। भगवान के दर्शन वैभव के प्रकाश मे नही होते और न शास्त्र ज्ञान के आलोक मे उनकी प्राप्ति होती है। वह एक धूमिल अधकार मे ही आते है। इसीलिए वे तारो के छिप जाने की बात कहती हैं। अधिकार मे व्यक्तित्व की स्पष्ट रेखाएँ नही रहती। इसमे वैध ओर अवैध प्रेम की भी बात नही रहती।"[315]

कुछ आलोचक महादेवी की कविता को विश्वविद्यालय की कविता मानते है अर्थात इसमे विद्वता की अनिवार्य क्लिष्टता है और भाव तथा भाषा भी स्पष्ट नही है। आलोचक 'आँसू' कविता और 'जो तु आ जाते एक बार'- इन दो कविताओं को उद्धृत करके इनके अर्थ को स्पष्ट नही मानते। यद्यपि इसकी शैली अनुपम और भाषा लालित्यपूर्ण है परन्तु फिर भी वे महादेवी से विनती करते है कि -"हम जैसे अल्पज्ञो के लिए श्रीमतीजी सरल भाषा मे भी अपने कुछ विचारो को व्यक्त करती तो बड़ा उपकार होता। यदि यह लेख कभी उनके दृष्टिगोचर हो तो इस पर वे कृपया विचार करे। एक अगरेज कवि लिखता है कि काव्य जीवन की आलोचना है। यदि हम प्रार्थना करें कि यह आलोचना ऐसी हो जिसका तारतम्य हम ग्रहण कर सके, तो अनुचित न होगा।"[316]

इसी प्रकार सरस्वती पत्रिका में भी इस प्रकार के लेख छपते है कि महादेवी की कविता में भाव और भाषा का तारतम्य नही है। एकाध उदाहरण द्वारा वे अपनी बात की पुष्टि भी करते हैं-

"इन हीरक से तारो को
कर चूर बनाया प्याला।
पीड़ा का सार मिलाकर
प्राणों का आसव डाला।

अथवा

बेसुध से प्राण हुए थे
छूकर उन झनकारों को,

उड़ते थे, अकुलाते थे,

चुम्बन करते तारो का।।

अब वे आलोचक इन पक्तियो का अर्थ करते है कि -'हीरों के समान तारो को चूरकर उनका प्याला बनाया और उसमे अपनी पीड़ा प्राण पीये गये।'' वे प्रश्न करते हे कि ज्ञात नही है कि इन तारो का प्याला क्यों बना? परन्तु दूसरे ही पद मे प्राण उड़-उड़कर तारो को चूमते है। पहले तारे चूर-चूर हो गए अब वे चूमे जाते है। भाव साम्य का कहीं पता नही। हाँ! शब्द अवश्य सुन्दर रखे गए हैं। इस कविता को पढे जाने पर स्वप्न का कुछ भी पता न चला। यदि इसका नाम स्वप्न के स्थान पर उड़ान रख दिया जाता तो अच्छा होता फिर महादेवी की एक अन्य कविता को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं कि-

झिलमिल तारो की पलको मे,

स्वप्निल मुस्कानो की ढाल।

मधुर वेदनाओ से भर के,

मेघो का छायामय थाल।

अर्थात, तारो की पलकों में स्वप्निल मुस्कान ढाल दी गई, इसका क्या अर्थ होगा तथा मेघो का छायामय थाल क्या होगा। शायद देवीजी ही पढ सकें यदि मेघ होगे तो उसमे वेदनाये भरी जाने पर देख पड़ेगी, इसका पता नहीं।''[317]

स्पष्ट है कि महादेवी की कविता के मनमाने अर्थ लगाकर ही आलोचक वर्ग सतुष्ट नही होता वरन् वे एक कदम और आगे बढकर महादेवी वर्मा को इस बात की सलाह देने लगते हैं कि यदि वे इस तरह की ही कविताएँ लिखना चाहती है तो उन्हें कविता लिखना बन्द कर देना चाहिए। जनवरी 1940 की सरस्वती पत्रिका मे 'यामा' की समालोचना करते हुए कहा जाता है कि - ''सकोच के साथ इतना कहना आवश्यक जान पड़ता है कि 'साध्यगीत' आधुनिक आध्यात्मिक कविता की चरम अभिव्यक्ति है। सम्भव है कि महादेवी जी और भी इसी प्रकार के गीत लिखे परन्तु उसमें हमे किस नवीनता के दर्शन मिलेगे, इसके विषय मे सदेह होना स्वाभाविक है। यदि आगे भी उन्हें वही बातें दुहरानी हैं तो उन्हे अपना माध्यम बदलना पड़ेगा।''[318] इसी से मिलती जुलती सलाह जनवरी 1940 के विशाल भारत में भगवती चरण वर्मा भी देते हैं। वे लिखते हैं कि ''महादेवी को नवीन दृष्टिकोण नहीं मिल सका- इसके लिए कोई महादेवी को दोष नहीं दे सकता, पर महादेवी अगर अपने जीवन को एक सकरे और सीमित दायरे में बाँधकर ही महान कला की साम्राज्ञी बनना चाहती हैं तो गलती करती हैं।[319]

इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी की कविता को लेकर आलोचको द्वारा उठाए गए उपर्युक्त प्रश्न और विवाद ने महादेवी की मन स्थिति को निश्चय ही कही न कही बहुत गहरे प्रभावित किया होगा जिसका प्रतिक्रियास्वरूप अथवा परिणामस्वरूप पूरा तो नही कुछ हद तक उनका गद्य लेखन मे प्रवेश माना जा सकता है। किसी भी सवेदनशील व्यक्ति अथवा कवि के लिए उसका रचनाससार ही सब कुछ होता है किन्तु उस रचना के सत्य और असत्य को लेकर हुई अपने समय मे ही अनेक चर्चाओ का गहरा प्रभाव भी उनके अर्न्तमन पर पडता है। इन्ही प्रश्नो के आलोक मे यदि महादेवी के गद्यलेखन की शुरुआत को कारण स्वरूप माना जाय तो शायद अनुचित न होगा।

* * *

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1 वाल्मीकि रामायण, वाल्मीकि

2 पल्लव, सुमित्रानन्दन पत, पृ0स0 62

3 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 8

4 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 43

5 सान्ध्य गीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 31

6 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 67

7 महादेवी अभिनदन ग्रन्थ स0 देवदत्त शास्त्री, पृ0स0 10

8 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0स0 185

9 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 43

10 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 10

11 हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0स0 185

12 महादेवी काव्यकला और जीवनदर्शन, शचीरानी गुर्टू पृ0स0 236

13 महादेवी, शचीरानी गुर्टू, पृ0स0 201

14 महादेवी, शचीरानी गुर्टू, पृ0स0 74

15 महादेवी, शचीरानी गुर्टू, पृ0स0 57

16 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 12

17 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 37

18 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 74

19. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 7

20 साहित्य सदेश, सितम्बर-1938, पृ0स0 9

21 हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई पृ0स0 189

22 सुधा, मई-1939 पृ0स0 311

23 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 74

24 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स 41

25 सुधा, मई-1939 पृ0स0 312

26 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 7

27 महादेवी, शचीरानी गुर्टू पृ0स0 4

28 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 30

29 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 12

30 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 65

31 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 23

32 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 66

33 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 38

34 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 22

35 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 79

36 विशाल भारत, जून 1954, पृ0स0 402

37 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0स0 185

38 छायावाद और महादेवी, नन्दकुमार राय, पृ0स0 15

39 पल्लव, सुमित्रानदन पत, पृ0स0 151

40 आँसू, जयशकर प्रसाद,

41 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 26

42 भ्रमरगीत सार, स0 श्यामसुन्दर दास,

43 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 76

44 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 78

45 महादेवी साहित्यसमग्र-3,स0-निर्मला जैन, पृ0स0 17

46 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 66

47 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 101

48 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 103

49 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 96

50 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0स0 196

51 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 41

52 वीणा, सितम्बर 1942, पृ0स0 979

53 साहित्यसदेश, सितम्बर 1938, पृ0स0 9

54 महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ, स0 देवदत्त शास्त्री, पृ0स0 19

55 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0स0 104

56 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 19

57 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 20

58 महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ, स देवदत्त शास्त्री, पृ स 82

59 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचद्र शुक्ल, पृ0स0 453

60 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा

61 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0स0 225

62 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 82

63 हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0स0 178

64 कबीर ग्रन्थावली, स0 श्यामसुन्दर दास

65 साहित्य सदेश, मई-1952, पृ0स0 482

66 महादेवी, स0-इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 15

67 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 83

68 साहित्य सदेश, दिसम्बर 1954, पृ0स0 217

69 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 48

70 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 16

71 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 21

72 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 58

73 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 23

74 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 30

75 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 54

76 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 64

77 महादेवी, स0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 210

78 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 27

79 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 92

80 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 20

81 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 99

82 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 24

83 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 35

84 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 31

85 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 28

86 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 54

87 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 22

88 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 79

89 सुधा, मई-1939, पृ0स0 310

90 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 47

91 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 33

92 महादेवी का काव्य एक विश्लेषण, दुर्गा शकर मिश्र, पृ0स0 70

93 विशालभारत, जून-1954, पृ0स0 401

94 हिन्दी साहित्य-बीसवी शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0स0 179

95 हिन्दी साहित्य-बीसवी शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0स0 188

96 महादेवी, स0-इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 203

97 महादेवी, स0-इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 204

98 महादेवी अभिनदन ग्रन्थ, स0 देवदत्त शास्त्री, पृ0स0 216

99 महादेवी, स0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 92

100 सुधा, मई 1939, पृ0स0 308

101 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 7

102 महादेवी अभिनदन ग्रन्थ, स0 देवदत्त शास्त्री पृ0स0

103 विशाल भारत, जून-1952, पृ0स0 379

104 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचद्र शुक्ल, पृ0स0 487

105 विशाल भारत, जून-1952, पृ0स0 380

106 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 63

107 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 14

108 महादेवी का काव्य एक विश्लेषण, दुर्गाशकर मिश्र, पृ0स0 95

109 महादेवी, स0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 163

110 पल्लव, सुमित्रानदन पत, पृ0स0 84

111 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 58

112 महादेवी साहित्य समग्र-1 स0-निर्मला जैन, पृ0स0 433

113 महादेवी साहित्य समग्र-1 स0 निर्मला जैन, पृ0स0 477

114 महादेवी साहित्य समग्र-9 स0-निर्मला जैन, पृ0स0 426

115 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 58

116 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 66

117 महादेवी नया मूल्याकन, गणपति चन्द्र गुप्त, पृ0स0 237

118 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 13

119 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 29

120 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 59

121 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 12

122 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 39

123 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 79

124 परिमल, सूर्यकात त्रिपाठी निराला, पृ0स0 104

125 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 15

126 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 102

127 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 88

128 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 9

130. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 51

131. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 89

132. विशाल भारत, जून 1952, पृ0सं0 377

133. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 26

134. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 49

135. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 35

136. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 52

137. महादेवीः नया मूल्यांकन, गणपति चन्द्र गुप्त, पृ0सं0 249

138. महादेवी, सं0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 169

139. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 41

140. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 57

141. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 73

142. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 30

143. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 78

144. हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 177

145. हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 176

146. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 9

147. महादेवी, सं0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 45

148. सुधा, मई-1939, पृ0सं0 437

149. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 14

150. महादेवी अभिनंदन ग्रन्थ, सं0 देवदत्त शास्त्री, पृ0सं0 119

151. महादेवी अभिनंदन ग्रन्थ, सं0 देवदत्त शास्त्री, पृ0सं0 142

152 महादेवी, स0 शचीरानी गुर्टू, पृ0स0 59

153 महादेवी, स0 शचीरानी गुर्टू, पृ0स0 60

154 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 51

155 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 103

156 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 102

157 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 103

158 रश्मि, 'अपनी बात',महादेवी वर्मा, पृ0स0 5

159 पल्लव, सुमित्रानदन पत, पृ0स0 28

160 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 105

161 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 15

162 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 12

163 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 38

164 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 78

165 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 40

166 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 113

167 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 53

168 महादेवी, शचीरानी गुर्टू, पृ0स0 46

169 महादेवी, स0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 117

170 महादेवी, स0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 101

171 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 51

172 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 39

173 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 99

174 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 93

175 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 36

176 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 38

177 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 91

178 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 95

179 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 81

180 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 56

181 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 83

182 महादेवी, स0 शचीरानी गुर्टू, पृ0स0 60

183 सुधा, मई 1939, पृ0स0 439

184 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 51

185 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 36

186 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 91

187 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 38

188 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 75

189 पल्लव, सुमित्रानदन पत, पृ0स0 26

190 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, महादेवी वर्मा, पृ0स0 55

191 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 13

192 उत्तर प्रदेश, सितम्बर-1988, स0 कौशल कुमार राय, पृ0स0 141

193 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 92

194 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 46

195 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 34

196 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 15

197 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 81

198 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 30

199 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 61

200 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 64

201 महादेवी की काव्य साधना, सत्यपाल चुघ, पृ0स0 136

202 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 14

203 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 28

204 महादेवी वर्मा, स0 शचीरानी गुर्टू, पृ0स0 72

205 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 12

206 पल्लव, सुमित्रानदन पत, पृ0स0 31

207 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 27

208 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 29

209 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 41

210 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 81

211 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 51

212 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 67

213 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 26

214 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 82

215 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 9

216 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 60

217 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 28

218 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 89

219 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 120

220 वीणा, 1942, ब्रजकिशोर चतुर्वदी, पृ0स0 1068

221 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 45

222 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 36

223 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 23

224 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 66

225 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 24

226 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 35

227 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 18

228 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 57

229 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 27

230 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 14

231 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 15

232 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 39

233 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 25

234 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 30

235 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 33

236 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 33

237 वीणा, नवम्बर 1942, ले0 ब्रजकिशोर चतुर्वेदी, पृ0स0 43

238 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 25

239 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 11

240 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 24

241 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 28

242 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 11

243 वीणा, नवम्बर-1942 ले0 ब्रजकिशोर चतुर्वेदी, पृ0स0 43

244 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 74

245 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 77

246 हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0स0 187

247 महादेवी, स0 परमानन्द श्रीवास्तव, पृ0स0 11

248 महादेवी, स0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 134

249 महादेवी साहित्य समग्र, भाग-3, स0 निर्मला जैन, पृ0स0 415

250 महादेवी, स0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 72

251 वीणा, सितम्बर-1942, ले0 ब्रजकिशोर चतुर्वेदी, पृ0स0 979

252 The Poetic Image, सी0डी0 लेविस, पृ0स0 18-19

253 चितामणि-भाग-1, रामचद्र शुक्ल, पृ0स0 45

254 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 54

255 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 55

256 मेघदूत, (उत्तर मेघ-2) कालिदास

257 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 26

258 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 17

259 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 16

260 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 13

261 साध्यगीत, महादेवी बर्मा, पृ0सं0 20

262 महादेवी, स0 शचीरानी गुर्टू, पृ0स0 204

263 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 100

264 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 27

265 महादेवी का काव्य सौष्ठव, कुमार विमल, पृ0स0 146

266 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 71

267 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 70

268 महादेवी का काव्य सौष्ठव, कुमार विमल, पृ स 147

269 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 26

270 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 41

271 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 31

272 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 19

273 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 73

274 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 18

275 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 77

276 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 63

277 महादेवी का काव्य सौष्ठव, कुमार विमल, पृ0स0 163

278 महादेवी नया मूल्याकन, गणपति चन्द्रगुप्त, पृ0स0 269

279 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 33

280 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 83

281 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 52

282 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 51

283 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0स0 23

284 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 90

285 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 27

286 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 70

287 साध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0स0 30

288 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 27

289 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 64

290 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 25

291 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 58

292 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 20

293 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 46

294 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 11

295 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 14

296 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 11

297 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0स0 54

298 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 127

299 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 106

300 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0स0 101

301 विशाल भारत, अप्रैल-1944, पृ0स0 260

302 महादेवी, स0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0स0 203

303 महादेवी, शचीरानी गुर्टू, पृ0स0 50

304 हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0स0 174

305 विशाल भारत, जनवरी, 1940, पृ0स0 93

306 'यामा' भूमिका, महादेवी वर्मा, पृ0स0 5

307 विशाल भारत, जनवरी, 1940, पृ0स0 94

308 विशाल भारत, जनवरी, 1940, पृ0स0 94

309 विशाल भारत, जनवरी, 1940, पृ0स0 95

310 विशाल भारत, जनवरी, 1940, पृ0स0 96

311 विशाल भारत, मई, 1940, पृ0स0 525

312 साहित्य सदेश, सितम्बर 1940, पृ0स0 25-30

313 साहित्य सदेश, सितम्बर 1953, पृ0स0 128

314 साहित्य सदेश, अक्टूबर 1953, पृ0स0 166

315 साहित्य सदेश, अक्टूबर 1953, पृ0स0 166

316 विशाल भारत, मई 1931, 'स्त्री-कवि-कौमुदी', ईश्वरी प्रसाद , पृ0स0 683 से 684

317 सरस्वती, जनवरी 1931 ले0 देवशकर त्रिवेदी, पृ0स0 144

318 सरस्वती, जनवरी 1940, पृ0स0 89-90

319 विशाल भारत, जनवरी 1940, पृ0स0 96

* * *

पंचम - अध्याय

महादेवी का गद्य साहित्य :

अन्तर्वस्तु, भाषा और शिल्प–स्वरूप और विश्लेषण

●

1 महादेवी का गद्य लेखन में प्रवेश

2 काव्य से गद्य का अन्तर

3 गद्य की विविध विधाएँ-

क रेखाचित्र

ख सस्मरण

ग आलोचकों द्वारा उठाया गया विधा का प्रश्न

घ महादेवी के सस्मरण और रेखाचित्र अन्तर्वस्तु का विश्लेषण

4 महादेवी का निबन्ध लेखन

5 महादेवी की अन्य गद्य रचनाएँ

6 गद्य रचनाएँ भाषा और शिल्प

7 महादेवी के गद्य को लेकर उठाए गए विवाद

महादेवी का गद्यलेखन में प्रवेश-

सन् 1936 के आसपास जब प्रगतिवाद के आकर्षक नारे से हिन्दी साहित्य जगत की गलियाँ गुँजायमान होने लगी और सुमित्रानन्दन पन्त तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जसे छायावाद के प्रमुख कवि भी छायावाद के धुधले पथ को पर करके प्रगतिवाद के स्पष्ट पथ की ओर उन्मुख होने लगे तब अन्य कवियो के लिये क्या कहा जाये। प्राय सभी कवि प्रगतिशील कहलाने के लिए आकुल होने लगे। प्रारम्भ से ही छायावाद को अछूत मानकर उसकी निरन्तर आलोचना करने वाले आलोचको ने भी शीघ्र ही तत्कालीन पत्र पत्रिाकओ में अपने लेखों द्वारा छायावाद के अन्त की घोषणा कर दी। यहाँ तक कि स्वय सुमित्रानन्दन पन्त ने भी युगान्त की रचना द्वारा छायावाद का अन्त हुआ मान लिया और अपनी दूसरी कृति 'युगवाणी' द्वारा उन्होने 'प्रगतिवाद' के उद्घोष को भी वाणी दे दी। ऐसे विषम समय म जब लगभग सभी महत्वपूर्ण सम्मेलन एव मचो द्वारा प्रगतिवाद का जय-जयगान किया जा रहा था ओर 1936 मे तो प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना भी हो गई थी। तब भी महादेवी वर्मा ने अपनी काव्यकृति 'दीपशिखा' के द्वारा छायावाद की ज्योति को प्रज्जवलित करने का आखिरी सफल प्रयास तो अवश्य किया और लेकिन युगीन परिस्थितियो और समाज की आवश्यकताओ को ध्यान में रखते हुए अब महादेवी वर्मा के लिए भी यह सम्भव नही था कि वह निरन्तर छाया-पथ की ही अनुगामिनी बनी रहे। क्योंकि बार-बार वही भाव, वही विचार, वही बिम्ब, वही प्रतीक कविता में प्रयुक्त होकर अपना जादू खोने लगे थे और पुनरावृत्ति की सभावना अधिक प्रबल हो रही थी। यद्यपि यह तो महादेवी वर्मा ने भी स्वीकार किया कि 'छायावाद का जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नही रहा।'[1] उन्होंने यह भी स्वीकार किया-'छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तों का सचय न देकर हमे केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था, इसी से उसे यथार्थ रूप में ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया ।'[2] परन्तु 'फिर भी उन्होने समान धर्माओ की तरह राहे नहीं बदली'[3] और 'अपने शेष दो सहयात्रियों के समान, महादेवी ने समय और प्रवृत्ति दोनो ही दृष्टियो से छायावाद का अतिक्रमण करने का प्रयास नही किया।'[4] वरन् इसके विपरीत उन्होंने छायावादी प्रवृत्तियों को विराम देते हुए 'दीपशिखा' के साथ अपने कवि जीवन का अन्त स्वीकार करके अपनी विचारधारा में आए हुए इस परिवर्तन को महत्व दिया लेकिन उनकी लेखनी के लिए तो यह यह सम्भव ही नहीं था कि वह विराम पा जाए। अब तो समाज का अधिक विस्तृत एव व्यापक क्षेत्र मानों उनकी प्रतीक्षा कर रहा था और अपने उत्पीड़न, शोषण की मूक कहानी को उनकी लेखनी द्वारा अभिव्यक्ति की आकाक्षा व्यक्त कर रहा था। महादेवी

वर्मा भी अपने काव्य मे अभिव्यक्त आत्मपीड़ा को, करूणा तथा सवेदना को समाज मे विद्यमान दीन-हीन शोषित जन की पीड़ा तथा सवेदना के साथ एकात्म स्थापित कर उनके मौन को मुखर अभिव्यक्ति देने मे लग गई, जो तत्कालीन समाज की आवश्यकता भी थी। अब उनको अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक विराट फलक दिखाई दे रहा था, उन्हे राजनीतिक क्षेत्र मे छाये जनअसतोष क कारण आशा निराश की डाँवाडोल स्थिति से विचलित मन को शक्ति ओर सबल भी देना था, दीन-हीन जन की समस्याओ को वाणी देकर समाज के तथाकथित प्रहरियो का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट करना था और नारी की दीर्घकालीन जड़ता की स्थिति को समाप्त करना था, आधुनिक परिवेश मे पली-बढी नारी को आधुनिकता के सही मायने भी सिखाने थे। इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम गद्य ही हो सकता था और उन्होंने गद्य को ही अपनी अभिव्यक्ति के लिए चुना। लेकिन इसका अर्थ यह नही लगाना चाहिये कि काव्य मे महादेवी चुक गई थी, इसीलिए गद्य को स्वीकार किया वरन् इसे हम साधारण ढग से विचारधारा में आया हुआ परिवर्तन मान सकते हें। महादेवी ने स्वीकार किया है'-'विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखा ही अच्छा लगता रहा है, क्योकि उसमें अपनी अनुभूति ही नही बाह्य परिस्थितियो के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।[5] ऐसा भी नही था कि गद्य के क्षेत्र में महादेवी का यह आकस्मिक प्रवेश हो वरन् उनका पहला सामाजिक निबन्ध तभी लिखा जा चुका था जब वे सातवी कक्षा की छात्रा थी। महादेवी स्वय स्वीकार करती है कि 'अत जीवन की वास्तविकता से मेरा परिचय कुछ नवीन नहीं है।'[6] साहित्य-सर्जना के सम्बन्ध मे अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए वे लिखती हैं-'मेरे सम्पूर्ण मानसिक विकास मे उस बुद्धि प्रसूत चिन्तन का भी विशेष महत्व है, जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओ के अध्ययन में गति पाता रहा है। अनेक सामाजिक रूढ़ियो मे दबे हुए, निर्जीव सस्कारों का भार ढोते हुए और विविध विषमताओ में साँस लेने का भी अवकाश न पाते हुए जीवन के ज्ञान ने मेरे भाव-जगत की वेदना को गहराई और जीवन को क्रिया दी है। उसके बौद्धिक निरूपण के लिए गद्य को स्वीकार किया।[7]

महादेवी वर्मा की विचारधारा में आए हुए परिवर्तन का ही परिणाम है कि जीवन की दृष्टि से बहुधन्धी होने के कारण वे एकान्त काव्य साधना करने को व्यर्थ मानती हैं। उन्हें भाव-जगत और विचार जगत दोनोसमान रूप से आकृष्ट करते हैं और इन दोनों से किसी एक में ही जीवन की पूर्णता पा लेने को वह पर्याप्त नही मानतीं। इसलिए महादेवी वर्मा ने भिन्न-भिन्न कार्य क्षेत्रों का निर्धारण किया है- वे लिखती हैं कि 'विशाल साहित्यिक परिवार के हर्ष शोक मेरे अपने हैं, परन्तु उससे बाहर खड़े व्यक्तियों की सुख-दुख कथा भी मुझे पराई नहीं लगती। अपने सुशिक्षित, सुसस्कृत विद्यार्थियों से साहित्यालोचन करके मुझे प्रसन्नता होती है, परन्तु अपने मलिन दुर्बल जिज्ञासुओं को वर्णमाला पढ़ाने में मुझे कम सुख नहीं मिलता।[8]

महादेवी को गद्य लेखन की ओर प्रेरित करने के लिए एक अन्य दृष्टिकोण, जिसकी ओर हमारा ध्यान जाता है वह है-'गद्य कविनाम् निकष वदन्ति।' अर्थात किसी भी कवि की काव्यप्रतिभा की सच्ची परख उसके गद्यात्मक कौशल से होती है। इस पक्ति को आधार बनाकर तत्कालीन आलोचको ने महादेवी की आलोचना भी की जो उनकी काव्य प्रतिभा के नित नये आयाम देखकर चमत्कृत हो रहे थे और स्वय को उसकी उचित समीक्षा करने मे असमर्थ पा रहे थे। महादेवी ने अपनी गद्य कृतियो द्वारा हिन्दी साहित्य जगत में एक युगान्तर उपस्थित किया। यद्यपि वे स्वय इस कसौटी की उपयुक्त नही मानती। वे लिखती है कि "हमारे यहाँ कहा गया है कि गद्य कवि का निकष है-'गद्य कविनाम् निकष वदन्ति।' कवि के लिए उन्होने गद्य को कविता की कसौटी निश्चित किया है। यह मेरे विचार मे बहुत उचित नही जान पड़ता, क्योंकि कविता से गद्य का कोई सीधा सबध नही है और अच्छा कवि होने के लिए कवि अच्छा गद्यकार हो, यह भी आवश्यक नही है। इस कसौटी को यदि हम भी प्रमुख न माने तो भी महादेवी वर्मा ने ओज से भरे हुए विचारपूर्ण और चिन्तन प्रधान लेखो द्वारा जो कुछ भी कहा अथवा लिखा, वह दशकों का व्यवधान पार करने के बाद आज भी इतना अधिक प्रासगिक है कि हम जब भी उनक गद्य साहित्य का अध्ययन करने बैठते है तो आश्चर्य होता है कि कैसे महादेवी उस युग मे रहकर भी अपने युग से इतना आगे बढ चुकी थी। या फिर निर्मला जैन के शब्दों को उधर लेकर कहें- कि 'महादेवी अपने समय से बहुत आगे थी या हम अपने समय से बहुत पिछडे हुए हैं।'[10]

काव्य से गद्य का अन्तर

जिस समय महादेवी वर्मा ने 'अतीत के चलचित्र' की रचना के साथ गद्य के क्षेत्र मे प्रवेश किया, तब तक काव्यक्षेत्र में छायावादी प्रवृत्तियों का युग समाप्त हो चुका था। सभी प्रमुख छायावादी कवि अपनी रचनाओ में छायावाद की प्रवृत्तियों का पूर्णतया परित्याग कर चुके थे और प्रगतिशीलता तथा जनोन्मुखता से सम्बन्धित प्रवृत्तियों को अपनी रचनाओं में प्रश्रय देने लगे थे। ऐसे में यद्यपि महादेवी वर्मा ने छायावाद को तो नहीं छोड़ा। वे लिखती हैं कि 'मुझसे जहाँ ठहरा गया, वहाँ मैं ठहरी। मैंने प्रयत्न भी नहीं किया कि लोग मुझको प्रगतिशील माने या न माने यह चिता मैंने कभी नहीं की।[12] लेकिन उनके गद्य साहित्य में यथार्थवादी विशेषताएँ पूरी तरह से झलकती हैं। काव्य क्षेत्र मे जहाँ वे छायावाद के काल्पनिक जगत में विचरण करती रही थी, वही गद्य में वे यथार्थ की ठोस भूमि पर उतर आती हैं। काव्य में जहाँ वैयक्तिता का प्राधान्य है, वहीं गद्य मे पूर्ण रूप से उन पर सामाजिकता हावी हो जाती है। गद्य साहित्य के अन्तर्गत हमें महादेवी वर्मा के काव्य से सर्वथा भिन्न, एक नये रूप के दर्शन होते हैं, जो समाज में व्याप्त असमानताओं और विषमताओं को देखकर पूर्णतया विद्रोही हो जाता है। उन्होंने दीन-हीन शोषित, उत्पीड़ित और कठोर परिश्रम के द्वारा

अपनी जीविका चलाने वाले सामान्य जन को अपनी सहानुभूति तथा करूणा का पात्र बनाया है। इस वर्ग के प्रति अन्याय होता देखकर वे असहिष्णु हो जाती हे ओर उसका प्रतिकार करते हुए, समाज का उच्च वर्ग, जो इस अन्याय के लिए उत्तरदायी है, उसके प्रति उनकी गद्य रचनाओ मे तीव्र आक्रोश और व्यग्य अभिव्यक्त होता है। महादेवी वर्मा का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व, जो उनके काव्य मे चारो ओर व्याप्त दिखाई देता है, उनके गद्य मे वही व्यक्तित्व पूर्णतया बहिष्कृत हो जाता है ओर उनकी अन्तर्मुखी वृत्तियाँ बहिर्मुखी होकर सामाजिक असगतियो और विद्रूपताओं को गद्य मे व्यक्त करती है। सूर्य प्रसाद दीक्षित लिखते हैं कि 'महादेवी जी प्रारम्भिक रूप से कवि है और शनै शनै क्रमश प्रोढता के विकास के साथ नम्र पथ पर उतरती जाती हैं। भाव से विचार, हार्दिकता से बौद्धिकता और राग से दर्शन की बुद्धि के साथ गद्य लेखन मे वह अधिकाधिक प्रवृत्त होती हैं।'' [13]

महादेवी वर्मा ने काव्य और गद्य को दो भिन्न-भिन्न विचारभूमि मे स्थित माना है। उन्होने गद्य के लिए तर्कशक्ति का होना अनिवार्य माना है क्योकि तर्क के माध्यम से ही हम दूसरे मे यह विश्वास उत्पन्न करते हैं कि वह हमारे द्वारा लिखे हुए को सही माने और उसका प्रत्युत्तर दे सके। जबकि कविता मे तो तर्क की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि उसमें प्रतिउत्तर ही नही देना होता और यदि ऐसा किया जाता तो ऐसा करने पर वह कविता न रहकर 'पैरोडी' बन जाएगी। गद्य लिखने से पूर्व महादेवी उस विषय पर पूर्ण रूप से विचार करती हैं कि इस विषय को प्रामाणिक बनाने के लिए कौन-कौन से तर्क देने चाहिए। जबकि कविता मे वे अपने-आपको बिल्कुल आत्मसात कर लेती हैं। गद्य साहित्य के अन्तर्गत विद्यमान निबन्ध विधा मे यह प्रक्रिया पूरे वेग से मिलती है। उसमें विषय कठिन होने पर शोधकार्य भी करना पड़ता है गहराई से विचारविमर्श करना पड़ता है और तटस्थ होकर लिखना पड़ता है और सस्मरण मे प्रयुक्त गद्य को वे कविता की कोटि में पहुँचा हुआ मानती हैं। यहाँ तक कि महादेवी सस्मरण को अपनी कविता के लिए कसौटी भी मानती हैं। महादेवी का मानना है कि किसी दुखी मनुष्य की आँखों से गिरा एक बूँद आसू शीघ्र ही उस व्यक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित कर देता है और उसकी अभिव्यक्ति वे गद्य मे कर देती है लेकिन कविता में वह यथार्थ को नहीं दर्शा पाती क्योंकि उनके लिए कविता आत्मा की अभिव्यक्ति है। उन्होने स्वीकार किया है कि -'हाँ गद्य मे कुछ और कहती हूँ। पद्य में वह न कहूँ, यानी वही बात कहूँ जो गद्य में कहती हूँ तो मुझे बल नही मिलेगा। मेरा अतर्जगत दूसरे प्रकार का है। वह दूसरी अभिव्यक्ति चाहता है।' [14]

महादेवी की काव्य रचनाओं का अध्ययन करने के बाद यदि कोई उनकी गद्य रचनाओं का अध्ययन करे तो सहसा उसे विश्वास ही नहीं होगा कि इन दोनों माध्यमों के द्वारा साहित्य को समृद्ध बनाने वाली महादेवी एक ही हैं। अपनी कविताओं में वे कल्पना लोक में निवास करने वाली लगती हैं। वेदना, विरह, मिलन, प्रेम आदि ही उनके काव्य विषय नजर आते हैं। काव्य में वे लिखती हैं कि

पर शेष नही होगी यह
मेरे प्राणो की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा मे ढूँढ़ा
तुममे ढूँढूँगी पीड़ा।'[15]

अथवा

'मिलन का मत नाम ले, मै विरह मे चिर हूँ।'[16]

वही गद्य मे भी वेदना ओर पीडा का असीम साम्राज्य विद्यमान है लेकिन वह वेदना और पीड़ा महादेवी की स्वय की वेदना नही है वरन् समाज के दीन-हीन शोषित जन की वेदना ओर पीडा है जिसे अपनी करूणा और सहानुभूति का आश्रय देकर वे स्वर देती हैं। रामा, सबिया, गुँगिया, बाल विधवा, भाभी, बिन्दा, बिट्टो आदि पात्रों की वेदना ने उनके मन मस्तिष्क मे गहरा प्रभाव डाला है। पुरूष के व्यभिचार का शिकार हुई एक बाल विधवा की हीन दशा को देश कर वह आक्रोश मे भरकर पुकार उठती हें-'यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद मे लेकर साहस से कह सके कि 'बर्बरो तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देगी' तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावे। जो समाज उन्हे वीरता, साहस और त्याग भरे मातृत्व के साथ नही स्वीकार कर सकता, क्या वह इनकी कायरता और दैन्य भरी मूर्ति को ऊँचे सिहासन पर प्रतिष्ठित कर पूजेगा? युगो से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिए नही, सहनशक्ति के लिए ही दण्ड देता आ रहा है।'[17]

काव्य मे महादेवी ने अपने भावो की अभिव्यक्ति के लिए अज्ञात, अव्यक्त प्रियतम को आलम्बन के रूप में ग्रहण किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

कौन तुम मेरे ह्रदय मे?[18]

अथवा

तुम मुझमे प्रिय! फिर परिचय क्या?[19]

वहीं गद्य में वे समाज की जागरूक नागरिक बनकर उसमें विद्यमान समस्याओ की ओर उन्मुख होती हैं। भक्तिन, पर्वत कन्या लछमा, ब्राह्मण वधू बूटा और चीनी फेरी वाला आदि के चित्राकन द्वारा ग्रामीण समाज में व्याप्त विषमताओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। और इस पुरुष प्रधान समाज में नारी पर होने वाले अत्याचारों को अपना निशाना बनाती हैं। परिश्रमी बूटा के लिए ग्रामीण समाज द्वारा की गई

आपत्तियो पर व्यग्य करती हुई वे लिखती है- "परिश्रमी के तप मे पली यह नारी यदि भिक्षाजीवी ब्राह्मणत्व से मिट्टी ढोने को अच्छा समझती है, तो यह उसकी व्यक्तिगत विवशता है। किन्तु लीक-लीक चलने वाला समाज यदि ऐसे आडम्बरों को निरकुश बहने दे तो उसकी एक लीक भी बच सके। इसी से मजदूरिन ब्राह्मण वधू ब्रह्म तेज सम्पन्न भिक्षुक समाज की आँख की किरकिरी है।[20] गद्य मे महादेवी अपने चारो ओर विद्यमान और परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक जागरूक हैं। काव्य मे विद्यमान आत्मगोपनता की प्रवृत्ति गद्य मे आकर पूर्णतया विलीन हो जाती हैं और वे एक जागरूक सामाजिक के समान समाज की सारी गतिविधियो मे हिस्सा लेती हैं, उसकी आलोचना भी करती हैं और उसमे विद्यमान समस्याओ का समाधान करने का प्रयास भी करती है।

महादेवी वर्मा का गद्य साहित्स और पद्य साहित्य एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी नही हैं जैसा कि प्रथम दृष्टि मे देखने पर लगता है वरन् उसका गहन अनुशीलन करने पर वे एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। दोनो मे ही उनका व्यक्तित्व समाया हुआ है। काव्य में जहाँ उनके व्यक्तित्व का अन्तर्मुखी रूप प्रतिबिम्बित होता है वही गद्य में उनके बहिर्मुखी रूप के दर्शन होते हैं। जिसने महादेवी के काव्य रचनाओं मे केवल दुख पीड़ा, वेदना का ही साम्राज्य देखा है, वह जब उनके गद्य साहित्य-क्षत्र मे प्रवेश करता है तो यहाँ उनकी चिन्तनशील दृष्टि, आक्रोशपूर्ण विचारों को देखकर आश्चर्यचकित हो उठता है, क्योकि उनके ये दोनो रूप पूर्णतया भिन्न नजर आते हैं। ओंकार शरद भी इस भिन्नता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखते हैं कि -"कवि रूप में महादेवी जितनी कोमल, करूण और पीड़ित दिखाई पड़ती है, गद्यकार के रूप मे वे उतनी ही चट्टानी, प्रखर, ओजस्वी और उग्र हैं। महादेवी का काव्य जहाँ पाठक को पीड़ा लोक में ले जाकर थपकियाँ देकर सुलाने का प्रयास करता है, वही उनका गद्य मुरदे में कफन फाड़कर उठ बैठने की शक्ति सचारित करता है।[21]

गद्य की विविध विधाएँ-

काव्य विधा को विराम देने के उपरान्त महादेवी वर्मा के साहित्य का दूसरा चरण सस्करण और रेखाचित्रो के माध्यम के द्वारा शुरू होता है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा लिखे गये आलोचनात्मक और विचारात्मक निबन्ध, ललित निबन्ध, विभिन्न जीविकाओं के सम्पादकीय लेख तथा काव्य ग्रन्थों की भूमिकाओ के रूप में लिखा गया गद्य भी महत्वपूर्ण है और साथ ही एक नयी विधा भी है, 'जिसका उपयुक्त नामकरण होने में अभी समय लगेगा।' महादेवी की गद्य रचनाओं में 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'शृखला की कड़िया', 'पथ के साथी', 'मेरा परिवार', 'साहित्यकार की आस्था' तथा अन्य निबन्ध', 'क्षणदा' आदि प्रमुख हैं। जिसमें 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' में उनके विचारात्मक तथा आलोचनात्मक

निबन्ध सग्रहीत हैं और 'क्षणदा' ललित निबन्धो का सग्रह हे। लेकिन उनकी प्रारम्भिक गद्य कृतियों 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी' और 'शृखला की कड़ियाँ' को किस विधा के अन्तर्गत रखा जाय, इसे लेकर विद्वानों मे पर्याप्त वाद-विवाद हुआ है। कुछ इन्हे रेखाचित्र मानते हैं और कुछ इनको सस्मरण विधा के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं। विद्वानो का एक वर्ग इसमे सस्मरण और रेखाचित्र दोनो की विशेषतायें समाहित मानते हैं। आखिरकार सस्मरण और रेखाचित्र क्या हे? इसका एक सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

रेखाचित्र-रेखाचित्र शब्द अग्रेजी के स्केच (Sketch) का हिन्दी रूपान्तर है, जो दो शब्दो के योग से बना है- रेखा और चित्र। जिस प्रकार चित्रकला मे चित्रकार टेढी मेढी रेखाओ के सहारे एक सुन्दर सजीव चित्र खड़ा कर देता है, उसी प्रकार साहित्य मे जब लेखक कुछ गिने चुने शब्दो द्वारा वर्णित विषय का भावपूर्ण अकन करके उसके स्वरूप को उदघाटित करता है, तो उसे रेखाचित्र कहते हैं। 'शब्द रेखाओ द्वारा अकित चित्र ही रेखाचित्र कहलाता है।[22] डा विश्वनाथ शुक्ल ने रेखाचित्र को परिभाषित करते हुए लिखा है-'रेखाचित्र शब्दों के माध्यम से की गई फोटोग्राफी है।'[23] रेखाचित्र मे साहित्यकार सर्वाधिक उपयुक्त शब्दो के द्वारा व्यग्यात्मक उक्ति वैचित्य तथा काव्यात्मक ढग से वर्ण्य विषय का ऐसा वर्णन करता है कि पढने वाले के नेत्रो के सम्मुख उस वस्तु का बिम्ब ही उपस्थित हो जाता है। लेकिन रेखाचित्रकार के लिए आवश्यक है कि उसकी दृष्टि सूक्ष्म, पर्यवेक्षण मे निपुण और मर्म को ग्रहण करने वाली हो क्योकि तभी वह कम से कम शब्दो मे सजीव रूप-विधान तथा छोटे से छोटे वाक्य के अधिक से अधिक तीव्र और मर्म स्पर्शी भाव व्यजना कर सकता है। रेखाचित्र में पात्र का भावपूर्ण अकन से रेखा चित्रकार की भी कलात्म्क एव वैयक्तिक विशिष्टता प्रकट होती है क्योंकि रेखाचित्रकार द्वारा एक ही पात्र का वर्णन हमारे हृदय मे जुगुप्सा और घृणा भी उत्पन्न कर सकता है तो दूसरे रेखाचित्रकार द्वारा उसी पात्र का अकन करूणा एव सहानुभूति को भी जाग्रत कर सकता है ओर ऐसा करना वर्णन की विशेष प्रणाली पर ही निर्भर करता है। डा नगेन्द्र रेखाचित्र शब्द को ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त करते हैं जिसमें मूर्त रूप में रेखाएँ हों। कथानक का उतारचढ़ाव न हो और तथ्यों का उद्घाटन मात्र हो। पूर्व आयोजन अथवा आयोजित विकास न हो। रेखाचित्र में तथ्य खुलते जाते हैं, सयोजित नहीं होते। रेखाचित्र के लिए घटना का होना जरूरी है क्योकि रेखाचित्र घटना का भराव वहन नहीं कर सकता।

सस्मरण-सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य अपने जीवन में अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है लेकिन उनमें से कुछ ही हमारे ऊपर अपना गहन प्रभाव छोड़ पाते हैं, और वह हमारी स्मृति में सुरक्षित रह जाता है। इस स्मृति में अपने जीवन की घटनाएँ भी शामिल रहती हैं। साहित्य में वर्णित होकर यही स्मृतियाँ सस्मरण का रूप धारण कर लेती हैं। संस्मरण शब्द अंग्रेजी के memoirs का हिन्दी रूपान्तर है

लेकिन memoirs मे ऐतिहासिक, महान और प्रसिद्ध पात्रो को ही चित्रण का विषय बनाया जाता है। वही सस्मरण विधा मे ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही होता। समाज मे रहने वाले उपेक्षित, दीन-हीन जन को भी सस्मरण का विषय बनाया जा सकता है। सस्मरण मे घटना अथवा पात्रो का स्वतन्त्र अस्तित्व नही रहता वरन् इसमे सस्मरणकार की भावनाओ और प्रतिक्रियाओ का अवश्य प्रमुख स्थान रहता है। सस्मरण लिखने के लिए उस पात्र के साथ आत्मीयता प्रमुख शर्त है। सस्मरण काव्य की कोटि मे भी आ जाता है। यह स्वान्त सुखाय ही लिखा जाता है। सस्मरण और कविता मे समानधर्मी तत्व अनुभूति की गहन तीव्रता है लेकिन दोनों मे अन्तर अभिव्यक्ति का है। अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति गद्य के माध्यम से सस्मरण मे होती है। सस्मरण मे सस्मरणकार उन क्षणो को शब्दो मे व्यक्त करता है, जिन्हे उसने स्वय जिया है। गोविन्द त्रिगुणायत ने सस्मरण को परिभाषित करते हुए लिखा-"भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियो मे से कुछ रमणीय अनुभूतियो को अपनी कोमल कल्पना से अतिरजित कर व्यजनामूलक सकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओ से विशिष्ट कर रोचक ढग से यथार्थ रूप मे व्यक्त कर देता है, तब उसे सस्मरण कहते हैं।"[24]

महादेवी वर्मा रेखाचित्र शब्द की व्युत्पत्ति और उसके अर्थ का विस्तार चित्रकला के क्षेत्र से हुआ मानती हैं जहाँ पर रेखाओं द्वारा अकित किया गया चित्र रग और छायालोक से भिन्न किसी वस्तु या व्यक्ति की विशेषताओ का ज्ञान कराता है और सस्मरण मे हमारी स्मृति, अपनी निरीक्षण शक्ति धारणा और प्रत्यभिज्ञान आदि के माध्यम से हमारे अनुभवो मे स्थिर अव्यक्त सस्कारों का पुनर्निमाण इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं कि वह देश काल की सीमा से भी परे हो जाता है। महादेवी वर्मा सस्मरण और रेखाचित्र मे बहुत सूक्ष्म अन्तर मानती है लेकिन फिर भी यह अन्तर इतना तो अवश्य है कि पाठक दोनो को अलग-अलग पहचान सकता है। रेखाचित्र मे वर्णित घटना हमारी स्मृति मे सुरक्षित ही रहे, यह आवश्यक नहीं है जबकि सस्मरण पूर्णरूपेण स्मृति पर निर्भर रहने के कारण उससे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहते हैं। सस्मरण में वर्णित पात्र का लेखक से घनिष्ठ परिचय होना आवश्यक है। रेखाचित्र लिखते समय लेखक तटस्थ भी हो सकता है लेकिन सस्मरण मे तटस्थता के लिए कोई स्थान नहीं है। महादेवी सस्मरण के सम्बन्ध मे लिखती हैं कि "हम यदि किसी से प्रगाढ़ और आत्मीय परिचय रखते तो उस व्यक्ति को अनेक मनोवृत्तियों तथा उनके अनुसार आचरण करते देखना भी सहज हो जाता है और अपनी प्रतिक्रिया की स्थिति रखना भी स्वाभाविक हो जाता है। इन्हीं क्षणों का सुखद या दुखद प्रत्यावर्तन सस्मरण कहा जा सकता है।"[25]

आलोचकों द्वारा उठाया गया विधा का प्रश्न-

सस्मरण और रेखाचित्र की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर डा. वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' को सस्मरण मानते हैं। उन्होंने लिखा है-'अतीत के चलचित्र में महादेवी

वर्मा ने समय-समय पर अपने सम्पर्क से उसके चिन्तन को दिशा ओर सवेदन को गति देने वाले व्यक्तियो के विषय में सस्मरण लिखे हैं।'[26] इन स्मृति चित्रो मे महादेवी का जीवन भी अनायास ही सग्रथित हो गया है। 'स्मृति की रेखाएँ' मे महादेवी का व्यक्तित्व इतना अधिक उसके पात्रो के साथ घुल मिल गया है कि वह आत्मकथा जैसा भी लगने लगता है। इन दोनो को वे रेखाचित्र कहा जाना स्वीकार नही करते। उन्होने स्पष्ट लिखा है कि "मुझको यह सस्मरण ही अधिक प्रतीत हुए है रेखा-चित्र कम क्योकि उनमे महादेवी का अपना व्यक्तित्व इस सीमा तक गुँथा हुआ है कि आत्मकथा की सीमा तक पहुँच गया है।[27] लेकिन बाद मे वे इन्हे रेखाचित्र कहकर सम्बोधित करते हैं जो व्यक्तिपरक अधिक हैं, वस्तुपरक कम वे लिखते है कि हर कथा मे महादेवी केवल मूक दर्शक नही हैं बल्कि कभी वह सूत्रधार हैं तो कभी कोई अभिनेता, जिसके अभाव मे रेखाचित्र का रूप निर्माण असम्भव हो जाता।[28] लेकिन 'पथ के साथी' को वे पूरी तरह से रेखाचित्र की कोटि में परिगणित करते हैं, जिसमे रवीन्द्र नाथ टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पत और सियाराम शरण गुप्त के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का ज्ञान सस्मरणात्मक रूप में दिया गया है। विषय वस्तु की दृष्टि से ये सभी रेखाचित्र एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। रचनाशैली की दृष्टि से 'पथ के साथ' की एक विशेषता की ओर वह हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखते हैं कि 'जहाँ महादेवी के अन्य रेखाचित्रो मे कथातत्व की अतिशयता के कारण सस्मरण अथवा कहानी का भ्रम होता है, वहाँ ये रेखाचित्र इस दोष से मुक्त है।"[29] वीरेन्द्र कुमार बडसू वाला ने इन्हे बिखरे हुए स्मृतिचित्र माना है जिन्हे एक साथ रखकर रेखाचित्र की सख्या दे दी गई है। एक स्थान पर वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला 'पथ के साथी' को ललित निबन्ध कला कहा जाना भी उपयुक्त मानते हैं।

माधवी राजगोपाल ने भी 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' को सस्मरण तथा 'पथ के साथी' को रेखाचित्र की सज्ञा देना स्वीकार किया है। यद्यपि वे मानती है कि कुछ विद्वानों ने 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' को रेखाचित्र की सज्ञा दी है लेकिन यह मूल रूप मे सस्मरण ही हैं क्योंकि वे लिखती है कि 'इनमें महादेवी जी का अपना जीवन भी आ गया है तथा इन पात्रो से आपका सम्बन्ध भी दृष्टिगोचर होता है।'[30] 'पथ के साथी' को रेखाचित्र के रूप में स्वीकार करते हुए वे लिखती हैं कि "आपने अपने पथ अर्थात साहित्यपथ के छ साथियों का रेखाचित्र प्रस्तुत पुस्तक में खींचा है तथा प्रणाम के रूप में कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर का रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। इन सभी कलाकारों से वे प्रत्यक्ष रूप से परिचित हैं। अत इनके रेखाचित्रों में एक निजत्व का भाव आ जाना स्वाभाविक है। परन्तु प्रशसनीय बात यह है कि निजता के आने पर भी यह रेखाचित्र ही रहा है, सस्मरण नहीं बना है।"[31] अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' को वे सस्मरण ही मानती हैं और लिखती हैं कि 'कुछ लोग आपकी 'स्मृति की रेखाएँ' तथा 'अतीत के चलचित्र' नामक दो पुस्तकों को भी रेखाचित्र मानते हैं, परन्तु इनको मैं सस्मरण ही समझती हूँ।'[32]

चरनसखी शर्मा ने महादेवी के सम्पूर्ण गद्य साहित्य को दो भागो मे विभाजित किया है- (1) विचारात्मक गद्य। (2) सस्मरणात्मक गद्य। विचारात्मक गद्य के अन्तर्गत शृखला की कड़ियाँ, क्षणदा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध आदि आते हैं, वही सस्मरणात्मक गद्य के अन्तर्गत उन्होंने 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' तथा 'क्षणदा' मे सग्रहीत दो यात्रा सस्मरण 'स्वर्ग का एक कोना' तथा 'सुई दे रानी' को परिगणित किया है। यद्यपि अन्य विद्वानो द्वारा इन्हे रेखाचित्र की सज्ञा दिये जाने को वे उपयुक्त नही मानती। उन्होने लिखा है-'महादेवी प्रमुखत कवियित्री हैं, इसलिए उनके सस्मरणो में चित्रात्मकता स्वय ही आस्यूत हो गई हैं, उनको रेखाचित्र कहना भ्रम मे डालना है।'[33]

डा विजय प्रकाश उपाध्याय ने महादेवी के गद्य को दो भागो मे बाटा है-1 बुद्धि वृत्ति प्रधान गद्य। 2 बुद्धिवृत्ति तथा हृदय वृत्ति का सामजस्य प्रधान गद्य। प्रथम के अन्तर्गत उन्होने 'शृखला की कड़ियाँ', 'क्षणदा', 'साहित्यकार की आस्था', 'विवेचनात्मक गद्य', 'सकल्पिता', व अन्य निबन्ध को रखा है।' 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी' और 'मेरा परिवार' को वे द्वितीय कोटि मे रखते हैं और उन्हे सस्मरणात्मक रेखाचित्र की सज्ञा देते हैं। वे लिखते हैं कि 'ये सस्मरणात्मक रेखाचित्र नवीनता सम्पन्न भी है, यह रेखचित्र की विधा नवीन है, रेखाचित्रो के आधार पर नवीन दृष्टिकोण से चुने गए हें।[34]

गगा प्रसाद पाण्डेय महादेवी के सस्मरणो मे कहानी का भी कुछ अश देखते हैं। कहानी के लिऐ यथार्थता को अनिवार्य शर्त मानते हैं और सस्मरण मे यर्थाथता का तत्व अनायास ही आ जाता है। वे लिखते हैं कि 'महादेवी के सस्मरणो की यथार्थता को यदि स्वाभाविक कहा जाय तो अधिक अच्छा हो क्योकि उनके यथार्थ पर आदर्श उसी प्रकार स्थापित है, जिस प्रकार पृथ्वी पर आकाश। महादेवी ने अपनी समवेदना शक्ति से उसे एक नवीन गति दी है। इन सभी कहानियो में करूणा का एक अबाध स्रोत है, पीड़ितो और उपेक्षितों के प्रति हार्दिक समवेदना है, मनुष्यत्व को जगा देने की कामना है और है, विश्व कल्याण की एक भावना।'[35] 'अतीत के चलचित्र' को वे महादेवी वर्मा की सस्मरणात्मक कहानियो का सग्रह मानते हैं।

गोपाल कृष्ण कौल ने 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' को रेखाचित्र माना है, जिसमें महादेवी के जीवन का प्रतिबिम्ब भी मिलता है और उसमें महादेवी के समय के सामाजिक परिवेश और जनजीवन को भी विशिष्ट स्थान मिला है। वे स्वीकार करते हैं कि यद्यपि स्मृति की रेखाएँ, 'अतीत के चलचित्र' और 'पथ के साथी' में महादेवी के जीवन स्मरण भी निहित है, फिर भी उनमें रेखाचित्र के तत्व ही अधिक हैं। वे लिखते हैं कि "उनके रेखाचित्रों के पात्र ऐतिहासिक महापुरुष नहीं बल्कि भारतीय जनजीवन के वे कुरूप चित्र हैं जो कुछ तो अशिक्षा और शोषण से दीन और सरल बन गए हैं और कुछ महादेवी की ममता और करूणापूर्ण सहानुभूति से। दलित और पिछड़ा हुआ मानकर जिन व्यक्तित्वों की हम

उपेक्षा कर देते है, महादेवी ने अपनी विराट सहानुभूति के सहारे उनका अतरग अध्ययन कर इन रेखाचित्रो में प्रस्तुत किया है।'[36]

गोविन्द त्रिगुणायत ने महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' ओर 'शृखला की कड़ियाँ' में रेखाचित्र, कहानी और सस्मरण तीनो के ही तत्वो का समावेश माना है लेकिन मुख्य रूप से यह रेखाचित्र ही है। वे लिखते हैं कि हिन्दी की भावुक कवियित्री ने कुछ सुन्दर रेखाचित्र भी लिखे हें, जो सस्मरणात्मक कहानियों का आनन्द देते हैं। इनके रेखाचित्र 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', और 'शृखला की कडियाँ' नामक सग्रहो मे सग्रहीत है।'[37]

इसके अतिरिक्त तत्कालीन पत्र पत्रिकाओ में भी इस विवाद को पर्याप्त जगह मिली और अनेक लेखकों ने इन कृतियों की विधा का निर्धारण करने के लिए अपने लेख भी प्रकाशित करवाए। फरवरी, 1955 मे साहित्य सदेश मे प्रकाशित अपने लेख मे श्री आनन्द माधव मिश्र ने 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' को तो सस्मरण माना ही है। किन्तु 'शृखला की कड़ियाँ' को भी उन्होने सस्मरण विधा के अन्तर्गत स्वीकार किया है।

श्री ओंकार राही ने महादेवी पर लगाए गए अपार्थिकता, रहस्यमयता और अलौकिकता जैसे आरोपों को शान्त करने मे उनके रेखाचित्रो को समर्थ माना है। वे लिखते हैं कि 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' इसके गवाह हैं। 'दीपशिखा' की 'यदि मैं चित्र बना पाती' वाली भावना अब कल्पना और सम्भावना एव अविश्वास पर नही, विश्वास और निष्ठा पर आश्रित हो गई है। चित्र उनके निर्माण की क्रिया में नही है, अपितु पूर्ण हो चुके हैं और उनका स्वरूप करूणा के रगो से रजित होकर खिल उठा है।'[38] श्री ओकार राही ने महादेवी की गद्यकृतियों के विषय में उठे हुए वाद विवाद को शान्त करने का प्रयास करते हुए लिखा है-"उनके इन रेखाचित्रों से लोगों को संस्मरणों का भ्रम हो जाता है। कोई कहानी के तत्व ढूँढ़ता है, परन्तु सत्य तो यह है कि वे सभी कुछ हैं। अधिक स्पष्टीकरण के लिए यह कहा जा सकता है कि यदि 'शृखला की कड़ियाँ' 'सस्मरणात्मक निबन्ध हैं तो अवश्य ही उनके रेखाचित्र अपनी सस्मरणात्मक शैली में व्यक्तिगत निबन्धो के अधिक समीप हैं। कहानी का प्रवाह उनमें सर्वत्र हैं और व्यक्तित्व की छाप के कारण ममता और सहानुभूति उनमे बिखरी पड़ी हैं। इसी कारण वे अपने क्षेत्र के अन्य कलाकारों रामवृक्ष जी बेनीपुरी तथा बनारसीदास जी चतुर्वेदी की परम्परा से अलग हो गई हैं।"[39] श्री ओंकार राही ने 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' को रेखाचित्र की सज्ञा दी है। वे स्वीकार करते हैं कि यह मान्य है कि महादेवी के अब तीन रेखाचित्र सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं-'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', और 'पथ के साथी'। इनकी उत्कृष्टता पर कोई शका नहीं उठाई जा सकती है।'[40]

प्रकाश चन्द्र गुप्त अतीत के चलचित्र और स्मृति की रेखाएँ को ससमरण नही मानते ह। वरन् उनका मानना है कि इन दोनो गद्य कृतियो के माध्यम से महादेवी ने नए कलारूप के सृष्टि की हे। इसको वे सस्मरण और सामाजिक इतिहास का सम्मिश्रण मानते है। अपने लेख मे वे लिखते हे कि "इनको हम सस्मरण नही कह सकते क्योकि इनमे अहम्मन्यता का सर्वथा अभाव हे। क्योकि लेखिका के व्यक्तित्व ने इन चित्रो के चतुर्दिक अतीव घनिष्ठता और आत्मीयता का वातावरण बना रखा है। सस्मरण और सामाजिक इतिहास दोनो का सम्मिश्रण ये चित्र हैं।"[40 (1)]

श्री ध0 गो0 वेद ने अपने लेख मे 'अतीत के चलचित्र', और 'स्मृति की रेखाएँ' के साथ-साथ 'शृखला की कड़ियाँ' को भी सस्मरण माना है। अपने लेख मे वे लिखते है कि 'महादेवी के ये सस्मरण 'अतीत के चलचित्र', 'शृखला की कडियाँ' और 'स्मृति की रेखाएँ' इन तीन सग्रहों मे एकत्र किए गए हें। प्रत्येक सस्मरण रोचकपूर्ण अपने आप में अनोखी कहानी है। महादेवी वर्मा का पूरा चित्र आपके हृदय की कहानी है। महादेवी वर्मा का पूरा चित्र आपके हृदय की गठन, आत्मा की कम्पन और पूरा व्यक्तित्व सस्मरणो में अमिट सा छप गया है।'[41] उनके अनुसार यद्यपि 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' तो सस्मरण विधा के अन्तर्गत आते हैं लेकिन 'शृखला की कड़ियाँ' को किसी भी दृष्टिकोण से सस्मरण नही माना जा सकता है वरन् वह तो शुद्ध विचारात्मक निबन्धो की कोटि में आता है। जिसमे जड़ता की बेड़ियो मे जकडे हुए नारी जीवन की शृखला की कड़ियो को तोड़ने का प्रयास किया गया है।

डा कृष्ण कुमार शर्मा ने इस विवाद मे भाग लेते हुए इन कृतियों को सस्मरण ही माना है। अपने लेख में उन्होंने लिखा है कि, "कहीं-कहीं लेखको ने महादेवी के सस्मरणो को रेखाचित्र कह दिया है। वे रेखाचित्र नही हैं, सस्मरण ही हैं। महादेवी ने स्वय इन्हे सस्मरण और स्मृति चित्र ही कहा है। महादेवी जी चूँकि कवियित्री हैं और शब्द शिल्पी हैं, अतएव चित्रात्मकता इन सस्मरणो मे स्वय अनुस्यूत हो गई है। पात्र साकार हुए हैं, इतने से ही ये सस्मरण रेखाचित्र नहीं कहे जा सकते।"[42] वैसे तो कृष्ण कुमार शर्मा रेखाचित्र शब्द को ही उचित नहीं मानते और उनके स्थान पर 'शब्दचित्र' शब्द का प्रयोग करते हैं और यह मानते हैं कि सस्मरण को पूर्ण बनाने के लिए महादेवी शब्दचित्र को साधन के रूप में स्वीकार करती हैं।

सुश्री प्रा0 कु0 प्रेमलता ने इन कृतियों को न तो केवल रेखाचित्र माना है और न ही केवल सस्मरण। वरन् वे इसमें दोनो की विशेषतायें अनुस्यूत मानती हैं। उन्होंने रेखाचित्रों को तीन भागों मे विभाजित किया गया है। 1 सस्मरणात्मक, 2 कथात्मक, 3 रूपकात्मक। महादेवी के रेखाचित्रों को वे सस्मरण की कोटि मे रखती हैं। क्योंकि इनमें वर्णित सभी पात्रों को साथ महादेवी का आत्मीयता का सम्बन्ध रहा है। वे लिखती हैं कि "इस प्रकार पात्रों का कौशलपूर्ण रेखाकन जहाँ इन कृतियों को रेखाचित्रों की कोटि मे पहुँचा देता है

वहाँ उनमे उपलब्ध लेखिका के निजी राग विराग और क्षोभ-क्रोध की भावना उन्हे सस्मरण के निकट ले आती है। अत वे शुद्ध रूप से रेखाचित्र या सस्मरण न होकर सस्मरणात्मक रेखाचित्र बन गए है।"[43]

श्री रामशरण तिवारी ने अपने लेख मे 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' को सस्मरण माना है, जिनमे विशिष्ट वर्ग के नही वरन् सामान्य जन के सस्मरण सग्रहीत है। उनका मानना है कि "इन कृतियों में सस्मरण सकलित है, ये न तो धनी लोगो के हैं, न ऐसे लोगो के जिनकी समाज मे प्रतिष्ठा है। लेखिका ने ऐसे बहिष्कृत व्यक्तियो की स्मृति को रखा है जिन्हे दुनियाँ कूड़ा करकट समझ भूल जाया करती है। वे हैं सामान्य जन, समाज से एक प्रकार से निर्वासित निम्न वर्ग के लोग, मजदूर।"[44]

डा कुमारी प्रेमलता वर्मा ने अपने लेख मे 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' को रेखाचित्र की सज्ञा दी है।

इस सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट किया है कि यदि उपर्युक्त विवाद का शमन करने के लिए महादेवी की गद्य कृतियो के प्रारम्भ मे दी गई भूमिकाओं को दृष्टि मे रखा जाये तो पर्याप्त सीमा तक इस समस्या का समाधान हो जाता है। महादेवी ने स्पष्टत स्वीकार किया ह कि मेरे अधिकाश रेखाचित्र कहे जाने वाले शब्दचित्र सस्मरण की कोटि में ही आते हैं क्योकि किसी भी क्षणमात्र की झलक पाकर मैं उसके सम्बन्ध मे अपनी प्रतिक्रिया प्राय अपने लेखों मे व्यक्त कर देती हूँ। रेखाचित्र के लिए पात्रों का रेखाकन करते समय तटस्थता प्रमुख विशेषता मानी गई है और महादेवी के लिए यह सम्भव ही नही था कि वे अपने वर्णित पात्रों के विषय में तटस्थ रह सकें। अपने पात्रो के वर्णन में आत्मीयता के तत्व को वे प्रमुख स्थान देती हैं। वे स्वय मानती हैं कि उनके सस्मरणो में रेखाचित्र के कुछ तत्व अवश्य विद्यमान रहते हैं। वे स्वीकार करती हैं कि मेरे सस्मरणों मे रेखाचित्र भी सम्मिश्रित हो जाते है जिसका स्पष्ट कारण मेरा रेखाकन प्रेम ही कहा जायेगा। किसी भी प्रत्यक्ष या कल्पनाश्रित व्यक्ति या वस्तु को कुछ रेखाओ में आँकना मेरे लिए स्वाभाविक हो जाता है। यदि ऐसा रेखाकन सम्भव नहीं होता तो शब्दाकन अनिवार्य आवश्यकता बन जाता है। मेरे विचार में शब्दाकन के साथ यदि पूर्ण मनोयोग हो तो वे रेखाकन से अधिक प्रभावशाली हो सकता है। रेखाकन को इच्छानुसार परिवर्तित कर लेना देखने वाले के लिए सभव नहीं है। किन्तु शब्दाकन के प्रत्येक पाठक को अपने मनोजगत के अनुकूल ढालता बनाता रहता है।

'स्मृति की रेखाएँ' में मैंने दोनों का उपयोग किया था किन्तु आज भी मुझे उसके शब्दाकन ही प्रिय हैं।[45]

'अतीत के चलचित्र' को भी वे सस्मरण ही मानती हैं और इन सस्मरणों की रचना का श्रेय उन व्यक्तियों के सम्पर्क को देती है जिन्होंने उनके चिन्तन को दिशा और सवेदना को गति दी है। 'अतीत के

चलचित्र' की रचना का श्रेय वह एक वृद्ध सेवक को देते हुए लिखती ह कि "सन् 1930 मे उसी भृत्य को देखकर मुझे अपना बचपन और उसे अपनी ममता से घेरे हुए रामा इस तरह स्मरण आये कि अतीत की अधूरी कथा लिखने के लिए मन आकुल हो उठा। फिर धीरे-धीरे रामा का परिवार बढता गया और अतीत चित्रो मे वर्तमान के चित्र भी सम्मिलित होते गये। उद्देश्य केवल यही था कि जब समय अपनी तूलिका फेरकर इन अतीत चित्रो की चमक मिटा दे, तब इन सस्मरणो के धुधले आलोक मे में उन्हे फिर पहचान सकूँ।[46]

'पथ के साथी' को भी वे सस्मरण मानती है जिसमे अपने अग्रज ओर समकालीन साहित्यकारो के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व तथा अपने साथ उनके सम्बन्धो का विवेचन किया है। वे लिखती हैं कि "मेरा यह सौभाग्य रहा है कि अपने युग के विशिष्ट व्यक्तियो का मुझे साथ मिला और मैंने उन्हे निकट से देखने का अवसर पाया। उनके जीवन के तथा आचरित आदर्शों ने मुझे निरन्तर प्रभावित किया हे। उन्हें आशा-निराशा, जय-पराजय, सुख-दुख के अनेक क्षणो मे मैने देखा अवश्य, पर उनकी अडिग आस्था ने मुझ पर जीवन व्यापी प्रभाव छोड़ा है। उनके सम्बन्ध मे कुछ लिखना उनके अभिनदन से अधिक मेरा पर्व स्नान है।"[47]

'शृखला की कड़ियाँ' को महादेवी ने विचारात्मक निबन्ध के अन्तर्गत स्वीकार किया है। 'अपनी बात' के अन्तर्गत वे लिखती हैं कि "प्रस्तुत सग्रह मे कुछ ऐसे निबन्ध जा रहे हैं जिनमे मैंने भारतीय नारी की विषम परिस्थितियों को अनेक दृष्टि बिन्दुओं से देखने का प्रयास किया है। अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूँ, अत इन निबन्धों में उग्रता की गध स्वाभाविक है, परन्तु ध्वस के लिए ध्वस के सिद्धान्त मे मेरा कभी विश्वास नही रहा। मैं तो सृजन के उन प्रकाशतत्वों के प्रति निष्ठावान हूँ जिनकी उपस्थिति मे विकृति अन्धकार के समान विलीन हो जाती है।"[48]

स्पष्ट है कि 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेखाएँ और 'पथ के साथी' मूलरूप मे सस्मरण है जिसमे रेखाचित्र की भी विशेषताओं का भी समावेश है। इसी कारण विद्वान आलोचकों के मध्य इनकी विधा को लेकर भ्रम बना रहा। इनमें वर्णित पात्रों के साथ महादेवी की आत्मीयता इन कृतियों को सस्मरण के निकट ले आती हैं और इन सस्मरणों को प्रस्तुत करने की प्रणाली इन्हें रेखचित्र के समीप पहुँचा देती हैं। 'शृखला की कड़ियाँ' तो शुद्ध रूप से वैचारिक निबन्धों का सग्रह है।

महादेवी के संस्मरण और रेखाचित्र : अन्तर्वस्तु का विश्लेषण

छायावादी लेखक बीसवीं शताब्दी के नवजागरण काल से प्रभावित रहे हैं और उनके साहित्य के अधिकाश भाग में राष्ट्रीय आन्दोलन के तीव्रतम सघर्ष को ही वाणी मिली है। किन्तु परतन्त्र देश में उन्हें सघर्ष के ऐसे क्षणों में साहित्यकार का दायित्व और भी महान हो जाता है क्योंकि एक ओर तो वे अपने साहित्य

के माध्यम से देशवासियो के मध्य राष्ट्र प्रेम की ज्योति को भी प्रज्जवलित रखना है तो वही दूसरी ओर उसे सामाजिक विकास के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना है। ऐसी विषम परिस्थितियो मे घात प्रतिघातो के जो सघात उसके मन पर पड़ते हैं, उन्हे आत्मसात करके उन भावो को वह साहित्य मे अभिव्यक्त करता है। इस पृष्ठभूमि को यदि हम दृष्टि मे रखे तो महादेवी वर्मा की राष्ट्रीय आन्दोलन मे यद्यपि कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं दिखाई पडती लेकिन सामाजिक सचेतना को जाग्रत करने मे उनकी रचनाओ के योगदान को विस्मृत नही किया जा सकता। महादेवी के सस्मरणात्मक साहित्य मे उनका जीवन तो स्मृति चित्रो के रूप में आ ही गया है लेकिन तत्कालीन सामाजिक परिवेश ओर युगीन जनमानस की छटपटाहट को भी वाणी मिली है। आनन्द माधव मिश्र 'साहित्य सदेश' मे लिखते हैं कि "वह स्वय जनजीवन के निकट पहुँचती है और अपने पाठक को भी ले जाती हैं। पाठको की शिराओ मे चेतना भरकर यथार्थ जीवन मे झाँकने की शक्ति प्रदान करती हैं। वह यहीं पर रूक नही जाती, वरन् पूरे वेग से समाज की युग व्यवस्था को चुनौती देती है।"[49]

महादेवी वर्मा के काव्य मे पीडा का जो अथाह सागर लहराता हुआ दिखाई पड़ता है, उसका मूल उद्‌गम स्वय उनका अपना व्यक्तिगत जीवन न होकर समाज मे नारी की व्यथापूर्ण स्थिति और दीन-हीन दलित वर्ग के प्रति समान के उच्च वर्ग के उपेक्षित व्यवहार मे देखा जा सकता हे। नारी की स्थिति इतनी विचित्र है कि उसे सिर्फ अपने अपराध का ही नहीं वरन् पुरुष द्वारा किए जा रहे अपराधो का भी दण्ड सहना पड़ता है। नारी की ऐसी स्थिति ने महादेवी के सवेदनशील ह्रदय मे ऐसी पीड़ा भर दी, जो नासूर बन कर रह गई और इसी पीडा की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं मे हुई। महादेवी का सस्मरण साहित्य समाज मे नारी की हीन-दीन दशा के अनेक व्यथा एव आक्रोशपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है। तत्कालीन पत्रिका 'साहित्य सदेश' में एक टिप्पणी छपती है। "समाज के परम उपेक्षित तत्व ही उनके सस्मरणों की कड़ियाँ हैं, जिन पर उनकी कोमल करूण स्मृतियों का वितान तना है।'[50] अतीत के चलचित्र और स्मृति की रेखाएँ के ये नारी पात्र पुरुष प्रधान समाज की ह्रदयहीनता और निष्ठुरता के शिकार हैं। अतीत के चलचित्र के द्वितीय सस्मरण में विधवा का चित्रण है, जो वृद्धा होने की साधना मे निरन्तर लीन है- 'उस समाधि जैसे घर में लोहे के प्राचीन से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका- बिना किसी सगी साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद के, मानों निरन्तर वृद्धा होने की साधना में लीन थी।[51] इतना ही नहीं न तो वह रगीन कपड़े धारण कर सकती है, न दोनो समय भोजन ग्रहण कर सकती है और न ही कहीं आ जा सकती है क्योंकि ऐसा करना ही यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त था कि "उसका मन विधवा के सयम प्रधान जीवन से ऊब कर किसी विपरीत दिशा में जा रहा है।"[52] और उसके जीवन में सबसे कठिन तब आते थे जब उसकी ननद मायके आती थी क्योंकि उस ननद को वापस जाने पर भाभी के हाथों पर जलने के लम्बे काले निशान, पैरों पर नीले दाग आम बात थी। इस पात्र के साथ महादेवी का आत्मीय सम्बन्ध भी रहा था। अतः उसके कष्टपूर्ण जीवन को देखकर

उनका व्यथित होना स्वाभाविक था। वे लिखती हैं कि "उस 19 वर्ष की युवती की दयनीयता आज समझ पाती हूँ, जिसके जीवन के सुनहरे स्वप्न गुड़ियो के घरौंदे के समान दुर्दिन की वर्षा मे केवल वह ही नही गए, वरन् उसे इतना एकाकी छोड़ गए कि उन स्वप्नो की कथा कहना भी सम्भव नही हो सका।'[53] तृतीय सस्मरण के अन्तर्गत बिन्दा को केवल "अपराध का ही नही, वरन् अपराध के अभाव का भी दण्ड सहना पड़ता था।"[54] चौथा सस्मरण सबिया का है जो अशिक्षित तथा दीन-हीन होने पर भी बलिदान और उत्सर्ग की भावना से ओत-प्रोत है। पति द्वारा परित्यक्त होने पर भी वह पूरी निष्ठा से उसकी अधी माँ और दोनो बच्चो का पालन पोषण करती है। लेकिन महादेवी पुरुष द्वारा दिखाई गई ऐसी निष्ठुरता पर आक्रेश से भर कर कह उठती है "पुरुष भी विचित्र है। वह अपने छोटे से छोटे सुख के लिए स्त्री को बड़े से बड़ा दुख दे डालता है। और ऐसी निश्चिन्तता से मानो वह स्त्री को उसका प्राप्य ही दे रहा हो।"[55] बिट्टो के सस्मरण द्वारा महादेवी ने समाज में बाल विवाह और अनमेल विवाह की समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। तत्कालीन समाज मे एक तो कन्या का विवाह इतनी कम उम्र में कर दिया जाता था कि वह विवाह का मतलब भी नही समझती थी। और यदि ऐसे में वह विधवा हो जाये तो उसे केवल समाज में नही वरन् अपने परिवार मे भी अनेक लाछनों और यत्रणाओं को सहन करना पड़ता था, फिर विधवा का पुनर्विवाह तो और भी कठिन समस्या थी। ऐसी सामाजिक व्यवस्था और परम्परागत सस्कारो पर महादेवी ने तीखा व्यग्य किया है'-जिस समाज मे 64 वर्ष का व्यक्ति 14 वर्ष की पत्नी चाहता है वहाँ 32 वर्ष के बिट्टो के पुनर्विवाह की समस्या सुलझा लेना टेढी खीर थी। उसके भाग्य से ही 150 वर्ष की पूर्णायु वाला कोई पुरुष न मिला और उसके जन्म जन्मान्तर के अखण्ड पुण्य फल से हमारे 54 वर्ष के बाबा ने उसके उद्धार का बीड़ा उठाया।[56] एक अन्य सस्मरण में पुरुष के व्यभिचार का शिकार बाल विधवा का चित्रण है। महादेवी का हृदय ऐसे पुरुषों के प्रति आक्रोश से भर उठता है, जो नारी का उपभोग करने के बाद स्वय तो समाज मे बिना किसी की परवाह किए रहते हैं और नारी को अज्ञातवास क लिए मजबूर होना पड़ता है। यद्यपि मातृत्व नारी जीवन के लिए वरदान है और अपनी सन्तान को हृदय से लगाकर माता सारे ससार को चुनौती दे सकती है। इसलिए यह समाज सर्वप्रथम उसके बच्चे को ही अवैध घोषित कर देता है। महादेवी समाज में स्त्रियों की ऐसी दशा देखकर क्षुब्ध हो उठती है और यहीं पर उनकी विद्रोही वाणी मुखरित हो उठती है जो अपने में सामाजिक चेतना को भी परिव्याप्त किए रहती है लेकिन यह विद्रोह प्रतिशोध की भावना से प्रेरित नहीं है। वे लिखती हैं कि "यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद मे लेकर साहस से कह सकें कि बर्बरों, तुमने हमारा नारीत्व पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी, तो इनकी समस्यायें तुरन्त सुलझ जावें। जो समाज इन्हें वीरता, साहस और त्याग भरे मातृत्व के साथ नहीं स्वीकार कर सकता, क्या वह उनकी कायरता और दैन्य भरी मूर्ति को ऊँचे सिहासन पर प्रतिष्ठित कर पूजेगा? युगों से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिए नहीं सहन शक्ति के लिए ही दण्ड देता आ रहा है।"[57]

महादेवी ने अपने सस्मरणो मे वेश्याजीवन की समस्याओ को भी उठाया हे। समाज मे नारी यदि एक बार वेश्या नाम से सम्बोधित हो गई तो लाख प्रयत्न करने पर भी वह स्वय को इस शब्द से मुक्त नही कर सकती। वेश्या की सन्तान, जो वेश्या नही है, परन्तु माँ के वेश्या होने के कारण समाज द्वारा स्वीकार नही की जाती। महादेवी के सम्पर्क मे भी एक ऐसी नारी आती है, जो अपने ओर अपने पति के आत्म सम्मान के रक्षार्थ निरन्तर कटिबद्ध है लेकिन फिर भी समाज उसे किसी काम के उपयुक्त नही मानता और यहाँ तक कि महादेवी भी उसे काम देने के लिए उत्सुक नही जान पड़ती क्योकि वे जानती हे कि उसे एक बार काम पर रख लेने पर किस तरह की समस्यायें खड़ी हो जायेंगी। वे लिखती हैं कि "काम देने की बात स्मरण कर मेरे ओठो मे एक व्यग्य की हँसी आये बिना न रह सकी। वह क्या जाने कि उसकी उपस्थिति क्या-क्या अनर्थ कर सकती है।"[58] वेश्याओ के प्रति समाज के दृष्टिकोण को उजागर करती हुई वे लिखती हैं-"वह पतित कही जाने वाली माँ के पुत्री है और बिना समाज के प्रवेश पत्र के ही साध्वी स्त्रियो के मन्दिर में प्रवेश करना चाहती थी। उसे पता नही, समाज के पास वह जादू की छड़ी है, जिससे छूकर वह जिस स्त्री को सती कह देता है, केवल वही सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है।"[59] नारी की प्रवृत्ति सृजन की ओर उन्मुख होने की है, एक घर, पति और बच्चे के ही उसके जीवन की चाह है लेकिन समाज मे उसे इसका अधिकार भी नही देता। वे लिखती हैं कि-'समाज इन्हे न जाने कितने दीर्घ काल से कितने ही उपायो के द्वारा समझाता आ रहा है कि यह माता, पुत्री, पत्नी आदि त्रिगुणात्मक उपाधियो से रहित जीवन्मुक्त नारी मात्र है और उसकी इसी मुक्ति से समाज का कल्याण बधा हुआ है। फिर भी यदि यह अपने गुरु कर्तव्य से च्युत होकर पत्नीत्व, मातृत्व आदि सबधो को चुराती फिरें, तो समाज चुराई हुई वस्तु पर इनका स्वत्व स्वीकार करके क्या अपना विधान ही मिथ्या कर दे।"[60] नारी की सहनशीलता आदि गुणो का वर्णन रधिया के सस्मरण में किया गया है, जिसका पति बेहद गरीब है और जो स्वय उसके और बच्चों के लिए दोनो समय के भोजन की भी व्यवस्था नही कर सकता लेकिन फिर भी रधिया के मन में रोष की कोई भावना नहीं है। जिन वस्तुओं का उसका पति प्रबन्ध नहीं कर पाता, वह चीजें उसे अच्छी भी नहीं लगती। बेहद सहज भाव से इस बात को समझती है और अपनी तथा बच्चो की समस्याओं को पति से छुपाती रहती है। रधिया के सम्बन्ध में महादेवी का कथन है- "स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुन्दर है। जब वह इन विशेषताओं के साथ पुरुष के जीवन में प्रतिष्ठित होती है तब उसका रिक्त स्थान भर लेना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।"[61] अतीत के चलचित्र' का अतिम सस्मरण पर्वत कन्या लछमा का है जिसकी शादी एक ऐसे व्यक्ति से होती है जिसका मानसिक विकास अवरुद्ध हो चुका है। जेठ-जिठौतों के लिए परिश्रमी ओर बुद्धिमती बहू समस्या थी क्योंकि उन सबका मानना था कि "उसकी उपस्थिति में भाई की सम्पत्ति का प्रबन्ध करना भी आवश्यक हो जाता है ओर उसे आत्मसात करने की इच्छा रोकना भी अनिवार्य हो उठता है।"[62] लछमा जब

अपने अधिकार छोड़ने के लिए तैयार नही हुई है तो उसे इतना मारा-पीटा जाता है कि वह मरणासन्न अवस्था मे पहुँच जाती है। वह किसी तरह जान बचाकर अपने घर पहुँचती है और अपने भाई की गृहस्थी सभाल लेती है। उसे जीवित जानकर उसके ससुराल के सम्बन्धी लेने आते हैं तो वह किसी भी प्रकार से उनके साथ जाने को तैयार नही होती। स्त्रियो द्वारा ही लछमा पर अनेक मिथ्या आरोप भी लगाये जाते हैं। ऐसे मे महादेवी स्त्रियो को निष्ठुरता पर तीखा प्रहार करते हुए लिखती हैं-"एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहती।"[63]

'स्मृति की रेखाएँ' के प्रथम सस्करण मे भक्तिन के माध्यम से महादेवी ने ग्रामीण जीवन मे व्याप्त विषमताओ और पुरुष प्रधान समाज मे नारी पर होने वाले अत्याचारो को अपना लक्ष्य बनाया है। भक्तिन के दुर्भाग्य का उदय उसके जीवन के प्रारम्भ मे हो गया था, जो धीरे-धीरे निराशा के घोर अन्धकार की ओर बढता गया। उसका विाह पाँच वर्ष की आयु मे और गोना 9 वर्ष की आयु मे सम्पन्न हुआ लेकिन विवाह के पश्चात् भी उसे सुख की अपेक्षा दुख ही अधिक मिला। गेहुएँ रग और बटिया जैसे मुख वाली तीन कन्याओ का जन्म ही ससुराल मे उपेक्षा के लिए पर्याप्त था और उस पर असमय ही पति की मृत्यु हो जाने पर उसके जमीन और धन लेने के लिए षडयन्त्र भी प्रारम्भ हो गये। भक्तिन के पास विवाह के लिए प्रस्ताव भी भेजे गये लेकिन भक्तिन ने "गुरु से कान फुकवा, कण्ठी बाध और पति के नाम पर घी से चिकने केशो को समर्पित कर अपने कभी न टलने की घोषणा कर दी।"[64] लेकिन इस जीवन व्यापी प्रकोप से उसकी पुत्री न बच सकी और उसके रिश्तेदार उसकी बेटी के गले मे एक तीतरबाज वर को बाँधने में सफल रहे। यद्यपि भक्तिन में भी दुर्गुणों का अभाव नहीं है, महादेवी लिखती हैं कि "पविार और परिस्थितियो के कारण उसके स्वभाव में जो विषमतायें उत्पन्न हो गई है उनके भीतर से एक स्नेह और सहानुभूति की आभा फूटती रहती है, इसी से उसके सम्पर्क मे आने वाले व्यक्ति उसमें जीवन की सहज मार्मिकता पाते हैं।"[65] इस प्रकार यह गवार और अक्खड़ औरत ममता तथा एक निष्ठता की प्रतिमूर्ति बनी महादेवी के साथ जीवन भर रहती है। 'स्मृति की रेखाएँ' के अन्तर्गत नारी से सम्बन्धित दूसरा सस्मरण परिश्रमशील ब्राह्मण वधू बूटा का है जो अपने पिता के गुरु भाई द्वारा ही छली जाती है। वह उसका घर बेचकर और बूटा को सगम के मेले में छोड़कर चला जाता है, जहाँ से वह एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण परिवार में सेविका का कार्य करती है और अन्त में भिक्षा वृत्ति पर जीवित रहने वाले परिवार में वधू बन कर जाती है। उस परिवार का पुरुष वर्ग अपने आलस्य और प्रमाद के कारण श्रम करके अपने परिवार का भरण पोषण भी नहीं कर सकता वरन् सभी बूटा पर ही निर्भर रहते हैं। बूटा के सम्बन्ध में महादेवी लिखती हैं-"ग्राम की सम्भ्रान्त कुल वधुओं के समान ही मुन्नू की भाई

मधुरभाषिणी, सलज्ज और सेवापरायण हे, पर उस विजन मे उसका जीवन जगली फूल के समान उपेक्षा और परिचय के बीच खिला है।''[66] गाँव मे अन्न का सकट उत्पन्न होने पर वह भिक्षावृत्ति के स्थान पर मिट्टी ढोने के कार्य को उचित समझती हैं, जो उसके गाँव के सजातियो को पसन्द नही आता। ये सजातीय उसके निकम्मे पति को तो कुछ नही कहते लेकिन बूटा का मिट्टी ढोने का काम उन्हे किसी भी तरह से स्वीकार्य नही। महादेवी समाज की इस स्थिति पर व्यग्य करते हुए लिखती हे - "परिश्रम के तप मे पली यह नारी यदि भिक्षाजीवी ब्राह्मणत्व से मिट्टी ढोने को अच्छा समझती हैं, तो यह उसकी व्यक्तिगत विवशता है। किन्तु लीक-लीक चलने वाला समाज यदि ऐसे आडम्बरो को निरकुश बहने दे तो उसकी एक लीक भी न बच सके। इसी से मजदूरिन ब्राह्मण वधू ब्रह्मतेज सम्पन्न भिक्षुक समाज की आँख की किरकिरी है।''[67] बूटा के इस सस्मरण से एक प्रश्न अवश्य कौंधता है कि क्या समाज मे बूटा जैसी परिश्रमशील, स्वाभिमानी, अशिक्षित महिलाएँ इतना परिश्रम करने पर भी जीवन के सहज सुख प्राप्त करने की अधिकारिणी नही है। 'स्मृति की रेखाए' मे एक अन्य सस्मरण अभिमानिनी रजक बालिका बिबिया का है जो बार-बार पुरुष वर्ग द्वारा अपमानित और प्रताड़ित होती रही है। उसका सम्पूर्ण जीवन अत्याचार की ऐसी कहानी बनकर रह जाता है, जिसका अन्त आत्मघात द्वारा ही सभव होता है, यद्यपि बिबिया धोबिनो मे सबसे अधिक परिश्रमी और उसी मात्रा मे सबसे अधिक अभागिन भी थी। उसके तीन विवाह हुए लेकिन उनमे से एक भी वर उसे सुख प्रदान न कर सका और तीसरे विवाह मे तो उस पर अपने पति के बड़े पुत्र द्वारा ही चरित्र हनन का आरोप लगाया जाता है। अपमानित और तिरस्कृत बिबिया इस बार सभी को कर्तव्य भार से मुक्त करने के लिए कगार तोड़कर हिलोरे लेने वाली यमुना में शरण ले लेती हैं। महादेवी लिखती हैं-"बिबिया जैसे स्वभाव के व्यक्ति पराजित होने पर भी पराजय स्वीकार नहीं करते। कौन कह सकता है कि उसने सब ओर से निराश होकर अपनी अन्तिम पराजय को भूलने के लिए यह आयोजन नहीं किया ससार ने उसे निर्वासित कर दिया, इसे स्वीकार करके और गरजती हुई तरगो के सामने आँचल फैलाकर क्या वह अभिमानिनी स्थान की याचना कर सकती थी।[68] बिबिया का चरित्र स्त्रियों पर पुरुषों के कभी न समाप्त होने वाले अत्याचारों की कहानी कहता है। यद्यपि उसने शक्ति भर पुरुषों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों के विरुद्ध सघर्ष किया लेकिन अपने चरित्र पर लगे हुए कलक को वह मिटा न सकी। भला नारी जीवन की इससे बढकर विडम्बना और क्या हो सकती है? परम स्वाभिमानी, सेवा में निरन्तर सलग्न परिश्रमी नारी का ऐसा अन्त हमारे समाज के सम्पूर्ण अस्तित्व को चुनौती देता है और उसकी करूण परिणति कितनी सशक्त है। सबसे अन्त में महादेवी ने गुँगिया का चित्रण किया है जो अपने गूँगेपन के कारण जीवन भर उपेक्षित रही। पति ने भी उसे छोड़ दिया और जिस बच्चे का वह बड़े मन से पालन पोषण करती है, बड़ा होने पर वह भी उसे छोड़कर साधुओं की मंडली में सम्मिलित हो

जाता है। फिर वापस लौटकर कभी गुँगिया की खबर नही लेता। गुँगिया के साथ प्रकृति ने तो अन्याय किया ही किन्तु समाज ने उससे भी अधिक उसकी निरीहता आर विवशता का लाभ उठाया।

'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' मे वर्णित पुरुष पात्रो के साथ भी महादेवी का आत्मीयता का सम्बन्ध रहा है। 'अतीत के चलचित्र' का प्रथम ससमरण 'रामा' का चरित्र ही इस गद्यकृति की रचना का आधार बनाता है। रामा विमाता के अत्याचार से पीड़ित होकर बचपन मे ही घर छोड़कर भाग आया था और महादेवी के घर मे कई वर्षो तक उनके साथ रहा। रामा को वे इतना महत्वपूर्ण मानती थी कि "रामा के बिना भी ससार का काम चल सकता है, यह हम नही मान सकते थे।[69] रामा के सस्मरण के साथ महादेवी के बचपन की स्मृतियाँ इस प्रकार घुलमिल गई थी। कि उन्हे रामा से अलग नही किया जा सकता है। रामा के विवरण में महादेवी के व्यक्तित्व के कई पहलू भी उजागर होते है। पुरुष पात्रो से सम्बन्धित द्वितीय सस्मरण 'घीसा' का है, जिसकी आज्ञाकारिता और गुरु के प्रति एकान्तनिष्ठा से वे अत्यधिक प्रभावित होती हैं और साथ ही उसके चित्रण के माध्यम से ग्रामीण समाज की परिवेशगत विशेषताओ की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। जिस ग्रामीण के जीवन में दो वक्त की रोटी का प्रबन्ध भी मुश्किल काम हैं, वहाँ पर महादेवी जब बच्चों के लिए कपड़ों का प्रबन्ध किए बगैर उन्हें सफाई का महत्व समझाती हैं तो उनके उपदेश का बालक मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका निम्न पक्तियो मे कितना सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है- "दूसरे इतवार को सब जैसे के तैसे सामने ही थे-केवल कुछ गगाजी मे मुँह इस तरह धो आये थे कि मैल अनेक रेखाओ में विभक्त हो गया था, कुछ के हाथ पाँव ऐसे घिसे थे कि शेष मलिन शरीर के साथ वे अलग से जोड़े हुए से लगते थे और कुछ 'न रहेगा बास न बजेगी बासुरी' की कहावत चरितार्थ करने के लिए कीट से मैले, फटे-पुराने कुर्ते घर पर ही छोड़कर ऐसे अस्थिपजरमय रूप में आ उपस्थित हुए थे। जिसमें उनके प्राण रहने का आश्चर्य है, गये अचम्भा कौन की घोषणा करते जान पड़ते थे।"[70] 9 साल का सकोची, विनम्र और आज्ञाकारी घीसा अपने गुरु को विदा स्वरूप देने के लिए अपने नए कुर्ते को गिरवी रखकर तरबूज ले आता है, महादेवी भाव विह्वल होकर कह उठती हैं-"उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं , परन्तु उस दक्षिणा के सामने ससार में अब तक सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।"[71] एक सस्मरण में महादेवी ने अन्धे अलोपीदीन का चित्रण किया है, जो अन्धा होने के बावजूद अपनी माँ को काम नहीं करने देता क्योकि, "पुत्र को अच्छा नहीं लगता कि जवान बैठा रहे और बुढ़िया मर-मर कर कमावे।"[72] एक ओर शहर के सम्भ्रान्त परिवार के बच्चे हैं, जो अपनी माँ से छोटी-छोटी सुख-सुविधाओं के लिए झगड़ते रहते हैं, महादेवी स्वीकार करती हैं कि "जीवन से अनजान किशोरों की सख्या कम नहीं, जो सुख के साधनों के लिए उस माँ से झगड़ते हैं, जिसकी उगुलियों के पोर सिलाई करते-

करते चलनी हो चुके हैं।"[73] एक काछिन अलोपी के लिए स्वर्ग की रचना करने को तैयार हो जाती ह लेकिन छ महीने मे ही उसका समस्त घन लेकर वह भाग जाती हे लेकिन इसके बावजूद अलोपी पुलिस को खबर नही देता क्योंकि उसका मानना है कि हुलिया लिखवाकर पकड़ मगाना नीच का काम है। "अपनी स्त्री की 'अतीत के चलचित्र' में पुरुष पात्रो से सम्बन्धित अतिम सस्मरण मे बदलू कुम्हार का चित्रण है, जो महादेवी से प्रोत्साहन पाकर कृष्ण, बुद्ध, सरस्वती आदि की सुन्दर मूर्तियाँ बनाने लगता है।

'स्मृति की रेखाएँ' के अन्तर्गत पुरुष पात्रो से सम्बन्धित प्रथम सस्मरण चीनी फेरीवाले का है, जिसकी करूण कथा ने महादेवी को इतना उद्वेलित किया कि वे आज भी उस चीनी और उसकी खोई हुई बहन को भुला नही सकी हैं। यद्यपि उस फेरी वाले ने चीनी, बर्मी, हिन्दी, अग्रेजी के विचित्र सम्मिश्रण से तैयार जिस भाषा में अपनी जीवन कथा सुनाई उस भाषा से पूर्णतया परिचित न होने पर भी वे उसकी सवेदना को ग्रहण करने में पूरी तरह से समर्थ है। वे लिखती हैं कि "जो कथाएँ हृदय का बाँध तोड़कर दूसरो को अपना परिचय देने के लिए वह निकलती हैं, वे प्राय करूण होती हैं और करूणा की भाषा शब्दहीन रहकर भी बोलने मे समर्थ है।[75] चीनी फेरीवाले के जन्म के समय ही माँ की मृत्यु और फिर विमाता द्वारा किए गए अत्याचार मन में करूणा का सचार करते हैं। परन्तु पिता की असमय मृत्यु के पश्चात विमाता द्वारा बहन से वेश्यावृत्ति कराए जाने को देखकर मन में रोष की लहर उठना तो स्वाभाविक हो जाता है। चीनी बालक के स्नेह का एकमात्र सम्बल बहन के खो जाने पर तो जैसे उसके जीवन का आधार ही समाप्त हो जाता है और वह किसी प्रकार से भारत आकर वस्त्र बेचने का कार्य करने लगता है। उसकी दो ही इच्छाये शेष रह जाती हैं-1 ईमानदार बने रहने की । 2 बहिन को खोजने की। यद्यपि प्रारम्भ में उस चीनी द्वारा महादेवी के लिए 'सिस्टर' सम्बोधन महादेवी के मन में रोष के सबसे तुग तुरग उठा देता है क्योंकि महादेवी को ऐसा लगता है कि "यह विजातीय सम्बोधन मानों सारा परिचय छीनकर मुझे गाउन में खड़ा कर देता है।"[76] और महादेवी द्वारा यह कहने पर, कि "मैं विदेशी-फौरन नहीं खरीदती"[77] उस फेरी वाले के मन में उसके विस्मय के साथ उपेक्षा जनित चोट भी लगती है। लेकिन वाद में महादेवी का उसके साथ बहन जैसा मधुर सम्बन्ध जुड़ जाता है। चीनी फेरीवाले के सस्मरण द्वारा महादेवी ने समाज के उस घिनौने और कुत्सित रूप के दर्शन कराये हैं। जिसे देखकर मन वितृष्णा से भर उठता है। इस सस्मरण द्वारा मानव के अन्दर जीवने की अदम्य लालसा और विपरीत परिस्थितियों मे भी सघर्ष करने की शक्ति का परिचय मिलता है। धनसिह और जगबहादुर के चित्रण द्वारा महादेवी ने पर्वतीय समाज के सहज, सरल और निश्छल और भोले-भाले व्यक्तियों से मिलवाया है। जो शिष्टता आज सभ्य समाज में दुर्लभ है, उसका स्वाभाविक रूप से निर्वाह इन दोनों भाईयों के आचरण में मिलता है। आधुनिक समाज में जहाँ बच्चे अपने माँ बाप की सेवा करने को भी तत्पर नहीं दिखाई पड़ते वहीं

पर्वतीय समाज में छोटा भाई बीमार पड़ने पर बड़े भाई से पेर नही दबवाता क्योकि "बड़े भाई से पैर दबवाना उसे शिष्टाचार के विरुद्ध जान पड़े तो आश्चर्य नही।"[78] इसमे महादेवी ने शिक्षित आर शहरी समाज की निर्मम मान्यताओं पर खुलकर प्रहार किया है। एक भाई के बीमार पड़ने पर जब महादेवी अपनी यात्रा उसके अच्छे होने तक के लिए स्थगित कर देती हैं तो उनके चेहरे पर जैसा भाव आता है, उसे देखकर उन्हे ग्लानि भी होती है, खिन्नता भी। वे लिखती हैं-"मनुष्य ने मनुष्य के प्रति अपने दुर्व्यवहार को इतना स्वाभाविक बना लिया है कि उसका अभाव विस्मय उत्पन्न करता है और उपस्थिति साधारण लगती है।"[79] 'स्मृति की रेखाएँ' के अन्तर्गत पुरुष पात्रो से सम्बन्धित अन्तिम सस्मरण ठकुरी बाबा का है जो कल्पवास के वक्त महादेवी के सम्पर्क में आए। इनके समूह में इनके अलावा उनकी वृद्धा मौसी, बेटी बेला, अन्धा दामाद, वृद्धा ठकुराइन, सहुआइन, विधुर काछी और ब्राह्मण दम्पत्ति आदि हैं। ठकुरी बाबा ग्रामीण समाज के सर्वाधिक सीधे, सच्चे, सरल और भावुक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनके साथ वर्तमान नागरिक समाज की तुलना करते हुए महादेवी लिखती हैं-"मैंने उनसे अधिक सहृदय व्यक्ति कम देखे हैं। यदि यह वृद्ध यहाँ न होकर हमारे बीच मे होता, तो कैसा होता, यह प्रश्न भी मेरे मन मे अनेक बार उठ चुका हे, पर जीवन के अध्ययन ने मुझे बता दिया है कि इन दोनो समाजो का अन्तर मिटाना सहज नही। उनका बाह्य जीवन दीन है और हमार अर्न्तजीवन रिक्त। उस समाज मे विकृतियाँ व्यक्तिगत हैं, पर सद्भाव सामूहिक रहते हैं। इसके विपरीत हमारी दुर्बलतायें समष्टिगत हैं, पर शक्ति वैयक्तिक मिलेगी।"[80] वर्तमान समाज मे होने वाले कवि सम्मेलनो के प्रति महादेवी के मन में क्षोभ है। ठकुरीबाबा और उनकी भजनमडली की तुलना विराट कवि सम्मेलन से करते हुए महादेवी लिखती हैं-"ग्रामीण समाज अपने रस समुद्र मे व्यक्तिगत भेद बुद्धि और दुर्बलतायें सहज ही डुबो देता है, इसी से इस भाव स्नान के उपरान्त वह अधिक स्वस्थ रूप प्राप्त कर सकता है।

हमारे सभ्यता दर्पित शिष्ट समाज का काव्यानन्द छिछला और उसका लक्ष्य सस्ता मनोरजन मात्र रहता है, इसी से उसमें सम्मिलित होने वालो की भेद बुद्धि एक दूसरे को नीचा दिखलाने के प्रयत्न और वैयक्तिक विषमतायें और अधिक विस्तार पा लेती हैं। एक वह हिंडोला है जिसमें ऊँचाई-नीचाई का स्पर्श भी एक आत्म विस्मृति में विश्राम देता है। दूसरा वह दगल का मैदान है जिसका सम धरातल भी हारजीत के दाँव पेचों के कारण सतर्कता की भ्रान्ति उत्पन्न करता है।"[81]

'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' की अन्तर्वस्तु पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि ये दोनो गद्य कृतियाँ पूर्णतया समाज केन्द्रित है। महादेवी के काव्य में पीड़ा का जो अथाह सागर लहराता दिखाई पड़ता है, वह गद्य साहित्य में दीन-हीन, दुखी सन्तप्त वर्ग की पीड़ा में परिवर्तित हो जाता है डा प्रेमलता वर्मा अपने लेख में स्वीकार करती हैं कि "काव्यगत एकान्त कल्पना और आदर्श ने यहाँ ठोस वास्तविकता

और यथार्थ का रूप धारण कर लिया है-अपने कविरूप मे वे जनजीवन से जितनी दूर रही है, गद्य मे उतनी ही समीप हैं।''[82] इसमे महादेवी ने उन पात्रों को लिया है जो सामाजिक विषमता की पीड़ा से ग्रस्त अत्यन्त निराशाजनक परिस्थितियो में भी अपनी जीवनीशक्ति के सहारे निरन्तर सघर्ष कर रहे हैं। लेकिन इनके द्वारा लाख प्रयत्न करने पर भी समाज का उच्च वर्ग इन्हे ऊपर नही उठने देता। यद्यपि महादेवी पुरुष और नारी पात्र दोनों के प्रति ही अत्यधिक सवेदनशील रही हैं परन्तु समाज में स्त्रियो की हीन दशा देखकर उनका विद्रोही मन क्षुब्ध हो उठता है और वह कभी आक्रोश में भरकर पूरी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध खडी दिखाई देती है, और कभी व्यग्य पूर्ण कथनो द्वारा अपने अन्तर्मन पर की पीड़ा को अभिव्यक्त करती हैं। इस प्रकार इन रचनाओं के द्वारा महादेवी ने समाज की वैषम्य व्यवस्था पर कठोर प्रहार किए।

महादेवी के सभी नारी पात्र अशिक्षित, विनम्र, दलित एव पिछड़े वर्ग से सम्बन्ध रखते है। ये सामाजिक तथा आर्थिक रूप से भी काफी निम्न है। परम्परागत सस्कारो और रीतिरिवाजो में बधी ये नारियाँ अपनी सीमारेखा से बाहर आने को तैयार नहीं होती। उन्होने नारी जीवन की समस्याओ का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोण से विवेचन, विश्लेषण किया है। उन्होने स्पष्टत अनुभव किया कि नारी समाज में अपने परिवार में और स्वय अपने द्वारा ही निरन्तर उपेक्षा का शिकार रही है। सभी प्रकार के सुखो से दूर विधवा भाभी की कारूणिक दिनचर्या, बिन्दा पर विमाता द्वारा किया जा रहा असहनीय अत्याचर, पति की उपेक्षा की शिकार सबिया, बिट्टो का अनमेल विवाह, पुरुष द्वारा छली गई बाल विधवा, आत्म सम्मान की रक्षा में लीन वेश्या पुत्री, भक्तिन की व्यथापूर्ण अतीत गाथा, मुन्नू की माँ की कठोर जीवनयात्रा, बिबिया का कारूणिक अन्त और गूँगी गुँगिया की निरीहता और विवशता ये सभी पात्र समाज में नारी की कारूणिक दशा का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। विधवा की हीन दशा ने महादेवी के मन को अत्यधिक द्रवित किया है। उसकी दशा का निम्न चित्र देखिए-''न इसे कहीं जाने देते हैं और न किसी को अपने घर आने देते हैं। केवल अमावस-पूनो एक ब्राह्मणी आती है, जिसे वे अपने आप खड़े रहकर सीधा दिलवा कर विदा कर देते हे।''[83] यदि विधवाओं के पुनर्विवाह द्वारा इस समस्या को सुलझाने का प्रयास भी किया जाय तो यह और भी दुष्कर हो जाता है क्योंकि समाज में विद्यमान योग्य पुरुष तो इसके लिए आगे नहीं आते और वृद्ध के साथ विवाह करने पर पुन. उसके विधवा होने की सम्भावना ही प्रबल हो जाती है। 'अतीत के चलचित्र' के एक पात्र बिट्टो के विवाह द्वारा इस समस्या को सुलझाने का प्रयास तो किया गया लेकिन चार वर्ष बाद ही वह वृद्ध मरणासन्न अवस्था में पहुँच जाते हैं। ऐसी स्थिति पर व्यग्य करते हुए महादेवी लिखती हैं-''मनु महाराज जो कह गए हैं उसे असत्य प्रमाणित कर कुम्भीपाक में विहार करने की इच्छा न हो तो यह कहना ही पड़ेगा कि बिट्टो तीसरे विवाह की इच्छा को हृदय के किसी निभृत कोने में छिपाये हुए हैं और उसके उद्धार के लिए निरन्तर कटिबद्ध

वृद्ध परोपकारियो की इस पुण्यभूमि में और विशेषकर इस जाग्रत युग मे कमी नही हो सकती।''[84] बाल विधवाओ से जुड़ी हुई समाज मे विद्यमान एक अन्य समस्या की ओर भी महादेवी ने ध्यान आकृष्ट किया हे। पुरुष द्वारा छली जाकर ये बाल विधवाएँ मातृत्व पद की अधिकारिणी बन जाती हे। लेकिन समाज और परिवार वालो की नजरों में ऐसी अपराधिनी, जिसके अपराध को क्षमा भी नही किया जा सकता। इनके प्रति महादेवी के हृदय में गहन सहानुभूति है। वे लिखती हैं-''अपने अकाल वैधव्य के लिए वह दोषी नही ठहराई जा सकती, उसे किसी ने धोखा दिया, इसका उत्तर दायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता, पर उसकी आत्मा का जो अश, हृदय का जो खण्ड उसके सामने है, उसके जीवन-मरण के लिए केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष यदि उसको अपनी पत्नी नही स्वीकार करता तो केवल इसी मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को अपने बालक को अस्वीकार कर देगी? ससार मे चाहे इसको कोई परिचयात्मक विशेषण न मिला हो, परन्तु अपने बालक के निकट तो वह गरिमामयी जननी की सज्ञा ही पाती रहेगी।''[85] वेश्यावृत्ति की समस्या का सारा उत्तरदायित्व महादेवी समाज पर ही डालती है क्योकि समाज इन लोगो को सम्मान पूर्ण जीवन जीने के योग्य मानता ही नही है। एक बार वेश्या होने का जो ठप्पा (लेबल) उस पर लग गया, वह इस जनम मे तो छूटने वाला नही, इसके लिए वह चाहे जितने प्रयत्न कर ले। ऐसी स्थिति का आक्रोश से भरा हुआ व्यग्यपूर्ण चित्रण महादेवी की लेखनी से साकार हो उठा है-''यह अपने विद्रोही पति के साथ सती ही क्यों न हो जावे, परन्तु इसके रक्त के अणु-अणु में व्याप्त मलिन सस्कार कैसे धुल सकेगा? स्वेच्छाचार से उत्पन्न यह पवित्रता की साधना उस शूद्र की तपस्या के समान ही बेचारे समाज की वर्ण व्यवस्था का नाश कर रही है, जिसका मस्तक काटने के लिए स्वय मर्यादा पुरुषोत्तम दौड़ पड़े थे।''[86] समाज मे इतना अधिक उपेक्षित रहने पर भी महादेवी के नारी पात्र अपने परिवार वालों के लिए ममता की प्रतिमूर्ति बने रहते हैं, जो विपरीत परिस्थितियो के होने पर भी कर्तव्य से विमुख नहीं होते। सबिया पति के छोड़कर चले जाने पर उसकी अधी माँ और बच्चों की देखभाल पूरी निष्ठा के साथ करती है। उसके लिए यह बात बिल्कुल महत्वहीन है कि दूसरे अपने कर्तव्यों को पूरा करते हैं या नहीं। महादेवी उसके सम्बन्ध में लिखती हैं कि ''इतने अगारो से भरे जाने पर भी इसके वात्सल्य का अचल दूसरों को छाया देने में समर्थ है। यह जैसे अपने नादान बच्चों के उत्पात की चिन्ता नहीं करती, उसी प्रकार पति की हृदयहीन कृतघ्नता, सपत्नी के अनुचित व्यग्य और सास की अकारण भर्त्सना पर भी ध्यान नहीं देती। उसके निकट मानों सब बच्चे हैं, इसी से उनका कर्तव्य से जी चुराना उसे कर्तव्य विमूढ़ नहीं बनाता।''[87] महादेवी के नारी पात्रों का एक प्रमुख गुण उनका स्वावलम्बी होना भी है। ऐसी स्त्रियों को देखकर पुरुष वर्ग हीनता का अनुभव करता है और इन मिथ्या अभियोगों की झड़ी लगाकर अपने अह की तुष्टि करता है। महादेवी के ये शब्द इस स्थिति का सटीक चित्र प्रस्तुत करते हैं कि -''इस तरह पग-पग पर पुरुष से सहायता की याचना न करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ

विचित्र सी है। वह जितनी ही पहुँच के बाहर होती है, पुरुष उतना ही झुझलाता है और प्राय यह झुझलाहट मिथ्या अभियोगो के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।"[88] लेकिन स्त्री जाति पुरुष द्वारा लगाए गए इन मिथ्या अभियोगो से भयभीत नही है। उसकी आत्मशक्ति उसे निरन्तर सघर्ष करने की प्रेरणा देती रहती है। पुरुष का भी उसके जीवन में तब कोई स्थान नही रह जाता, जब स्वय स्त्री ही उन्हे महत्व नही देती। महादेवी स्वीकार करती हैं कि "स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है तब पुरुष उसके लिए न महत्व का विषय रह जाता है, न भय का कारण, इस सत्य को मान लेना पुरुष के लिए कभी सभव नही हो सका।"[89] महादेवी समाज मे नारी की हीन दशा से निराश नही है। क्योकि जब तक स्त्रियाँ सघर्ष करने के लिए प्रयत्नशील दिख रही है तब तक महादेवी के अन्तर्मन मे भी आशा की किरणे झिलमिला रही हैं। वे लिखती हैं कि -"फिर भी स्त्री को हारा हुआ मेरा मन कैसे स्वीकार करे, जब तक उसके परिस्थितियो से चूर-चूर हृदय में भी आलोक की लौ जल रही है।"[90] इन पात्रो के साथ महादेवी निजता का सम्बन्ध जोड़ लेती हैं। इसी कारण वे इन पात्रो की व्यथा का तीव्र अनुभव करती हें और उनका हृदय भी आर्त्त क्रन्दन कर उठता है। जब कोई दूसरा व्यक्ति इन पात्रो के विषय में कुछ बोलता हे तो वह व्यग्य से तिलमिला देने वाला जवाब दे बैठती हैं। एक सम्भ्रान्त महिला द्वारा सबिया को चोर पत्नी कहे जाने वह महादेवी लिखती हैं कि-"इसी सलज्ज और कर्तव्यनिष्ठ सबिया को लक्ष्य करके जब एक परिचित वकील पत्नी ने कहा-आप चोरो की पत्नी को नौकर रख लेती हैं? तब मेरा शीतल क्रोध उस जल के समान हो उठा, जिसकी तरलता के साथ मिट्टी ही नही, पत्थर तक काट देने वाली धार भी रहती हैं मुँह से अचानक निकल गया, यदि दूसरे के धन को किसी न किसी प्रकार अपना बना लेने का नाम चोरी है तो मैं जानना चाहती हूँ कि हम में से कौन सम्पन्न महिला चोर पत्नी नहीं कही जा सकती?"[91]

महादेवी के काव्य मे प्रगतिशील तत्वों का जितना अभाव दृष्टिगोचर होता है, उनकी गद्य रचनाएँ प्रगतिशीलता के तत्वो के उतने ही उत्कृष्ट उदाहरण हैं। प्रगतिशील साहित्य में शोषित, उत्पीड़ित जन के प्रति मानवीय प्रेम और सहानुभूति का प्रदर्शन ही मुख्य है। महादेवी के सस्मरणात्मक साहित्य के प्राय सभी पात्रों के चित्राकन मे यही विशेषता प्रमुख रही है। चाहे वह अहीरबाला भक्तिन हो, जिस पर ससुराल वालों ने अनेक अत्याचार किए। भक्तिन के सस्करण द्वारा महादेवी ग्रामीण समाज में विद्यमान अत्याचारी तत्वों को सामने भी लाई हैं और उनके प्रति विद्रोह भी व्यक्त किया हैं चीनी फेरी वाले की बहन का शोषण उसकी अपनी माँ द्वारा ही किया जाता है। धनिया और जग बहादुर के माध्यम से महादेवी ने कुलियों की व्यवहार प्रियता और धनी वर्ग की स्वार्थपरता के विरोधी दृश्य द्वारा पूँजीगत बुराइयों को स्पष्ट किया है। महादेवी ने बूटा के माध्यम से ग्रामीण जीवन की गरीबी और साधुओं की नीचता भरी चालों का ज्ञान कराया है। ठकुरी बाबा के द्वारा ग्रामीण

जीवन की सरलता के चित्र प्रस्तुत किए हैं और उसके सामने शहरी जीवन को नगण्य माना है। बिबिया और गुँगिया तो नारी जीवन की त्रासदी के सजीव चित्र हैं लेकिन इसके साथ ही गुँगिया जेसी परिश्रम शील और निरीहमाता का दिल रखने के लिए दस रूपये भेजने वाले कल्पित पुत्र का मानवीय चित्र भी अकित किया गया है। महादेवी ने अपने पात्रो के माध्यम से समाज मे श्रम के महत्व को भी प्रतिपादित किया है और इनके सभी पात्र घोर परिश्रमशील तो हैं ही साथ ही सव्यता और ईमानदारी का गुण भी उनमे कूट-कूट कर भरा हुआ है। देशभक्ति का भाव भी इन पात्रों मे विद्यमान है। चीन मे युद्ध छिड़ने पर चीनी फेरी वाला चीन जाने को उद्यत हो उठता है। महादेवी द्वारा यह पूछने पर, उसे किसने बुलाया? वह उत्तर देता हे-"हम कब बोला हमारा चाइना नही है? हम कब ऐसा बोला सिस्तर?"[92] इसके साथ ही महादेवी ने सामन्ती परिवारो मे विद्यमान में विद्यमान निकृष्टता, साम्राज्यवादी तत्वों की पाशविकता, धनी और साधन सम्पन्न लोगो की दुष्प्रवृत्तियो तथा मानव स्वभाव में विद्यमान क्षुद्र दुर्बलताओ को भी अपने सस्मरणात्मक साहित्य मे प्रश्रय दिया है। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' महादेवी वर्मा के लोक जीवन के प्रति अमिट स्नेह और अगाध आकर्षण को व्यक्त करते हैं। इन कृतियों मे जीवन और जगत की बहुरगी झाकियाँ मिलती हैं। कहीं पर महादेवी ने साहित्य और मनोविज्ञान धर्म और दर्शन, सस्कृति और शिक्षा जेसे विषयों पर गम्भीर, मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं तो कहीं पर गाँव मे होने वाले तीज त्यौहार, रीति रिवाज एव परम्परायें और मेला-दशहरा जैसे सामान्य विषयों पर भी अपनी लेखनी चलाई है। महादेवी ग्रामीण समाज के निम्न वर्ग के पात्रो के मध्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए निरन्तर प्रयासरत् रही हैं। इसी सन्दर्भ मे एक गाँव मे उन्होंने स्कूल खोलने के लिए वर्षा से निरन्तर जर्जर होते जा रहे खण्डहर को उसके स्वामी श्री गोपालशरण सिह से मागा किन्तु जब उनके दृष्टिक्षेत्र में महादेवी के उपयोगितावाद का कोई विशेष महत्व नही ठहरा तो उन्हें ग्लानि भी हुई और उनका मन आक्रोश से भर उठा। किसी के द्वारा यह पूछने पर कि उसका स्कूल कब खुलेगा तो वे आक्रोश मिश्रित करूणा से अपने ही उच्च वर्ग पर चोट करती हुई लिखती हैं-"अरे अभागे! तुमहारा गाँव जरायम पेशा है, तुम्हारे बाप-दादा ने अपना जीवन नष्ट करके इसके लिए यह ख्याति कमाई है। तुम जुआ खेलो, चोरी सीखो पर भले आदमियो के अधिकार में हस्तक्षेप करने का दुस्साहस न करो।"[93] स्पष्ट है कि काव्यजगत की भावुक कवयित्री ने अपने सस्मरणात्मक साहित्य में आत्मपीड़ा से उन्मुक्त होकर, युग सापेक्ष्य, गतिवाद रूप स्वीकार कर लिया है और उनका कलाकार मन युगों-युगों से उत्पीड़ित और तिरस्कृत मानवता की वकालत के लिए हठपूर्वक खड़ा हो गया है। महादेवी के सस्मरणात्मक साहित्य के सम्बन्ध में 'साहित्य संदेश' में छपी यह टिप्पणी निश्चय ही सारगर्भित है-"अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' इसी वेदना-विदग्ध, आलोड़न से उत्पन्न अमर भाव-बिन्दु है, जो पूरी शक्ति से मर्म पर चोट करते हैं। इन ललनाओं की अलक-पलकों पर जो वेदना और परवशता के अश्रु सचित हैं, वह पुरुष समाज की निष्ठुरता और हृदय हीनता के ऐसें रक्त कण हैं जो हिन्दू धर्म के रूढ़िग्रस्त-अमगलकारी तत्वों के चिर प्रतीक हैं।"[94]

महादेवी का निबन्ध लेखन-

'निबन्ध' को प्राय अग्रेजी शब्द 'Essay' का पर्याय माना जाता हे लेकिन महादेवी इस मत को स्वीकार नहीं करती क्योंकि 'Essay' शब्द का जन्म फ्रासीसी शब्द 'एसाई' से हुआ है, जिसका अर्थ किसी विषय पर गद्य मे सहज, लघु और मुक्त साहित्यिक रचना हे जबकि 'निबन्ध' शब्द नि+बध+ल्युट प्रत्यय से बना है, जिसके नाम मे ही बधन का सकेत मिलता है। इसमे किसी विषय पर सीमित विचारो को क्रमबद्ध रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। महादेवी ने प्रत्येक निबन्ध मे लेखक के भावो, विचारो, निजता तथा निरीक्षण प्रवृत्ति का समावेश होना आवश्यक माना है। यद्यपि निबन्ध भी कई प्रकार के होते हैं। लेकिन महादेवी का मानना है कि यह लगभग मुश्किल होता है कि भावात्मक निबन्धो मे विचारो का स्थान न रहे या वर्णनात्मक निबन्धों मे भावो का अभाव प्रतिबिम्बित हो। इसका कारण वे मानसिक प्रक्रिया को मानती है, वे लिखती हैं -"सभवत इसका कारण मनुष्य का वह मानसिक गठन है, जिसमे एक प्रवृत्ति के प्रधान हो जाने पर भी अन्य प्रवृत्तियाँ गौण रहकर उसमें सहयोग करती रहती हैं।"[95] प्रारम्भ मे निबन्ध का तात्पर्य केवल साहित्यिक निबन्धों से लिया जाता है लेकिन वर्तमान समय मे ज्ञान-विज्ञान का इतना अधिक विस्तार हो चुका है कि नवीन तथ्यो को प्रकाश मे लाने के लिए निबन्ध विधा का उपयोग सभी क्षेत्रों मे हो रहा है। निबन्ध का एक प्रकार ललित निबन्ध है जिसमें विषय का सहज रूप से स्वच्छन्दता के साथ मनोरम वर्णन किया जाता है। आधुनिक युग में आलोचना के अनेक आयाम विकसित होने पर निबन्धो का एक प्रकार आलोचनात्मक निबन्ध के नाम से जाना जाता है, जिसमे विषय के विवेचन के साथ-साथ मनोविज्ञान की भी सहायता ली जाती है। महादेवी ने निबन्ध के उपर्युक्त तीनो प्रकारों को अपनी लेखनी के माध्यम से समृद्ध किया है। उनके विचारात्मक निबन्धों का सग्रह 'शृखला की कड़ियाँ', आलोचनात्मक निबन्धो का सग्रह 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' और 'क्षणदा' मे ललित निबन्ध सकलित हैं महादेवी अपने निबन्धों का गहन अध्ययन और अध्यापन के परिणामस्वरूप उत्पन्न मानती हैं। निबन्धो में उन्होने अपने विचारों को क्रमबद्ध और तार्किक ढग से प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग के अधिकाश विद्वान कविता और गद्य इन दो भिन्न विधाओं मे कथ्य का अन्तर स्वीकार नहीं करते लेकिन महादेवी का मानना है-"मेरे लिए एक ही सत्य या तथ्य को व्यक्त करने के लिए स्वीकृत विधाएँ भिन्न हो जाती हैं। इसी से गीत और निबन्ध में दो तटों का सा अतर पड़ता है, किन्तु वे दूर रहकर भी एक ही नदी को जोड़े रहते हैं। गीत में प्रयास नहीं है, क्योंकि वह क्षणो की सवेदनीयता है। इसके विपरीत निबध में वैचारिक सगुफन अधिक समय तथा आयास चाहता है।"[96]

कविता में जो कुछ 'अनकहा' रह गया है, उसे उन्होंने अन्य विविध विधाओं के माध्यम से व्यक्त किया है। महादेवी की कविता शुद्ध छायावादी कविता है, जिसमें उनके हृदयगत भावों की प्रधानता है लेकिन

उनके गद्य में, विशेष रूप से निबन्ध में बुद्धि को प्रधानता मिली है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निम्न कथन महादेवी पर पूर्णतया चरितार्थ होता है-"यात्रा में निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को साथ लेकर।"[97] महादेवी के प्रायः सभी निबन्धों में भाव और विचार का यही समन्वय देखने को मिलता है।

महादेवी का सर्वप्रथम विचारोत्तेजक निबन्ध 'शृंखला की कड़ियाँ' है, जिसका प्रकाश सन् 1942 में हुआ। 'शृंखला की कड़ियाँ' की रचना का मूल कारण समाज में नारी के प्रति होने वाले कठोर अत्याचार हैं, जिन्होंने महादेवी को इतना उद्वेलित कर दिया कि अपनी लेखनी के माध्यम से उन्होंने अपने विचारों को निबन्ध रूप में प्रस्तुत किया। इसमें 'जन्म से अभिशप्त, जीवन से संतप्त किन्तु अक्षय वात्सल्य, वरदानमयी भारतीय नारी'[98] की विषम परिस्थितियों को उजागर किया गया है। इसमें महादेवी ने प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक नारी की सामाजिक स्थिति में आए हुए परिवर्तनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है और साथ ही उनकी समस्याओं का समूल नाश करने का प्रयत्न किया गया है। अन्याय को ही अपने भाग्य के रूप में स्वीकार करने वाली भारतीय नारी की अंतर्निहित शक्तियों को भी जाग्रत करने में वे संकल्पबद्ध दिखाई पड़ती हैं। उन्होंने स्वीकार किया है-"अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूँ, अतः इन निबन्धों में उग्रता की गन्ध स्वाभाविक है, परन्तु ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धान्त में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा। मैं तो सृजन के उन प्रकाश तत्वों के प्रति निष्ठावान हूँ जिनकी उपस्थिति में विकृति अन्धकार के समान विलीन हो जाती है।"[99] इस उद्धरण से महादेवी के चरित्र की दो विशेषतायें दृष्टिगत होती है।-1. अन्याय के प्रति सहिष्णु न होना, 2. ध्वंस के स्थान पर निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहना। महादेवी ने अपने इन निबन्धों में ऐसी नारी की कामना की है जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति की प्रतीक हो और पुरुष के समकक्ष कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़ी हो सके। इन निबन्धों में संभवतः पहली बार नारी की समस्याओं को एक नारी के दृष्टिकोण से देखने का प्रयास हुआ है। गंगा प्रसाद पाण्डेय का विचार है-"शृंखला की कड़ियाँ में नारी जीवन के उन अभिशापों का उद्घाटन किया गया है, जिन्होंने नारी जाति को युगों से मानवता का कलंक बना रखा है। साथ ही उसकी मुक्ति के साधनों का भी सुझाव दिया गया है।"[100]

'शृंखला की कड़ियाँ' के अन्तर्गत प्रथम निबन्ध 'हमारी शृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी ने वैदिक काल की मैत्रयी, यशोधरा, सीता आदि के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है कि प्राचीनकाल में स्त्रियाँ पुरुषों की छायामात्र नहीं थी, वरन् सही अर्थों में उनकी जीवन संगिनी की भूमिका का निर्वाह करती थी। परन्तु वर्तमान समाज में वे दो प्रकार की स्त्रियाँ पाती हैं- एक वे जो अपने व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास से अनभिज्ञ हैं, और दूसरी वे जो पुरुषों का अन्धानुसरण करते हुए उनके गुणावगुणों को स्वीकार कर रही हैं। ये स्त्रियाँ यह भूल गई हैं कि स्त्री-पुरुष में एक मौलिक अन्तर है। वे लिखती हैं कि "पुरुष समाज का न्याय है, स्त्री दया, पुरुष

प्रतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्तव्य हे, स्त्री सरस सहानुभूति ओर पुरुष बल है, स्त्री हृदय की प्रेरणा।''[101] स्त्री पुरुष के सामजस्यपूर्ण आचरण से ही समाज सम्पूर्ण हो सकता है, उनमे परस्पर विरोध भाव से नही। महादेवी नारी के व्यक्तित्व मे कोमलता और सहानुभूति के साथ साहस तथा विवेक का ऐसा समन्वय चाहती हैं जिससे वे एक ओर स्नेह की अजस वर्षा कर सके और दूसरी ओर अन्याय का डटकर विरोध भी कर सके, तभी वे अपना सर्वांगीण विकास कर सकती हे।

नारियों की अर्थ सम्बन्धी समस्याओ को सुलझाने के लिए महादेवी नागरिक और राजनीतिक अधिकारो की माग रखती हैं, क्योंकि पति की मृत्यु के बाद उसकी स्थिति समाज मे इस तरह की है-कि ''जब जला सकते थे, तब इच्छा या अनिच्छा से उसे जीवित ही भस्म करके स्वर्ग में पति के विनोदार्थ भेज देते थे, परन्तु अब उसे मृत पति का ऐसा निर्जीव स्मारक बन कर जीना पडता है, जिसके सम्मुख शृद्धा से नतमस्तक होना तो दूर रहा, कोई उसे मलिन करने की इच्छा भी नही रोकना चाहता।''[102] महादेवी का मानना है कि समाज की जाग्रत और सम्पन्न महिलाओं का जीवन तभी सार्थक है, जब वे अपनी कोटिश सोती हुई बहनो को जगा सकें। स्त्रियो में अतर्निहित शक्तियो की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए महादेवी लिखती हैं- ''कोई ऐसा त्याग, कोई ऐसा बलिदान और कोई ऐसी साधना नही, जिसे वह अपने साध्य तक पहुँचने के लिए सहज भाव से नहीं स्वीकार करती रही। हमारी राष्ट्रीय जागृति इसे प्रमाणित कर चुकी है कि अवसर मिलने पर गृह के कोने की दुर्बल बन्दिनी स्वच्छन्द वातावरण में बल प्राप्त पुरुष से शक्ति मे कम नहीं।[103]

'युद्ध और नारी' शीर्षक में महादेवी ने पुरुषों की युद्ध प्रिय प्रवृत्ति और नारी की युद्ध विमुख प्रवृत्ति की ओर सकेत किया है। पुरुष ने नारी के लिए घर तो अवश्य बनाया लेकिन स्वय उस घर के बधन में न बध सका। नारी ने पुरुष से युद्ध विमुख होने के लिए जब आत्मनिवेदन किया तो उसने नारी में विद्यमान दया, स्नेह, सहानुभूति, करूणा, सहनशीलता आदि गुणो को दुर्गुणों में परिवर्तित कर दिया और कहा कि इन्ही गुणो की प्रधानता के कारण वह युद्ध से विमुख रही है।

'नारीत्व का अभिशाप' में महादेवी ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार पुरुष नारियों के व्यक्तित्व में निहित कोमलता को दुर्बलता का नाम देकर उन्हें प्राचीन काल से ही प्रताड़ित किये जा रहे हैं और नारी भी इन यन्त्रणाओं को अपना भाग्य मानकर स्वीकार कर रही है। वे लिखती हैं कि -''नारी जाति भी समाज को अपनी शक्ति से अधिक देकर, अपनी सहनशीलता से अधिक त्याग स्वीकार करके सज्ञाहीन सी हो गई हैं, नहीं तो क्या बलिष्ठ से बलिष्ठ व्यक्ति को दहला देने वाली, कठोर से कठोर व्यक्ति को रुला देने वाली यन्त्रणाएँ वह इतने मूक भाव से सहती रह सकती।''[104] नारी जहाँ जन्म लेती है, जहाँ पर वह सस्कार ग्रहण करती है और जहाँ बचपन में अपने हृदय का समस्त स्नेह उड़ेल देती है। उसी घर में शादी के बाद उसकी

स्थिति एक भिक्षुक के समान हो जाती है और पति के घर मे भी यदि वह उसकी इच्छानुसार नही चलती तो केवल उसकी वासना की सतुष्टि ही उसका धर्म रह जाता है। नारी को न तो कभी पिता के घर मे ओर न कभी पति के घर मे वह स्थान प्राप्त हुआ जिसकी वह अधिकारिणी है। वे लिखती हैं कि "अपने पितृ गृह मे उसे वैसा ही स्थान मिलता है, जैसा किसी दुकान मे उस वस्तु को प्राप्त होता है, जिसके रखने और बेचने दोना में ही दुकानदार को हानि की सम्भावना रहती है।"[105] पति गृह "जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकार मे उससे कुछ अधिक, परन्तु सहानुभूति मे उससे बहुत कम है, इससे सन्देह नही।"[106] ये दोनों कथन परिवार में नारी की दयनीय दशा का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करते हैं। वे नारी को ऐसी बन्दिनी मानती हैं, जिसके लिए स्वतन्त्रता का विचार भी पाप है।

'आधुनिक नारी उसकी स्थिति पर एक दृष्टि' मे उन्होने आधुनिक नारी के सम्बन्ध मे अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। आधुनिक नारी ने व्यक्तित्व को गरिमामय बनाने वाले गुणों का समूल नाश करने का प्रयत्न किया, जिसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण पश्चिम की नारी है, जिन्होने आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली, सामाजिक बन्धनों को भी तोड़ दिया लेकिन पुरुष पर उनकी निर्भरता कम नही हुई और पुरुष द्वारा की गई उपेक्षा को वे बर्दाशत नहीं कर सकी। उन्हीं का अनुकरण भारत की नारी ने किया लेकिन महादेवी मानती हैं कि 'उसकी भी प्रकृति जन्य कोमलता अस्ति-नास्ति के बीच में डगमगाती रही।"[107] आधुनिकता के वातावरण मे विकसित नारी की कठिनाइयाँ तो और भी सघन हैं क्योंकि महादेवी का मानना है कि प्राचीन विचारो का उपासक पुरुष समाज अवहेला की दृष्टि से देखता है, आधुनिक दृष्टिकोण वाले समर्थन का भाव रखते हुए भी क्रियात्मक सहायता देने मे असमर्थ रहते हैं और उग्र विचार वाले प्रोत्साहन देकर भी उन्हें अपने साथ ले चलना कठिन समझते है। वस्तुत आधुनिक स्त्री जितनी अकेली है, उतनी प्राचीन नही, क्योकि उसके पास निर्माण के उपकरण मात्र हैं, कुछ भी निर्मित नहीं।"[108]

महादेवी मानती हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन के समय आधुनिक नारी ने जो त्याग और बलिदान किए, वे अविस्मरणीय हैं, लेकिन अपनी सुकोमल कला और भावुकता का नाश करके उन्होने अपनी परम्पराओं के प्रति जो विद्रोह किया उसने समाज में उनकी स्थिति को सदिग्ध बना दिया। स्पष्ट है कि आधुनिक नारी द्वारा की जा रही गलतियों से वे आँख बन्द नहीं किए हुए हैं, वरन् उन्हें बराबर आगाह भी करती जाती हैं।

'घर और बाहर' शीर्षक के अन्दर महादेवी ने स्त्रियों की इस उहापोह भरी स्थिति का साकार चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें यदि वे बाहर कार्य करती हैं तो घर उपेक्षित हो जाता है और स्वय को यदि घर तक सीमित रखती हैं तो उनकी प्रतिभा का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। इसलिए उनके सुनहले भविष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह घर-बाहर मे सामजस्य बनाए। वे लिखती हैं कि 'उसके घर और बाहर में ऐसा

सामजस्य स्थापित हो सके जो उसके कर्तवय को केवल घर या केवल बाहर ही सीमित न कर दे।''[109] स्त्रियों की प्रतिभा के पूर्ण विकास के लिए महादेवी कुछ क्षेत्रो की ओर ध्यान आकृष्ट करती है, जिनमे शिक्षा, चिकित्सा, कानून, साहित्य तथा बाल साहित्य प्रमुख हैं। महादेवी स्पष्ट करती हैं कि स्त्री तथा बालको के लिए उपयोगी सस्थाओ की स्थापना, स्त्रियो मे सगठन की प्रवृत्ति जाग्रत करना तथा उन्हे सामयिक स्थिति की जानकारी देना आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जिन्हें स्त्रियाँ अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वो को पूरा करते हुए सभी कर सकती है। आवश्यकता है तो केवल पुरुष के सहयोग की। वे लिखती हैं कि ''यदि पुरुष पख काटकर सोने के पिजरे मे बन्द पक्षी के समान स्त्री को अपने प्रतिष्ठा की बन्दिनी न बनावे। यदि विवाह सार्वजनिक जीवन से निर्वासन न बने तो निश्चय ही स्त्री इतनी दयनीय न रह सकेगी। घर से बाहर भी अपनी रूचि, शिक्षा और अवकाश के अनुरूप जो कुछ वह करना चाहे उसमे उसे पुरुष के सहयोग और सहानुभूति की अवश्य ही अपेक्षा रहेगी और पुरुष यदि अपनी वशक्रमागत अधिकार युक्त अनुदार भावना को छोड़ सकेतो बहुत सी कठिनाइयाँ स्वय ही दूर हो जावेगी।''[109]

'हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व' शीर्षक मे उन्होंने स्त्रियों की दयनीय और विवशता पूर्ण सामाजिक स्थिति का गहराई से विचार किया है और स्वीकार किया है कि भारतीय समाज में कन्या का जन्म ही विवाह के बाजार मे बिकने के लिए हुआ है तथा उसके दो ही कर्तव्य माने गये हैं - पत्नीत्व तथा मातृत्व। सबसे बड़ी विवशता यह है कि विवाह भी स्वेच्छा से नही, वरन् आर्थिक कठिनाइयों का समाधान प्रमुख कारक है। महादेवी लिखती हैं कि स्वाभाविक रूप से विवाह में किसी व्यक्ति के साहचर्य की इच्छा प्रधान होनी चाहिये। आर्थिक कठिनाइयो की विवशता नहीं।''[111] भारतीय पुरुष के लिए विवाह की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वे लिखती हैं-'इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरजन के लिए रग-बिरगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियों के समान ही वह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है। हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय गुलाब सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए। उस समय उस असमय प्रौढ़ा, कई दुर्बल सन्तानों की रोगिनी पीली माता में कौन-सी विवशता कौन-सी रुला देने वाली करूणा न मिलेगी।''[112] महादेवी स्त्री के लिए स्वावलम्बन को आवश्यक मानते हुए कन्या के माता-पिता को यह सलाह देती हैं कि -''माता-पिता को बाध्य होना चाहिये कि वे अपनी कन्याओं की अपनी-अपनी रूचि तथा शक्ति के अनुसार कला, व्यवसाय आदि की ऐसी शिक्षा पाने दें, जिससे उनकी शक्तियाँ भी विकसित हो सके और वे इच्छा तथा आवश्यकतानुसार अन्य क्षेत्रों में कार्य भी कर सकें।''[113]

'जीवन का व्यवसाय' शीर्षक मे महादेवी ने स्त्रियो मे उपेक्षित एक अन्य वर्ग वारागनाओ की समस्याओ का विवेचन किया है तथा पुरुष समाज को ही वेश्याओ द्वारा रूप की हाट लगाने का उत्तरदायी माना है, जो अपने लिए सस्ते मनोरजन की पूर्ति वेश्याओ के माध्यम से करता हे। यदि वेश्याओ के जीवन पर दृष्टिपात किया जाय तो महादेवी का मानना है कि निश्चय ही देखने वाला काँप उठेगा। उसके हृदय मे प्यास है, परन्तु उसे भाग्य ने मृगमरीचिका में निर्वासित कर दिया है। उसे जीवनभर आदि से अन्त तक सोन्दर्य की हाट लगानी पड़ी, अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओं को कुचलकर, आत्मसमर्पण की सारी इच्छाओ का गला घोंटकर, रूप का क्रय विक्रय करना पड़ा- और परिणाम मे उसके हाथ आया-निराश हताश एकाकी अन्त।''[114] पुरुष की स्वार्थी प्रवृत्ति की ओर सकेत करते हुए वे स्वीकार करती हैं कि पुरुष ने अपनी वासनाग्नि की सतुष्टि के लिए कुछ स्त्रियो को इस पद पर रख दिया और उन स्त्रियो को समाज से बहिष्कृत कर दिया तथा यह प्रचारित किया कि वे स्वेच्छा से यह कार्य कर रही है। अत समाज की उनसे कोई सहानुभूति भी नही है। महादेवी समाज के कथित ठेकेदारो के सामने यह प्रश्न रखती है कि क्या समान परिस्थितियों मे समाज किसी पुरुष का चारित्रिक पतन होने पर उससे सामाजिकता का अधिकार छीन लेगा? निश्चय ही समाज ऐसा नही करेगा। पुरुषों को वही मान सम्मान प्राप्त होता रहता है। इस निबन्ध के द्वारा महादेवी ऐसी स्त्रियों के करूण और विवशतापूर्ण जीवन पर गम्भीर आक्रोश व्यक्त करती हैं।

'स्त्री के अर्थ-स्वातन्त्रय का प्रश्न' शीर्षक में महादेवी ने स्त्रियो की आर्थिक परवशता को अपना लक्ष्य बनाया है। प्राचीन समाज में इस समस्या के समाधान के लिए ही विवाह की आवश्यकता को अनिवार्य बताते हुए वे लिखती हैं कि "भारतीय स्त्री के सम्बन्ध में पुरुष का भर्ता नाम जितना यथार्थ है उतना सम्भवत और कोई नाम नही। स्त्री पुत्री, पत्नी, माता आदि सभी रूपों मे आर्थिक दृष्टि से कितनी परमुखापेक्षिणी रहती हैं, यह कौन नहीं जानता।''[115] यद्यपि आधुनिक नारी ने आर्थिक परवशता को दूर करने के लिए प्राचीन सामाजिक बन्धनों को तोड़ने का प्रयास तो आरम्भ किया है लेकिन केवल कुछ स्त्रियों का प्रयास ही पर्याप्त नही वरन् आवश्यकता है-सम्पूर्ण नारी समाज के जागृत होने की। इस सम्बन्ध मे समाज के उत्तरदायित्व की ओर सकेत करते हुए तथा उसे चेतावनी देते हुए वे लिखती हैं-'समाज यदि स्वेच्छा से उनके अर्थ सम्बन्धी वैषम्य की ओर ध्यान न दे, उसमें परिवर्तन या सशोधन को आवश्यक न समझे तो स्त्री का विद्रोह दिशा हीन आँधी जैसा वेग पकड़ता जाएगा और तब एक निरन्तर ध्वस के अतिरिक्त समाज उससे कुछ न पा सकेगा।''[116]

'हमारी समस्यायें' शीर्षक में महादेवी ने शिक्षित और अशिक्षित महिला वर्ग में विद्यमान अन्तर का विवेचन करते हुए शिक्षित महिलाओं पर ही समाज की अशिक्षित बालिकाओं और युवाओं को अच्छे सस्कार

और अच्छी शिक्षा देने का गुरु कर्तव्य डाला है। समाज में विद्यमान कुछ शिक्षित महिलाओ द्वारा स्वतन्त्रता को उच्छृखलता के रूप में लेने को वे अनुचित बताती हैं तथा उनसे वे पुरुषों के समान हृदयहीन कठोरता को छोडकर अपने समाज की दयनीयता को समाप्त करने का आग्रह करती हें। महादेवी का मानना है—'ज्ञान के वास्तविक अर्थ मे ज्ञानी, शिक्षा के सत्य अर्थ मे शिक्षित वही व्यक्ति कहा जाएगा, जिसने अपनी सकीर्ण सीमा को विस्तृत, अपने सकीर्ण दृष्टिकोण को व्यापक बना लिया है।'[117]

'समाज और व्यक्ति' में महादेवी ने आदिकाल से ही व्यक्ति द्वारा समाज की आवश्यकता के कारणो का विश्लेषण करते हुए आधुनिक समाज की विशेषताओ पर भी प्रचुर प्रकाश डाला है। समाज को परिभाषित करते हुए वे लिखती हैं—'समाज ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिन्होने व्यक्तिगत स्वार्थों की सार्वजनिक रक्षा के लिए अपने विषम आचरणों मे साम्य उत्पन्न करने वाले कुछ सामान्य नियमो से शासित होने का समझोता कर लिया है।'[118] वे मानती हैं कि समाज की रचना पारस्परिक सद्भाव, स्नेह तथा स्वजाति के हितो की रक्षा तथा विजाति से युद्ध के समय शक्ति को सगठित करने के उद्देश्य से हुई है। समाज और व्यक्ति परस्पर सापेक्ष हैं, वे लिखती है कि "व्यक्ति के स्वत्वो की रक्षा के लिए समाज बना है और समाज के अस्तित्व के लिए व्यक्ति की आवश्यकता रहती है।"[119] समाज के लिए शारीरिक और मानसिक विकास में भिन्न होने पर भी सभी व्यक्ति समान रूप से उपयोगी है तथा समाज भी अपनी पूर्णता के लिए सभी व्यक्तियो को उनकी शक्ति तथा योग्यता के अनुसार कार्य देकर उन्हें जीवन की सुविधाएँ प्रदान करता है।

'जीने की कला' शार्षक के अन्तर्गत महादेवी ने स्वीकार किया है कि भारतीय स्त्रियों को जीने की कला ही नहीं आती, इसीलिए समाज में उनकी स्थिति शव के समान है। जिस प्रकार शव किसी भी प्रकार का अपमान किए जाने पर विरोध प्रदर्शित नही करता, वैसी ही स्थिति नारी की है। वे लिखती हैं कि "आज हिन्दू स्त्री भी शव के समान निस्पन्द है। सस्कारों ने उसे पक्षाघात के रोगी के समान जड़ कर दिया है, अत अपने सुख-दुख को चेष्टा द्वारा प्रकट करने में भी वह असमर्थ है।[120] यद्यपि जीवन का पूर्ण रूप से विकास करने वाले सिद्धान्तो से वह परिचित है लेकिन वह न तो उनका उचित उपयोग करती है और न ही उनका अर्थ समझती है। इसीलिए 'जीवन और सिद्धान्त दोनों ही भार होकर उसे वैसे ही सज्ञाहीन किए दे रहे हैं; जैसे ग्रीष्म की कड़ी धूप में शीतकाल के भारी और गर्म वस्त्र पहिने हुए पथिक को उसका परिधान।[121] नारी के लिए विद्या भी केवल विवाह के बाजार मे उसका मूल्य बढ़ाने के लिए है। लेकिन इसका उत्तरदायित्व भी नारियों पर ही है। महादेवी नारियों को उनकी अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी शक्तियों का पूर्ण विकास करने के लिए प्रेरित करती है। उन्होंने स्वीकार किया—कि "जीवन का चित्र केवल काल्पनिक स्वर्ग में विचरण करना नहीं है, किन्तु ससार के कण्टकाकीर्ण पथ को प्रशस्त बनाना भी है। जब तक बाह्य तथा आन्तरिक विकास सापेक्ष नहीं बनते, हम जीना नहीं जान सकते।"[122]

इन निबन्धो के द्वारा महादेवी ने नारी की समस्याओ का गभीर विश्लेषण किया हे। उन्होने अपनी लेखनी से समाज पर जो इतना क्षोभ, इतना तीखापन और तीव्र प्रहार किये हें, उसे उन्होंने अपने अनुभवो द्वारा व्यक्त किया है। इन निबन्धों मे धनी, निर्धन, उच्च, मध्यम, निम्न तथा परम्परागत और आधुनिक नारी की समस्याओ को आकार प्रदान किया गया है। नारी को बधन मे बाधने वाली बेड़ियाँ ही उसके शारीरिक एव मानसिक विकास को अवरुद्ध किए हुए है। नारी न तो जय की आकाक्षी है और न ही पराजय की। वह तो केवल अपना 'स्वत्व' चाहती है और वह भी समाज उसे देने को तैयार नही है। इसका प्रमुख कारण महादेवी ने आर्थिक परतन्त्रता को माना है क्योकि उसकी आर्थिक विषमता का लाभ ही समाज ने सबसे ज्यादा उठाया है लेकिन नारी के लिए विभिन्न कार्यक्षेत्रों को अपनाना ही पर्याप्त नही है वरन् समाज मे समन्वय बनाए रखने के लिए वे स्त्री-पुरुष की पारस्परिक सापेक्षता को अनिवार्य मानती हैं।

महादेवी की मर्मभेदिनी दृष्टि ने नारी जीवन का चित्राकन बड़ी बारीकी से किया है। सामाजिक जीवन की गहरी पर्तो के आरपार उन्होने दृष्टि डाली है और गम्भीरता पूर्वक नारी की सामाजिक स्थिति का मूल्याकन करके पूरे साहित्यिक कौशल के साथ उसका चित्रण किया है। समाज मे उच्च आसन पर पुरुषो को बिठाए जाने को वे अनुचित मानती है। नारी केवल पुरुष की छाया मात्र है और पुरुष के न रहने पर उसका भी अस्तित्व नहीं रहता। समाज मे स्त्री की दशा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए वे लिखती हैं कि "स्त्री-पुरुष के वैभव की प्रदर्शिनी मात्र समझी जाती है और बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानो से उठाकर फेक दिए जाते हैं, उसी प्रकार एक पुरुष के न रहने पर उसका कोई उपयोग नही रह जाता है।"[123] अकाल वैधव्य के बाद नारी की जैसी स्थिति हो जाती है, उसे देखकर तो पाठक का मन समाज के प्रति तीव्र आक्रोश और घृणा से भर जाता है। माहदेवी समाज को इस बात का अल्टीमेटम देती हैं कि—"समाज को किसी न किसी दिन स्त्री के असन्तोष को सहानुभूति के साथ समझकर उसे ऐसा उत्तर देना होगा, जिसे पाकर वह अपने आपको उपेक्षित न माने और जो अपन मातृत्व के गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखकर उसे नवीन युग की सन्देशवाहिका बना सकने में समर्थ हो।"[124] युगचेतना से अनुप्राणित यह महादेवी की विद्रोही वाणी है जो अपने मे करोड़ों बिजलियों से भी अधिक तीव्र आवेग को समाये हुए हैं। महादेवी ने वेश्याओ की पीड़ा को भी पूरी शिद्दत से महसूस किया है। समाज उनको बाध्य करता है कि वे इस व्यवसाय को स्वीकार करें और उनके लिए इसे अपनाना हत्या करने के समान है। महादेवी लिखती है—ऐसे सजीव व्यक्ति को एक ऐसे गर्हित व्यवसाय के लिए बाध्य करना, जिसमें उसे जीवन के आदि से अन्त तक उमड़ते हुए आँसुओं को अजन से छिपाकर सूखे हुए अधरों को मुस्कराहट से सजाकर और प्राणों के क्रन्दन को कण्ठ में ही फसाकर धातु के कुछ टुकड़ों के लिए अपने आपको बेचना होता है, हत्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"[125] इस

प्रकार की उद्भावना एक ओर समाज मे वेश्याओ के मृतवत् जीवन का चित्रण करती है और दूसरी ओर पाठकों के अवचेतन मन को झकझोर देती है। यद्यपि वेश्या वृत्ति को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया है लेकिन समाज मे आज भी वेश्याओ का होना इस बात की स्पष्ट घोषणा है कि जब तक वेश्याओ का अस्तित्व है, तब तक समाज नैतिकता का दावा नहीं कर सकता।

यद्यपि वर्तमान समाज में नारी पर होने वाले अत्याचारो के स्वरूप मे काफी अन्तर आ गया है, लेकिन इसका समूल नाश होना आवश्यक है। इसके लिए समाज और नारी वर्ग के मध्य निरन्तर द्वन्द्व होता रहेगा। भारतीय नारी की हीन दशा के सम्बन्ध मे महादेवी निराश नही थी। उन्होने लिखा है कि—"भारतीय नारी भी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राण प्रवेग से जाग सके, उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए सम्भव नही।"[126] श्री गगा प्रसाद पाण्डेय ने 'शृखला की कडियाँ' के विषय मे लिखा हे—"अपने व्यग्य की मर्मान्तिक झड़ियो से ही वे सामाजिक व्यवस्था के सृजन-बीजो का वपन बड़ी साधना से कर जाती हैं। नारी जाति की सस्कार-जड़ता, उसकी आर्थिक हीनता तथा उसके प्रति पुरुष की एकान्त स्वार्थपरता का इतना सजीव स्वरूप उन्हाने हमारे सामने रखा है कि उससे बड़े-बड़े पुरुष-पुगवों को भी लज्जा से अपना सिर झुका देना पड़ता है। मानव जीवन की पूर्णता स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की सापेक्षता पर कितनी आश्रित है, इस बात का पता हमें 'शृखला की कड़ियाँ से चलता है।"[127]

'साहित्यकार की आस्था तथा अन्यनिबन्ध' महादेवी के आलोचनात्मक निबन्धो का सग्रह हैं। इसके दो निबन्धों को छोड़कर शेष निबन्धों का प्रकाशन 'महादेवी के विवेचनात्मक गद्य' के नाम से पहले ही हो चुका है। इन निबन्धों में साहित्य के शाश्वत और सनातन सिद्धान्तों पर निष्पक्ष और तर्कबद्ध ढग से विचार किया गया है। इन निबन्धों कीरचना का कारण सम्भवत छायावाद को शैशव मे कोई सहृदय आलोचक न मिलने को माना जा सकता है। पीढ़ियों के मध्य सघर्ष तो निरन्तर होता रहा है किन्तु इससे उत्पन्न भ्रम की स्थिति को समाप्त करने के लिए किसी न किसी को आगे आना पड़ता हैं। ऐसी स्थिति में महादेवी ने छायावाद के सम्बन्ध में साहित्य जगत में छाई हुई भ्रान्तियों का निवारण करने के लिए इन निबन्धों की रचना की है। छायावाद का सम्यक् अनुशीलन करने के साथ-साथ साहित्य के शाश्वत और सनातन सिद्धान्तो पर भी निष्पक्ष और तर्कबद्ध ढग से विचार किया गया है। एक कवि द्वारा गद्य सृजन की ओर उन्मुख होने के कारण इनमें विचारों को मात्र तर्कबद्ध रूप में प्रस्तुत न करके लाक्षणिकता का भी आश्रय लिया गया है। इस निबन्ध सग्रह के सम्बन्ध में गंगा प्रसाद पाण्डेय लिखते हैं कि—"उनके सुलझे विचारों की शक्तिमत्ता, उनके सूक्ष्म निरीक्षण की निष्ठा, उनके आत्मानुभूत सिद्धान्तों की प्रतिपादना और उनकी जीवनदर्शन की व्यापकता से सरक्षित और सचालित उनका आलोचक सूक्ष्म और स्वस्थ अभिप्रायों के उद्बोधन मे अद्वितीय हैं, यह मेरी

दृढ धारणा है।''[128] छायावाद ने अपने जन्म के साथ ही नये-नये काव्यगत सिद्धान्तो नये काव्यालोचनो ओर नये काव्यशास्त्र को भी जन्म दिया। इन सभी से परिचत कराने के दायित्व का निर्वहन भी छायावादी कवियो को करना पड़ा। इस सग्रह मे सकलित निबन्ध इसी तथ्य की ओर सकेत करते है—

'साहित्यकार की आस्था' के अन्तर्गत महादेवी ने सर्वप्रथम 'आस्था' शब्द की व्याख्या की है और उसे अस्तित्व और स्थिति दोनों का समावेश माना है, जिसे आस्तिक से लेकर नास्तिक तक सभी स्वीकार करते हैं। साहित्यकार के लिए आस्था का महत्व सर्वाधिक है ओर आस्था का निर्माण समाज विशेष तथा युग विशेष के सन्दर्भ में ही होता है। महादेवी लिखती हैं कि आस्था किसी अन्य कर्म व्यापार के परिणाम को प्रभावित कर सकती है, परन्तु साहित्य को तो वह स्पदित ओर दीप्त जीवन देती है।''[129] साहित्यकार आस्था के बल पर ही अपने जीवन को साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। आस्था स्थिर तत्व है नहीं है वरन् जैसे-जैसे मनुष्य के लिए नये-नये क्षितिज खुलते गये वैसे-वैसे उसकी आस्था का आयाम भी विस्तृत होता गया है। आस्था निर्माण के समय तो व्यक्तिगत हाती है परन्तु उसका प्रसार समष्टिगत होता है।

'काव्यकला' के अन्तर्गत महादेवी ने अपनी काव्यगत मान्यताओ को स्पष्ट करते हुए सत्य को काव्य का साध्य और सौन्दर्य को उस काव्यगत साध्य को प्राप्त करने का साधन माना है। यद्यपि सत्य व्यापक होता है परन्तु व्यक्ति की सीमा में आकर वह व्यक्तिगत हो जाता है। इस प्रकार सत्य व्यक्ति के साथ सापेक्ष परन्तु अपनी व्यापकता में निरपेक्ष बना रहता है। बाह्य जगत तथा अन्तर्जगत मे व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए काव्य तथा कलाओं को माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया है। 'काव्यकला' मे महादेवी ने बुद्धि और अनुभूति दोनों को ही महत्वपूर्ण माना है लेकिन उन्होंने अनुभूति को अधिक व्यापक माना है। वे लिखती हैं कि 'अनुभूति अपनी सीमा में जितनी सबल है उतनी बुद्धि नहीं। हमारे स्वय जलने की हलकी अनुभूति भी दूसरे के राख हो जाने के ज्ञान से अधिक स्थायी रहती है।''[130] बुद्धि अपने विषय को ज्ञान के अनन्त विस्तार के साथ रखकर देखती है परन्तु अनुभूति अपने विषय पर ही केन्द्रित होकर उस जीवन की अनन्त गहराई तक ले जाती है। इस प्रकार महादेवी ने काव्य कला में बुद्धि और अनुभूति दोनो का समन्वय यह कहते हुए कर दिया है कि—''काव्य या कला मानों इन दोनों का सन्धिपत्र है, जिसके अनुसार बुद्धिवृत्ति झीने वायुमण्डल के समान बिना भार डाले हुए ही जीवन पर फैली रहती है और रागात्मिका वृत्ति उसके धरातल पर, सत्य को अनन्त रग रूपों मे चिर नवीन स्थिति देती रहती है। अत काव्य कला का सत्य जीवन की परिधि में सौन्दर्य के माध्यम द्वारा अखण्ड सत्य है।''[131] कलाकार अपनी अनुभूति को इस तरह से व्यक्त करता हैं कि वह अनुभूति जनसाधारण को अपनी अनुभूति जैसी लगने लगती है। वे लिखती है कि'इसी से कलाकारों के मठ नहीं निर्मित हुए, महन्त नहीं प्रतिष्ठित हुए, साम्राज्य नहीं स्थापित हुए और सम्राट नहीं अभिषिक्त हुए।''[132]

महादेवी ने कवि और दार्शनिक का कार्य पर्याप्त भिन्न माना है। दार्शनिक बुद्धि द्वारा अन्तर का बोध कराकर एकता की ओर निर्देश करता है और कवि हृदय द्वारा एकता की अनुभूति देकर अन्तर की ओर सकेत करता है। काव्य में अनुभूति प्रधान हैं और दर्शन मे बुद्धि। महादेवी ने कला को दो रूपो मे विभाजित किया— उपयोगी कला और ललितकला। ललित कला के अन्तर्गत कविता को सबसे ऊपर रखा है और सर्वोत्कृष्ट भी माना है क्योंकि कविता जीवन की विविधताओं में भी सामजस्य खोज लेती है। महादेवी का मानना है कि काव्य की उत्कृष्टता को समझने के लिए जनसाधारण के हृदय को भी पारस होना चाहिए।

'छायावाद' के सम्बन्ध में फैली हुई अनेक भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करते हुए महादेवी ने इस निबन्ध के माध्यम से अनेक मौलिक स्थापनाये भी प्रस्तुत की। छायावाद के तथाकथित आलोचक कुछ मोटे-मोटे सिद्धात सूत्रो का निर्माण करके उन्ही के आधार पर छायावाद की निरन्तर आलोचना कर रहे थे। महादेवी ने छायावाद को रीतिकालीन प्रवृत्तिया की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न माना। यद्यपि रीतिकालीन सौन्दर्य भावना स्थूल और यथार्थ एकागी था परन्तु उत्कृष्ट अभिव्यजना प्रणाली के कारण विषय से सम्बन्धित उसकी सकीर्णता की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। जब द्विवेदी युग के काव्य मे उपदेशात्मकता एव इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य हुआ तो स्वय कवि को ही वे वर्णन नीरस लगने लगे। ऐसी ही परिस्थिति मे छायावाद का जन्म हुआ। छायावाद के जन्म से पूर्व कविता इस प्रकार बन्धनों मे जकड़ गई थी और सृष्टि के बाह्य आकार की काव्य में इतनी अधिक अभिव्यक्ति हो चुकी थी कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल हो उठा। वे लिखती हैं कि "स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियो का काम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।"[133] महादेवी ने छायावाद को बाहर से आया हुआ न मानकर उसका सम्बन्ध वेदों से और प्राचीन भारतीय सस्कृति से जोड़ा। छायावाद की विशेषताओ से सम्बन्धित महादेवी का निम्न कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है—"छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है,जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव-भूमि पर उसने प्रकृति में विखरी सौन्दर्य-सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति प्रापित की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी, जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामो का भार सम्भाल सकी।"[134] छायावाद की विशेषताओं में महादेवी ने स्वानुभूति की प्रधानता, प्रकृति का मानवीकरण, स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह, पलायन वृत्ति आदि के सम्बन्ध में शोधपरक, तथ्यपरक और पारदर्शी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

'रहस्यवाद' शीर्षक मे महादेवी ने काव्य मे व्यक्त रहस्यवाद को कबीर, सूफी और दर्शन के रहस्यवाद से भिनन माना है क्योकि उसमें रहसयवाद के रागात्मक रूप के लिए स्थान नही है और इनका रहस्यवाद साधनात्मक और यौगिक क्रियाओं से युक्त है। रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए महादेवी ने लिखा है—"मानवीय सम्बन्धों में जबतक अनुराग-जनित आत्म विसर्जन का भाव नही घुल जाता, तब तक वे सरस नही हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती, तब तक हृदय का अभाव दूर नही होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना, इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद नाम दिया गया।"[135] काव्य मे व्यक्त रहस्यवाद ने पूर्व प्रचलित सभी परम्पराओ की प्रमुख विशेषताओ का अपने मे समाहार कर लिया। महादेवी स्वीकार करती हैं कि—"उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली ओर इन सबको कबीर के साकेतिक दाम्पत्यभाव सूत्र मे बाधकर एक निराले स्नेह सबध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।"[136] रहस्यवाद की परम्परा पूर्णतया भारतीय है, जिसके स्रोत हमें वेदो में मिलते हैं। रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा के मध्य माधुर्य-भाव-सम्बन्ध स्थापित किया गया है और पुरुष तथा नारी के चरित्र का आरोपण आत्मा और परमात्मा पर कर दिया जाता है, महादेवी ने भी इसे उचित माना है क्योंकि नारी की सामाजिक स्थिति इसका समर्थन करती है। जिस प्रकार नारी अपना कुल, गोत्र आदि छोडकर पति का कुल, गोत्र स्वीकार कर लेती है और अपने आपको पति को पूर्णतया समर्पित कर देती है उसी प्रकार आत्मा स्वय को परमात्मा में लीन कर देती हैं अत नारी के रूपक द्वारा आत्मा का परमात्मा में लय हो जाना सहज ही मे सम्भव हो जाता है। महादेवी ने काव्यगत रहस्यवाद को पश्चिमी रहस्यवाद और ईसाईमत के रहस्यवाद से भिन्न माना है। पश्चिमी रहस्यवाद ब्रह्म जीव की एकता को महत्व नहीं देता वरन् ब्रह्म और जगत के विम्ब-प्रतिबिम्ब भाव मे अपनी स्थिति मानता है और ईसाई मत का रहस्यवाद धर्म क अन्तर्गत ही रहा अत वह स्वय एक सम्प्रदाय के भीतर सम्प्रदाय बन गया। महादेवी ने हिन्दी काव्य में रहस्यवाद को वहाँ से प्रारम्भ माना है—"जहाँ दोनो ओर के तत्वदर्शी एक असीम आकाश के नीचे ही नहीं, एक सीमित धरती पर भी साथ खड़े हो सके। अत दोनों ओर की विशेषतायें मिलकर गगा-यमुना के संगम से बनी त्रिवेणी के समान एक तीसरी काव्यधारा को जन्म देती हैं। इस काव्यधारा के पीछे ज्ञान के हिमालय की शत-शत तुषार-धवल उन्नत चोटियाँ हैं और आगे भाव की हरी भरी पुष्पदुकूलिनी असीम धरती। इसी से इसे निरन्तर गतिमय नवीनता मिलती रह सकी।"[137] स्पष्ट है कि महादेवी ने रहस्यवाद को परम्परा से जोड़ते हुए उसके सम्बन्ध में अनेक मौलिक उद्‌भावनायें प्रस्तुत की हैं।

जब से मनुष्य ने सुख-दुख का अनुभव करना शुरू किया तब से उसने अपनी इन भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए गीत को माध्यम के रूप में चुना। इसलिए महादेवी गीतो को मानव के सुख-दुखो के समान चिरन्तन मानती है। गीत को परिभाषित करते हुए उन्होने लिखा—"सुख-दुख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दो मे स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना गीत है।"[138] गीत के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए महादेवी ने उसकी परम्परा वेदो से जोड़ी है। वेदो से यह बौद्ध धर्म ने ली, वहाँ से सस्कृत साहित्य मे आई और फिर हिन्दी गीतिकाव्य में इन सब प्राचीन गीति पर परम्पराओ की प्रवृत्तियो का समावेश होना स्वाभाविक ही था। महादेवी वर्तमान युग को गीति प्रधान युग मानती है क्योकि आज के व्यस्त और व्यक्तिगत जीवन में मनुष्य को अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए और कोई माध्यम ही उपयुक्त नही लगता। उनहोने लिखा है—"आज हमारा हृदय तो हमारे लिए ससार है। हम अपनी प्रत्येक सास का इतिहास लिख लेना चाहते हैं, अपने प्रत्येक कम्पन को अकित करने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं।"[139] गीतों के साथ महादेवी ने लोकगीतों को भी पर्याप्त महत्व देते हुए लिखा है कि—"हमारा यह बिना लिखा गीति काव्य भी विविध रूपी है और जीवन के अधिक समीप होने के कारण उन सभी प्रवृत्तियों के मूलरूपो का परिचय देन मे समर्थ है, जो हमारे काव्य मे सूक्ष्म और विकसित होती रह सकी।"[140]

'यथार्थ और आदर्श- नामक निबन्ध में महादेवी काव्य के अन्तर्गत जीवन मे व्याप्त मे महादेवी काव्य के अन्तर्गत जीवन मे व्याप्त विविधताओ और एकता की अभिव्यक्ति के लिए यथार्थ और आदर्श दोनो को महत्वपूर्ण मानती है। इनका उद्‌गम क्षेत्र तो एक है परन्तु स्वरूप में दोनो अलग-अलग है। जैसा है और जैसा होना चाहिए क्रमश यथार्थ और आदर्श के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। वे लिखती है कि—"जीवन यथार्थ मे जैसा है और हमारी परिपूर्ण कल्पना में जैसा है, यही हमारा यथार्थ और आदर्श है।"[141] काव्य मे दोनो के उचित समन्वय पर महादेवी बल देती हैं क्योंकि तभी काव्य सार्थक होता है। उनका मानना है कि—"न यथार्थ का कठोरतम अनुशासन आदर्श के सूक्ष्म चित्राधार पर कालिमा फेर सकता है और न आदर्श का पूर्णतम विधान यथार्थ को शून्य आकाश बना सकता है।"[142] महादेवी का मानना है कि जब हमने आदर्श को अमूर्त और यथार्थ को एकागी मानकर चित्रण किया तो आदर्श बौद्धिक समस्याओं ओर प्राणहीन सिद्धान्तों में उलझकर रह गया और यथार्थ में पाशविक वृत्तियों का चित्रण ही प्रधान होकर रह गया। हमने काव्य में दोनों के सामंजस्य पर बल नहीं दिया और इसी कारण समग्रजीवन में व्याप्त ध्वस के युग को समाप्त करना कठिन होता गया। वे लिखती है कि—"एक ओर हम यह भूल गए कि आदर्श की रेखाएँ कल्पना के सुनहले रुपहले रंगों से तब तक नहीं भरी जा सकी, जब तक उन्हें जीवन के स्पन्दन से न भर दिया जाये और दूसरी

ओर हमें यह स्मरण नही रहा कि यथार्थ की तीव्रधारा को दिशा देने के पहले उसे आदर्श के कूलो का सहारा देना आवश्यक है।"[143] महादेवी ने यथार्थ और आदर्श को परस्पर पूरक माना है। यद्यपि वे प्रथम दृष्ट्या भिन्न दिखते हैं लेकिन उनकी गति विपरीत दिशा की ओर उन्मुख होकर भी जीवन की परिधि को दोनो ओर से स्पर्श करने का समान लक्ष्य रखती है। यथार्थ से आदर्श की ओर जाने का क्रम व्यक्ति में विद्यमान सामजस्य भावना के विकसित रूप पर निर्भर करता है क्योंकि यथार्थ मे व्याप्त विषमताओ को तभी जान सकते हे जब हम सामजस्य से परिचित हो। जबकि आदर्श मे हम यथार्थ मे व्याप्त सामजस्य और विषमता से ही परिचित होते हैं। महादेवी लिखती हैं—"जीवन में वह यथार्थ, जिसके पास आदर्श का स्पन्दन नही, केवल शव है और वह आदर्श,जिसके पास यथार्थ का शरीर नही, प्रेत मात्र है।"[144] यथार्थ और आदर्श नामक निबन्ध मे महादेवी प्रतिक्रिया से उत्पन्न यथार्थोन्मुखता के आत्मनाशक परिणामों से हमें सावधान करती है।

'सामयिक समस्या' के अन्तर्गत महादेवी ने यथार्थ का कुत्सित और उत्तेजक चित्रण करने वाले प्रगतिवाद के स्वरूप का विवेचन-विश्लेषण किया है। महादेवी ने स्वीकार किया है कि छायावाद को अपने जन्म के साथ कोई सहृदय आलोचक नहीं मिला और द्विवेदी युगीन आलोचको के ने छायावाद के कवियो को विक्षिप्त सिद्ध करने में ही सारी शक्ति लगा दी। इस प्रकार 'छायावाद एक प्रकार से अज्ञात कुल शील बालक रहा, जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नही मिल सका।"[145] इसके विपरीत प्रगतिवाद को वे बुद्धि और साम्यवाद का ऐसा पुत्र मानती है "जिसके आविभवि के साथ ही, आलोचक जन्मकुण्डली बना-बनाकर उसके चक्रवर्तित्व की घोषणा में व्यस्त हो गए। स्वय उसके जीवन और विकास के लिए कैसे वायु-मण्डल, कैसी धूप-छाया और कितने नीर-क्षीर की आवश्यकता होगी, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं।"[146] महादेवी ने प्रगतिवाद की सबसे बड़ी कमजोरी यह मानी है कि उसने अपने अस्तित्व के स्थापन के साथ ही उत्कृष्ट साहित्य सृजन करने वाली काव्यधाराओ की इतनी अधिक आलोचना की कि वे अनुपयुक्त लगने लगी। महादेवी प्रगतिवाद की यही सबसे बड़ी हार मानती है क्योंकि उत्कृष्ट कोटि का साहित्य-सृजन ही किसी विचारधारा की उत्कृष्टता का प्रमाण है। वे लिखती है कि—"छायावाद की चिता चुन जाने पर ही नये काव्य को सुन्दर शरीर प्राप्त हो सकेगा, सजीव गाँधीवाद की शव-परीक्षा हो जाने पर ही नवीन साहित्य की प्राण-प्रतिष्ठ होना सम्भव है, ऐसी धारणाएँ शक्ति से अधिक दुर्बलता की परिचायक तो हैं ही, साथ ही वे एक अस्वस्थ मानसिक स्थिति का परिचय देती हैं।"[147] इस निबन्ध में महादेवी ने प्रगतिवाद पर व्यापक रूप से विचार करते हुए विज्ञान, मनोविज्ञान एवं बौद्धिक विकल्पों की स्थिति तथा साहित्य में उसकी उपयोगिता पर विचार-विमर्श किया है। महादेवी प्रगतिवाद का समर्थन तो करती हैं किन्तु प्रगति को वे साहित्य की उस विकासवादी प्रवृत्ति से सम्बन्धित मानती हैं जो जीवन का सहज विकास करने के साथ ही निर्माण की ओर भी उन्मुख रहे।

'हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या' में महादेवी ने विज्ञान के उत्तरोत्तर विकास का मानव-जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया है। विज्ञान ने भौतिक दूरियो को जितना पास कर दिया है उतनी ही मानव-मानव के मध्य विद्यमान निकटता को दूरियाँ में बदल दिया है। वे लिखती हैं कि—"इसी से आज के युग मे मनुष्य पास है, परन्तु मनुष्य का शकाकुल मन पास आने वालो से दूर हाता जा रहा है। स्वस्थ आदान-प्रदान के लिए मनो की निकटता पहली आवश्यकता है।"[148] प्राचीनकाल से ही हमारे देश मे प्राणिमात्र के मध्य ऐसी तत्वगत एकता विद्यमान रही है जिसके कारण भौगोलिक विविधताओं के बावजूद सास्कृतिक दृष्टि से हम एक रह सके और यही कारण है कि "राजनीतिक उत्थान-पतन, शासनगत सीमाये और विस्तार हमारे मन को बाँधने मे असमर्थ ही रहे, अत किसी भी कोने से आने वाले चिन्तन, दर्शन, आस्था या स्वप्न की क्षीणतम चाप भी हमारे हृदय में अपनी स्पष्ट प्रतिध्वनि जगाने में समर्थ हो सके। महादेवी स्पष्ट रूप से मानती हैं कि राजनीतिक इकाई, सास्कृतिक इकाई का पर्याय नहीं बन सकती क्योकि जीवन के बाह्य रूप से सम्बन्ध होने के कारण राजनीतिक इकाई बल से भी प्राप्त हो सकती है परन्तु सास्कृतिक इकाई का निर्माण आत्मा की मुक्तावस्था मे ही होता है। इस वैज्ञानिक युग में हमे अपनी मानवीय सवेदना को जागृत रखना होगा तभी सास्कृतिक परम्परा का गौरव बढेगा। आधुनिक सुख-सुविधाओ से सम्पन्न इस युग में जितना वैज्ञानिक विकास हुआ उतना ही अब प्रदेश, भाषा, जाति तथा धर्म के आधार पर मत विभाजन भी समाज में विद्यमान हैं। अत महादेवी आधुनिक युग के मनुष्यों को सावधान करते हुए अपने निबन्ध का समापन इन शब्दों मे करती है— "हम विश्व भर से परिचय की यात्रा में निकलने के पहले यदि अपने देश के हर कोने से परिचत हो लें, तो इसे शुभ शकुन ही मानना चाहिए। यदि घर में अपरिचय के समुद्र से विरोध और आशका के काले बादल उठते रहें, तो हमारे उजले सकल्प पथ भूल जायेगे। अत दूरी को निकटता बनाने के मुहूर्त में हमें निकट की दूरी से सावधान रहने की आवश्यकता है।"[150]

छायावादी काव्य के सृजन के पूर्व किसी भी कृति की आलोचना परम्परागत सिद्धान्तों जैसे रस,ध्वनि,अलकार, वक्रोक्ति, छन्द आदि की कसौटी पर की जा रही थी, इस कसौटी में थोड़ा अन्तर रामचन्द्र शुक्ल के आलोचना के क्षेत्र में प्रवेश करने पर हुआ, जहाँ पर उन्होंने आलोचना के परम्परागत तत्वों के साथ धर्म, नीति और लोकमगल का भी समावेश किया। लेकिन उन्होंने तुलसी के काव्य को आदर्श रूप में अपने सामने रखा। इसलिए कोई भी नये सिद्धान्त का निर्माण करने से पूर्व वे तुलसी के काव्य से उसकी पुष्टि जरूर किया करते थे लेकिन छायावादी कवियों ने जब आलोचना का भार भी ग्रहण कर लिया तो उन्होंने परम्परागत आलोचना सिद्धान्तों का बहिष्कार कर दिया और कृति का मूल्याकन जीवन के विकासशील तत्वों के साथ कवि के जीवनव्यापी अनुभवों और अभिव्यक्ति कौशल के आधार पर करने लगे जिसका परिणाम

यह हुआ कि उस युग के साहित्य का तो व्यापक आधार पर समर्थन हुआ ही और द्विवेदीयुगीन आलोचको के कठोर व्यग्यबाणों से आहत कवि मन को भी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

छायावाद को अपने जन्म के साथ ही विदेशी धरती से आया हुआ सिद्ध करने की जो परम्पर चल रही थी अथवा उसे बगला साहित्य का अनुकरण सिद्ध करने के जो प्रयास किया जा रहे थे या अभिव्यक्ति की एक प्रणाली मानकर जो विवाद उठाए जा रहे थे, उन विवादों का समाहार महादेवी ने अपने इन निबन्धों के माध्यम से किया और छायावाद, रहस्यवाद के साथ-साथ अन्य काव्यगत सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे एक नई दृष्टि विकसित की। इसमें महादेवी ने साहित्य के लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन तो किया ही है साथ ही अन्तिम निबन्ध के माध्यम से आज के वैज्ञानिक युग की समस्या का भी विश्लेषण किया है। 'वीणा' में इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए कहा गया है—"इन निबन्धों के द्वारा आज के इस धूम्राच्छन्न सघर्षयुग मे हमारी भटकी हुई साहित्यिकता को इससे रोशनी और दिग्दर्शन प्राप्त होगा। भ्रान्ति और कषायोत्तेजित रुग्ण चिता से हम मुक्त हो सकेंगे और एक अलिप्त सतुलित चितन का माद्दा हममे पैदा होगा।[151] 'विशाल भारत' में डॉ नगेन्द्र की टिप्पणी भी मूल्यवान है। वे लिखते हैं कि—सारत महादेवी के ये निबन्ध काव्य के शाश्वत सिद्धान्तों के अमर व्याख्यान है। आज साहित्यिक मूल्यों का बवण्डर में भटका हुआ जिज्ञासु इन्हे आलोक स्तम्भ मानकर बहुत कुछ स्थिरता पा सकता है।"[152]

'क्षणदा' महादेवी के ललित निबन्धों का सग्रह है जिसका प्रकाशन सन् 1956 में हुआ है। 'क्षणदा' में सगृहीत प्रथम निबन्ध 'करुणा का सदेश वाहक' में महादेवी ने भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व, उनकी कठोर तपस्या, बौद्धधर्म के उपदेशों प्रचार-प्रसार आदि का विवेचन किया है। महादेवी ने बुद्ध के व्यक्तित्व में विपरीत विशेषताओ का सम्मिलन देखती हैं—1 कठोर बुद्धिवाद 2 कोमल मानवीय तत्त्व। बुद्ध को वे घोर तार्किक मानती है और जो तार्किक रूप से सिद्ध नहीं होता उसे बुद्ध स्वीकार नहीं करते। लेकिन उनकी शुष्क बौद्धिकता मे मानवीय सौहार्द की अतिव्याप्ति को वे आश्चर्यजनक मानती है। महादेवी बुद्ध को ऐसा धर्म सस्थापक मानती है "जिन्होंने मनुष्य के सबधों में सामजस्य लाने के लिए परमात्मा की मध्यस्थता नहीं स्वीकार की, मनुष्यता उत्पन्न करने के लिए किसी पारलौकिक अस्तित्व का सहारा नहीं लिया।'[153] महादेवी ने बुद्ध को बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार का श्रेय भी दिया है। वे इस बात पर दुख प्रकट करती है कि बुद्ध ने देवता के अस्तित्व को अस्वीकार किया, "विडम्बना यह है कि—'ऐसे पूर्ण मनुष्य को मनुष्य न फिर देवताओं में निर्वासन दे डाला।"[154] बौद्ध दर्शन में व्याप्त निराशावाद को भी महादेवी उचित नहीं मानती क्योंकि दुख के ज्ञान के अभाव में मनुष्य सुख को नहीं जान सकता। कुछ अन्तर रहने पर भी महादेवी ने बौद्धधर्म की विचारधारा के कुछ अशों का उपदिषदों की विचारधारा से साम्य दिखाया है।

'सस्कृति का प्रश्न' में महादेवी ने वर्तमान युग में सस्कृति के प्रश्न को उठाने को व्यर्थ मानती हैं पर शस्त्रो की झनझनाहट शात हो जाने पर सास्कृतिक चेतना फिर प्रबल हो जाएगी, ऐसा महादेवी का विश्वास है। सस्कृति का ज्ञान किसी मानवसमूह के साहित्य, कला, दर्शन आदि के ज्ञान और भाव के ऐश्वर्य से ही सभव नही होता वरन् उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति के साधारण शिष्टाचार भी उसका ज्ञान कराने मे समर्थ है। सस्कृति को वे केवल निर्माण ही नहीं वरन् निर्मित तत्वों की खोज भी मानती हैं। एक देश की सस्कृति दूसरे देश की सस्कृति से भिन्न जान पड़ती है लेकिन उनमें एक तत्वगत एकता विद्यमान रहती है। भारतीय सस्कृति के सबध मे महादेवी का विचार है—"सस्कृति विकास के विविध रूपो की समन्वयात्मक समष्टि हैं और भारतीय सस्कृति विविध सस्कृतियों की समन्वयात्मक समष्टि है।"[155] भारतीय सस्कृति की मुख्य प्रवृत्ति समन्वयत्मकता की ओर सकेत करते हुए महादेवी लिखती हैं—"भारतीय सस्कृति निश्चित पथ काँट-छाँट कर निकाली हुई नहर नहीं, वह तो अनेक स्रोतों को साथ ले अपना तट बनाती और पथ निश्चित करती हुई बहने वाली स्रोतस्विनी हैं। उसे अधकार भरे गर्तों में उतरना पड़ा है, ढालों पर विछलना पड़ा है, पर्वत जैसी बाधाओ की परिक्रमा कर मार्ग बनाना पड़ा है, पर इस लबे क्रम उसने अपनी समन्वयात्मकता शक्ति के कारण अपनी मूलधारा नही सूखने दी।"[156]

'कसौटी पर' नामक निबन्ध में महादेवी ने जीवन की कसौटी का निर्धारण किया है। जीवन के मूल्य के विकसित होने के साथ उसे परखने वाली कसौटियाँ भी विकसित होती गई। वर्तमान समय में विकृतियाँ बहुत बढ़ गई हैं और व्यावहारिक जीवन में उन विकृतियों के मध्य विचित्र एकरूपता भी मिलती है। उदाहरण द्वारा वे इसे स्पष्ट करती है—"जो ग्वाला अठगुना दाम लेकर भी दूध में पानी बिना मिलाए नहीं मानता और अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिए प्रचलित तालिका में से एक भी शपथ नही छोड़ता, उसका मिथ्या मदिर में देवता के चरणों के पास बैठकर धर्म का व्यापार करने वाले पुजारी के मिथ्यावाद का सहोदर है।"[157] विकृतियों को वे विषैली गैस के समान सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त मानती हैं। "जो सौन्दर्य और सत्य की सजीव प्रतिमाओं को भी साँस के साथ खींचकर उदरस्थ कर लेता है और फिर अपने शरीर को तोड़-मोड़कर उन्हे चूर-चूर बनाकर ऐसी स्थिति में पहुँचा देता है, जिसमें वे उस अजगर के शरीर के अतिरिक्त और कुछ नही रहती।"[158] इन विकृतियों से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय बुद्धि, हृदय और कर्म में सामंजस्य है। महादेवी ने सत्य को भी उसी सीमा तक सारवान माना है, जिस सीमा तक वह जीवन की कसौटी पर परखा जा चुका है। प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक कसौटियों में पर्याप्त अन्तर आ गया है, पहले मनुष्य का मूल्य उसके सिद्धान्त की व्यापकता से आँका जाता है और आज सिद्धान्त का महत्व मनुष्य के जीवन की गहराई से ही मापा जा सकता है।

'स्वर्ग का एक कोना' और 'सुई दो रानी' महादेवी के दो यात्रा सस्करण है जो क्षणदा मे सगृहीत हें। यात्रा सस्मरण मे लेखक स्वय तटस्थ रहता है और मार्ग में आने वाले नदी, पर्वत, नाले झरने आदि का नायक के रूप में वर्णन करता है। महादेवी इस वर्णन में पूरी तरह सफल रही हैं। उनके 'स्वर्ग का एक कोना' में श्रीनगर का 'सुई दो रानी' मे बद्रीनाथ की यात्रा का वर्णन है। 'स्वर्ग का एक कोना' मे उस आश्रम का वर्णन महादेवी की लेखनी से बिलकुल सजीव हो उठा है। महादेवी की दृष्टि केवल श्रीनगर की प्राकृतिक सुषमा पर ही नही जाती वरन् वहाँ के बच्चो और नारियों के कठोर और दरिद्र जीवन पर भी गई है या यूँ कहे कि महादेवी का सवदेनशील ह्दय करुणा के व्यापक प्रसार के लिए स्थान निकाल ही लेता है जैसे निम्न उदाहरण में दृष्टव्य है—"प्रकृति ने उन्हें इतना भव्य रूप दिया, परन्तु निष्ठुर भाग्य ने दियासलाई के डिब्बे जैसे छोटे मलिन अभव्य घरों में प्रतिष्ठित कर और एक मलिन वस्त्र मात्र देकर उनके सौंदर्य का उपहास कर डाला और ह्दयहीन विदेशियो ने अपने ऐश्वर्य की चकाचौंध से उनके अमूल्य जीवन को मोल लेकर, मूल्यरहित बना दिया।"[159] महादेवी ने केवल श्रीनगर में देखे हुए बाग और झीलों का ही वर्णन नहीं किया फूलो, शिल्पकलायें, कढ़ाई कला आदि के बारे में भी लिखा है।

'सुई दो रानी तथा डोरा दो रानी' में महादेवी ने इस परम्परा प्रचलित कथा का सदर्भ स्पष्ट किया है। आधुनिक सुख सुविधाओं से हीन प्राचीन समय में यहाँ के निवासी बाहर से आने वालों से सुई और डोरा की ही माँग करते थे वे लिखती है कि—"हमारे परम्परागत सस्कारों का मिटना कितना कठिन है। माँगना छोड़ना तो दूर की बात, उनके ह्दय में कुछ और मागने की इच्छा ही नहीं उत्पन्न होती। प्रत्येक व्यक्ति केवल हजार पाँच सौ सुईयों के सग्रह का स्पप्न देखता है।[160] महादेवी की दृष्टि केवल सुन्दर वस्तुओं पर ही नहीं जाती वरन् बद्रीनाथ में पाई जाने वाली गदगी का भी उन्हाने चित्रण किया है—"सकीर्ण गलियाँ और घर दुर्गन्धिपूर्ण और गदे थे। देखकर सोचा कि जब हम इतने बड़े तीर्थस्थान को भी स्वच्छ और सुन्दर नहीं रख सकते, तब किसी और स्थान को स्वच्छ रखने की आशा तो दुराशामात्र है।"[161] स्पष्ट है कि इन यात्रा सस्मरणों मे महादेवी ने बद्रीनाथ और श्रीनगर की यात्रा का मनोरम वर्णन किया है।

'कला और हमारा चित्रमय साहित्य' में महादेवी ने मानवजीवन को रागात्मक तथा इतिवृत्तात्मक अनुभूतियो का सघात माना है, जिनमें से एक मनुष्य को व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी बनाती है तथा दूसरी व्यावहारिक जीवन में आने वाली कठोरता को सरस बनाकर मानव के सम्मुख विकास का सुन्दरतम् आदर्श कला के माध्यम से प्रस्तुत करती है। मनुष्य के अन्दर सत्य का क्रियात्मक और रहस्यमय अश छिपा है, इस सत्य का सौन्दर्य में रागात्मक प्रकाशन ही कला के सत्यम्, शिवम्, सुन्दर की अभिव्यक्ति करता है। कलाकार तभी सफल है, जब वह जीवन तथा विश्व में छिपी हुई सुंदरता तथा कुरुपता, दुर्बलता तथा शक्ति,

पूर्णता तथा अपूर्णता की सामजस्यपूर्ण रागात्मक अभिव्यक्ति कला के माध्यम से कर सके। कला को वे जीवन की सगिनी मानती हैं जो सभी परिस्थितियों में मनुष्य के साथ रहेगी। महादेवी उसी को कलाकार की सज्ञा देती है, "जो कल्पना को सौन्दर्यमय आकार देगा, उसमें वास्तविकता का रग भरेगा और उससे जीवन सगीत की सुरीली लय की सृष्टि कर देगी।"[162] कला-कला के लिए है या जीवन के लिए—इस प्रश्न को महादेवी ने व्यर्थ माना है क्योंकि जीवन कलामय है तथा कला सजीव है और दोनो परस्परपूरक है। महादेवी ने श्रव्यकलाओ की अपेक्षा दृश्यकला को और उसमें भी चित्रकला को सर्वश्रेष्ठ माना है। उसे वे विषय से निरपेक्ष मानती हैं—"सच्चे चित्रकार की तूलिका भगवान बुद्ध की चिर शात मुद्रा अकित करके भी धन्य हो सकती है और हल कधे पर लेकर घर लौटने वाले कृषक का चित्र बनाकर भी अमर हो सकती है।"[163] महादेवी ने साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अपनी ब्रिकी को बढाए जाने के लिए विकृत और नारी के सौन्दर्यहीन चित्रण को हीन माना है क्योकि चित्रकला तभी सार्थक हैं जब वह बालक के मानसिक विकास मे सार्थक भूमिका निभाकर एक स्वस्थ युवक का निर्माण कर सके।

'कुछ विचार' के अन्तर्गत महादेवी ने देश मे भौतिक दृष्टि से व्याप्त अनेकता और सास्कृतिक दृष्टि से व्याप्त एकता की ओर सकेत करते हुए, इस एकता की अभिव्यक्ति प्रादेशिक भाषा और साहित्य के माध्यम से मानी है। साथ ही मराठी साहित्य और बोली पर भी महादेवी ने अपने विचार प्रकट किए हैं और हिन्दी नाट्य तथा रगमच पर भी ध्यान आकृष्ट किया है। समाज और मनुष्य के सबध पर विचार करते हुए वे लिखती हैं—"मनुष्य से मनुष्य का सम्पर्क केवल विधान और नियम से सचालित नहीं होता क्योंकि वह प्रत्येक आदान-प्रदान को किसी अलक्ष्य तुला पर तोलकर उसका मूल्य निश्चित करता रहता है। ससार के सारे विधान, जीवन के सारे नियम, मनुष्य को मनुष्य के लिए प्रसन्नतापूर्वक छोटा सा त्याग करने पर भी बाध्य नहीं कर सकते, पर वह स्वेच्छा से प्राण तक दे डालता है। अत सामाजिक सबधो का इस अत्यन्त व्यावहारिक पक्ष से लेकर एक अति मानवीय दार्शनिक पक्ष तक, विवेचन किया जा सकता है।"[164]

'दोष किसका' के अन्तर्गत महादेवी ने तत्कालीन सम्पादकों के मध्य विद्यमान दिशाभ्रम की स्थिति को दर्शाते हुए उसे दूर करने का आग्रह किया है। महादेवी ने सम्पादक पर गुरु उत्तरदायित्व डाला है। वह उत्तरदायित्व है—"वे उन भावनाओं और विचारों को सर्वसाधारण तक पहुँचा सके जो सुन्दर भविष्य के अग्रदूत हो सकते हैं तथा उन सस्कारों को मिटाने का प्रयत्न करे जिससे प्रगति में बाधा पड़ती है।"[165] लेकिन इसके लिए वे सम्पादक के हृदय और मस्तिष्क दोनों का परिष्कृत और विकसित होना आवश्यक मानती है। यद्यपि महादेवी का मानना है कि सम्पादक का कार्य आसान नहीं है लेकिन "यदि उनमें साहस और आत्मसम्मान हो, सगठित शक्ति हो, ससार को अपनी आवश्यकता का अनुभव करा देने योग्य दृढ़ता हो तो

बाधाएँ उनकी गति की बेड़ियाँ नहीं बन सकती।"[166] महदेवी सम्पादक के लिए लेखक से अच्छे सम्बन्ध को भी महत्व देती हैं।

'अभिनयकला' के अन्तर्गत महादेवी अभिनय को एक विकसित विधा मानती है जो अनुकरण पर आधारित है। इसमें उन्होने समाज में अभिनय कला का क्रमिक विकास दिखाया है। महादेवी ने अभिनय कला के साथ-साथ रगमच की भी चर्चा की है और हिन्दी का कोई अपना रगमच न होने के कारण पारसी थियेटर द्वारा दिखाए जा रहे नाटकों की आलोचना की—"इन रगमचो ने वह दिया जिसे रासधारी,राधाकृष्ण के बहाने देने का निष्फल प्रयत्न करते थे और इन्होंने वह छीन लिया जिसे रामलीला वाले सफलता पूर्वक देते थे।"[167] महादेवी ने सवाक् चलचित्र को मानव की उच्चतम वृत्तियों को जाग्रत कराने का निर्देश दिया है और अभिनय द्वारा ही ऐसा कर पाना सम्भव है—"अभिनय हमारी केवल प्राचीन ही नहीं प्रिय कला भी है। यदि हम जीवन को अधिक परिष्कृत और सुन्दर बनान में इसका उपयोग करें तो इससे व्यक्ति और समाज दोनों ही अधिक पूर्ण हो सकेगे। वैसे विकृत मात्रा में तो औषधि भी विष हो जाती है।"[168]

'हमारा देश और राष्ट्रभाषा' में महादेवी ने विविधताओं से परिपूर्ण देश के मध्य विद्यमान सास्कृतिक एकता की ओर सकेत किया है और देश को एक सूत्र मे बाध रखने वाली राष्ट्रभाषा की समस्या का प्रतिपादन किया है। वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा के गौरवपूर्ण पद का दिया जाना उचित मानती हैं क्योंकि हिन्दी ही पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक सम्पूर्ण देश में व्याप्त है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकृत करवाने के लिए राजनीतिक क्षेत्र मे व्याप्त वाद-विवाद को देखकर महादेवी की विद्रोही वाणी गूज उठती है—"हिन्दी अपना भविष्य किसी से दान में नहीं चाहती। वह तो उसकी गति का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए। जिस नियम से नदी-नदी की गति रोकने के लिए शिला नहीं बन सकती, उसी नियम से हिन्दी भी किसी सहयोगियों का पथ अवरुद्ध नहीं कर सकती है।"[169]

'साहित्य और सात्यिकार' में महादेवी ने जीवन मे साहित्य की अवश्यकता पर बल दिया है तथा समाज में साहित्य सृजन को लेकर उठी हुई समस्याओं पर विचार पर किया है। साथ ही कुछ प्रश्न भी उठाये हैं—क्या साहित्य केवल व्यक्तिगत रुचि-हॉबी मात्र है? क्या उसे विशेष प्रतिभा द्वारा सपादित और स्थायी महत्व का सामाजिक कर्म मानकर अतीत युगों ने भूल की है? क्या अन्य युगों और देशों की उक्त भूल का परिमार्जन करने के लिए ही हमारे यहाँ ऐसी व्यवस्था हो रही है। क्या इस व्यवस्था से साहित्य का लक्ष्य, राजनीतिक लक्ष्य से एकाकार हो सकेगा और क्या इस ऐक्य से साहित्य के मूल्यों की रक्षा और वृद्धि हो सकेगी?"[170] इन सभी प्रश्नों के समाधान के लिए वे दो तत्वों की ओर सकेत करती है। विश्वासी बुद्धि और विवेकी हृदय द्वारा ही इन समस्याओं का समाधान संभव है।

पथ के साथी–1956 में प्रकाशित 'पथ के साथी' महादेवी वर्मा की चतुर्थ गद्यकृति है। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में महादेवी जी ने जहाँ समाज के उपेक्षित, शोषित पात्रों के व्यथापूर्ण सघर्षमय जीवन को अपना विषय बनाया था, वही 'पथ के साथी' मे अपने वरिष्ठ तथा समकालीन साहित्यकारो के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व तथा अपने साथ उनके सम्बन्धों का विवेचन किया है। यद्यपि वरिष्ठ और समकालीन साहित्यकारों के विषय पर लिखना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। यह मानते हुए भी वे स्वीकार करती हैं कि, 'अपने अग्रजो और सहयोगियो के सम्बन्ध में, अपने-आप को दूर रखकर कुछ कहना सहज नही होता। मैंने साहस तो किया है, पर ऐसे स्मरण के लिए आवश्यक निर्लिप्तता या असगता मेरे लिए सम्भव नहीं है। मेरी दृष्टि के सीमित शीशे में वे जैसे दिखाई देते हैं, उससे वे बहुत उज्ज्वल और विशाल हैं।'[170] इस गद्य-कृति में रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त और सियारामशरण गुप्त के सस्मरण सग्रहीत हैं। बाद मे इसका एक सस्करण 'सस्मरण' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमे उपर्युक्त साहित्यकारो के साथ महात्मागाँधी, राजेन्द्र बाबू, जवाहरभाई, सन्त राजर्षि और प्रेमचन्द के सस्मरण सग्रहीत हैं। इस सस्करण मे सियारामशरण गुप्त को स्थान नही मिला हैं।

अन्तर्वस्तु–सबसे पहला सस्मरण 'प्रणाम' रवीन्द्रनाथ टैगोर को समर्पित है, जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व से महादेवी विद्यार्थी जीवन से ही प्रभावित रही थी। वे लिखती है कि—'कवीन्द्र रवीन्द्र उन विरल साहित्यकारों मे थे जिनके व्यक्तित्व और साहित्य में अद्‌भुत साम्य रहता है। जहाँ व्यक्ति को देखकर लगता है मानो काव्य की व्यापकता ही सिमट कर मूर्त्त हो गई है और काव्य से परिचित होकर जान पड़ता है मानो व्यक्ति ही तरल होकर फैल गया हो।'[172] महादेवी ने टैगोर को तीन अलग-अलग परिवेश में देखा और उससे उत्पन्न अनुभूतियो को कोमल प्रभात, प्रखर दोपहरी और कोलाहल में विश्राम का सकेत देती हुई सन्ध्या की सज्ञा दी है। रामगढ में महादेवी के बगले के समीप ही टैगौर भी अपनी रोगिणी पुत्री के साथ रह चुके थे। टैगोर के बगले के प्रत्यक्ष दर्शन और उस महान पड़ोसी के साथ रह चुके लोगों के वृत्तान्त सुनकर महादेवी के हृदय में टैगोर ने सहृदय-पड़ोसी और वात्सल्य भरे पिता के रूप में प्रतिष्ठा पाई। जब उन्होंने सर्वप्रथम टैगोर के दर्शन किए, तो स्वीकार किया कि, 'इसे मैं अपना सौभाग्य समझती हूँ कि रवीन्द्र के प्रत्यक्ष दर्शन ने मेरी कल्पना-प्रतिमा को अधिक दीप्त सजीवता दी। उसे कहीं से खडित नहीं किया गया।'[173] दूसरी बार उन्होंने टैगोर को शान्ति निकेतन में देखा और उस समय तक महादेवी अपना कार्यक्षेत्र सुनिश्चित कर चुकीं थी और तीसरी बार शान्ति निकेतन के लिए अर्थसग्रह करते हुए टैगोर को रगमच पर सूत्रधार के रूप में देखती हैं और ऐसी विषम परिसिथति पर असतोष व्यक्त करते हुए लिखती हैं—"हिरण्यगर्भा धरतीं वाला

हमारा देश भी कैसा विचित्र है। जहाँ जीवन-शिल्प की वर्णमाला भी अज्ञात है वहाँ वह साधनो का हिमालय खड़ा कर देता है और जिसकी उगुलियों मे सृजन स्वय उतरकर पुकारता है उसे साधन-शून्य रेगिस्तान मे निर्वासित कर जाता है। निर्माण की इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है कि शिल्पी और उपकरणो के बीच मे आग्नेय रेखा खींच कर कहा जाय कि कुछ नहीं बनता या सब कुछ बन चुका।'[174] कवीन्द्र रवीन्द्र मे कल्पना का विस्तृत फलक विद्यमान था। साहित्य के हर क्षेत्र मे उन्होंने अपनी लेखनी चलाई। वे लिखती है कि—"विशाल, शिव और सुन्दर के पक्ष का समर्थन सब कर सकते हैं क्योकि वे स्वत प्रमाणित हैं। परन्तु विशालता, शिवता और सुन्दरता पर क्षुद्र, अशिव और विरूप का दावा प्रमाणित कर उन्हे विशाल, शिव और सुन्दर मे परिवर्तित कर देना किसी महान का ही सृजन हो सकता है।'[175] इसमें सन्देह नहीं कि कवि टैगोर ऐसे ही महान और युगप्रवर्तक साहित्यकार हैं। कवि रवीन्द्र के महाप्रयाण को महादेवी साहितियक जगत मे उनके द्वारा सौंपे गए गुरू उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकार करती है लिखती है कि—जैसे उस साहित्यकार-अग्रज ने हमारे अनजान में ही हमारे छोर में अपना उत्तराधिकार बाँधकर विदा ली है। दीपक चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, सूर्य जब अपना आलोकवाही कर्तव्य उसे सौंप कर चुपचाप डूब जाता हे तो तब जल उठना ही उसके अस्तित्व की शपथ है—जल उठना ही उसके जाने वाले को प्रणाम है।'[176]

मैथिलीशरण गुप्त से महादेवी का परिचय सरस्वती पत्रिका और उसमें प्रकाशित उनकी रचनाओ के माध्यम से तब हुआ, जब वे समस्यापूर्ति के माध्यम से काव्य रचना का बाल प्रयास कर रहीं थी। गुप्त जी बाह्य रूप दर्शन और वेशभूषा में बिलकुल साधारण थे, वे इतने अधिक साधारण थे कि यदि वे भीड़ मे शामिल हो जायें तो आसानी से खोजे भी नहीं जा सकते। उनके विषय में महादेवी लिखती हैं कि—'साधारण मझोला कद, साधारण छरहरा गठन, साधारण गहरा गेहूँआ या हल्का साँवला रग, साधारण पगड़ी, अगरखा, धोती या उसका आधुनिक सस्करण, गाँधी टोपी, कुरता-धोती और इस व्यापक भारतीयता से सीमित साम्प्रदायिकता का गठबन्धन सा करती हुई तुलसी कंठी। अपने रूप और वेष दोनों में वे इतने अधिक राष्ट्रीय हैं कि भीड़ में मिल जाने पर शीघ्र ही खोज नहीं निकाले जा सकते हैं।"[177] महादेवी उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का रेखाकन करते हुए दो को महत्वपूर्ण मानती हैं, जो उन्हें दूसरों से अलग करती हैं, वे हैं—उनकी बंधी दृष्टि और मुक्त हँसी। मैथिलीशरण गुप्त सरल-सहज, निश्छल, निर्मल, विनोदी और सबकी मदद करने को तत्पर रहते हैं। 'वे स्वभाव से प्रसन्न और विनोदी है, पर इस प्रसन्नता और विनोद की चचल सतह के नीचे गहरी सहानुभूति और तटस्थ विवेक का स्थायी सगम है, जिस पर सबकी दृष्टि नहीं जाती।'[178] यद्यपि उनके व्यक्तित्व पर देश और समाज में व्याप्त तत्कालीन परिस्थितियों की चेतना तो अवश्य विद्यमान थी लेकिन परिवार से प्राप्त सस्कारों ने उस पर एक बाह्य आवरण डाल रखा था। वे लिखती हैं कि—'यदि

हम लोहे के एक सिरे को आग में रखकर दूसरे को पानी में डुबा दे, तो उष्णता और शीतलता अपनी-अपनी सीमा बढा कर लोहे के मध्य भाग में एक सतुलित गर्मी-सर्दी उत्पन्न कर देगी, पर दोनो सिरो पर आग-पानी अपने मूल रूपो में रहेंगे ही।

बहुत कुछ ऐसा ही सन्तुलन गुप्त जी के व्यक्तित्व में मिलता है, पर उसमे चरमसीमाओ पर ऐसा आग-पानी भी है, जो कोई समझौता नहीं करता।'[179] शिक्षा के अन्तर्गत परीक्षाओं के बधे-बधाए ढाँचे को शीघ्र ही तोड़ देने के कारण उनके व्यक्तित्व को वातावरण और सस्कार के अनुसार अपना विकास करने की सुविधा मिल गई। मैथिलीशरण गुप्त परीक्षाओं से दूर ही रहे। उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए यह अच्छा भी रहा। क्योकि महादेवी भी मानती हे कि परीक्षा की बँधी-बधायी प्रणाली में दीक्षित व्यक्ति 'टाइप' बनकर रह जाता है। यदि मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तित्व का विकास उसी ढाँचे में होता तो निश्चय ही देश ऐसे राष्ट्रीय कवि से वचित रह जाता। मैथिलीशरण गुप्त अल्पायु में ही दो बार पत्नी विछोह और दस में नौ सन्तानो की मृत्यु देख चुके थे पर उनके व्यक्तित्व मे ऐसा सन्तुलन था कि वे फिर भी स्थिर बने रहे। सन्तुलन की इसी विशेषता की ओर सकेत करते हुए महादेवी लिखती है कि "आस्था जनित सयम का बाँध न उनके विषाद में ज्वार आने देता है और न हर्ष मे।"[180] मैथिलीशरण गुप्त के साहित्यिक व्यक्तित्व में कवि और भक्त दोनों का समन्वय है, इसीलिए जहाँ एक ओर उनमे कवि के लिए आवश्यक निर्माण का स्वभाव है वहीं दूसरी ओर भक्त के लिए आवश्यक निर्मित के प्रति आत्मसमर्पण भी है। उन्होंने रामायण और महाभारत के मूलपात्रों के चरित्र का विस्तार नही किया वरन् इनके लेखकों की दृष्टि से जो साधारण पात्र ओझल हो गए थे, उन्हीं को मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओ का विषय बनाया। ये कथाएँ युगों पुरानी होने के कारण यद्यपि धूमिल हो गई हैं लेकिन मैथिलीशरण गुप्त ने इन्हें नये कलेवर मे प्रस्तुत किया। ऋण का दुर्वहभार भी मैथिलीशरण गुप्त को विरासत में मिला था लेकिन 'सादा जीवन उच्च विचार' के हिमायती गुप्त ने इनका शीघ्र ही समाधान कर लिया। इनके सामने विद्यमान आर्थिक सकट का प्रमुख कारण प्रकाशक वर्ग था जो पुस्तकें छाप कर उनके लेखकों को कुछ भी नही देता था और स्वय लेखक द्वारा अपनी पुस्तक से अर्थलाभ प्राप्त करने का प्रश्न कल्पना से भी परे था। पर अपने पिता और अग्रज के कारण मैथिलीशरण गुप्त आर्थिक सकट के उस दौर मे स्थिर रह सके। उनके चरित्र की एक अन्य विशेषता की ओर महादेवी सकेत करती हैं कि वे अत्यन्त विनयशील हैं लेकिन किसी निर्दोष के प्रति अत्याचार होता देखकर वे उतने ही उग्र भी हो जाते हैं। मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तिव में अनेक परस्पर विरोधी तत्वों का सामजस्य दिखाते हुए महादेवी लिखती हैं— 'यदि अपनी परीक्षाओं में अविचलित रहना भक्त का वरदान है, तो गुप्त जी पूर्णकाम हैं। यदि अपने अह को समष्टि में मिला देना कवि की मुक्ति है,तो गुप्त जी मुक्त कवि हैं।'[181] निश्चय ही मैथिलीशरण गुप्त साधारण व्यक्तित्व के साथ असाधारण विशेषताओं को धारण किए हुए हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान से महादेवी का परिचय क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज मे उस समय हुआ, जब समुद्रा कुमारी चौहान सातवी कक्षा की और महादेवी पाँचवी कक्षा की छात्रा थी। और दोनो ही कविताएँ लिखा करती थी। कार्यक्षेत्र समान होने कारण परिचय में प्रगाढ़ता आना स्वाभाविक ही था तथा समय के प्रवाह के साथ यह सम्बन्ध प्रगाढ़ से प्रगाढकर होता गया। सुभद्रा भारतीय नारी की छवि को पूर्णतया साकार करती थीं। उनकी छवि को रेखाकित करते हुए महादेवी जी लिखती हैं कि—कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भाव-स्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढे हुए से ओठ और दृढ़ता-सूचक ठुड्डी—सब कुछ मिलाकर एक अत्यन्त निश्छल, कोमल उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देने थे।''[182] उनके स्वभाव की प्रमुख विशेषता यह थी कि वे जो एक बार निश्चय कर लेती थी, उस पर अडिग रहती थी और विपरीत परिस्थितियों को भी वह हसते हुए स्वीकार करती थीं। उनका विवाह अल्पायु में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए तत्पर लक्ष्मण सिंह के साथ हुआ और उन्होंने आदर्श पत्नी की भाति हर कदम पर अपने पति का साथ दिया चाहे वह कारागार के बाहर हो या फिर उसके अन्दर हो। महादेवी लिखती है कि 'इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर के मगलचौक पर रखे मगल-कलश, तुलसी-चौरे पर जलते हुए घी के दीपक और हर कोने से स्नेह भरी बाँहे फैलाये हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अन्धकार, आँधी और तूफान को तोला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुन्दर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अँधेरे रास्ते पर काँटों से उलझती चल पड़ती हो।''[183] सुभद्रा के व्यक्तित्व में आधुनिक और पारम्परिक नारी का अद्भुत समन्वय था। व जिस उत्साह और ओज के साथ वीर रस से परिपूर्ण कविताएँ लिखा करती थीं, उतनी ही तन्मयता से अपने घर के आँगन को लीपती थी, बर्तन माँजती थी। यद्यपि सुभद्रा का अध्ययन-क्रम बीच ही टूट गया लेकिन उनमें विवेचन-विश्लेषण की अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने देश और समाज मे प्रचलित प्राचीन मान्यताओं और सामाजिक रूढ़ियों का जमकर विरोध किया। स्त्री को पुरुष की छाया से स्वतन्त्र माना। सुभद्रा कुमारी चौहान का मानना था—'मनुष्य की आत्मा स्वतन्त्र है। फिर चाहे वह स्त्री-शरीर के अन्दर निवास करती हो चाहे पुरुष-शरीर के अन्दर। इसी से पुरुष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग-अलग रहता है।'[184] अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर तो उन्होंने परम्परा से चली आ रही कन्यादान की प्रथा को ही अस्वीकृत कर दिया क्योंकि उनका मानना था कि मनुष्य-मनुष्य को दान करने का अधिकारी नहीं है। महादेवी स्वीकार करती हैं कि 'अजगर की कुडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कसकर चूर-चूर कर देने वाले अनेक सामाजिक बन्धनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्याकन आज सम्भव नहीं है।'[185] सुभद्रा अपने पति की अभिन्न मित्र, ममतामयी माँ स्वतन्त्रता के लिये सन्नद्ध जागरूक नारी और साहित्यिक मित्रों के साथ परस्पर ईर्ष्या-द्वेष की भावना से मुक्त थी। उनके चरित्र की इस विशेषता को लक्ष्य करते हुए

महादेवी लिखती है कि—'अपने किसी भी परिचित-अपरिचित साहित्य-साथी की त्रुटियो के प्रति सहिष्णु रहना और उसके गुणों के मूल्याकन में उदारता से काम लेना समुद्राजी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असम्भव थी।'[186] निश्चय ही अपने इसी स्वभाव तथा गुणों के कारण महादेवी की स्मृति में उनकी सखी का चित्र अपनी सब रग-रेखाओ के साथ स्पष्ट है।

महाकवि निराला के इस सस्मरण में महादेवी ने निराला की अन्तर्बाह्य विशेषताओ को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है ओर वे अपने इस प्रयत्न में सफल भी रही है। निराला महादेवी के राखी बन्द भाई है। यद्यपि उन्हें राखी के बन्धन में बाँधने मे महादेवी का यह प्रयास 'किसी भी जीवन्त बवण्डर को कच्चे सूत में बाधने जैसा था या किसी उच्छल महानद को मोम के तटों में सीमित करने के समान था।'[187] परन्तु लौकिक दृष्टि से नि स्व निराला हृदय की निधियों में सबसे समृद्ध भाई हैं,यह स्वीकार करने मे महादेवी के मन में कोई द्विविधा नहीं। यद्यपि महादेवी ने निराला के अस्तव्यस्त जीवन को व्यवस्थित करने के अनेक असफल प्रयास किये लेकिन निराला जैसे औढरदानी को रोकना भी आसान न था। स्वय कष्ट सहकर भी दूसरों की मदद करना निराला की चारित्रिक विशेषताओं मे प्रमुख है। इसी प्रकार साधनहीन होने पर भी निराला अतिथि-सत्कार में भारतीय परम्परा का ही अनुगमन करते हैं। एक बार मैथिलीशरण गुप्त निराला के अतिथि होते हैं। उस समय की स्थिति का वर्णन महादेवी इन शब्दों में करती हैं—'वह आलोक रहित, सुख-सुविधा-शून्य घर, गृहस्वामी के विशाल आकार और उससे भी विशालतर आत्मीयता से भरा हुआ था। अपने सबध मे बेसुध निराला जी अपने अतिथि की सुविधा के लिए सतर्क प्रहरी हैं। वैष्णव अतिथि की सुविधा का विचार कर वे नया घड़ा खरीद कर गगाजल ले आये और धोती-चादर जो कुछ घर में मिल सका सब तख्त पर बिछा कर उन्हें प्रतिष्ठित किया।'[188] निराला में विद्यमान सवेदनशीलता का परिचय पत की मृत्यु की झूठी खबर मे मिलता है, जिसमें वे उस खबर की सच्चाई जानने के लिए रात भर महादेवी के घर के सामने पार्क में रुके रहते हैं। अपने विरोधियों के लिए भी उनके हृदय में एक कोना खाली रहता है। महादेवी लिखती हैं कि 'निरालाजी के सौहार्द और विरोध दोनों एक आत्मीयता के वृन्त पर खिले दो फूल हैं। वे खिल कर वृन्त का शृगार करते हैं और झड़कर उसे अकेला और सूना कर देते हैं। मित्र का तो प्रश्न ही क्या, ऐसा कोई विरोधी भी नहीं जिसका अभाव उन्हें विकल न कर देगा।'[189] निराला स्वभाव से विद्रोही रहे हैं और उन्होंने तत्कालीन सामाजिक और साहित्यिक जगत में व्याप्त रूढ़ियों का जमकर विरोध किया है। 'निराला जी विचार से क्रान्तदर्शी और आचरण से क्रान्तिकारी हैं। वे उस झझा के समान हैं जो हल्की वस्तुओं के साथ भारी वस्तुओं को भी उड़ा ले जाती है।'[190] निराला ने स्वयं को साहित्यिक जगत में प्रतिष्ठापित करने के लिए आजीवन सघर्ष किया और वे अपने परिवारिक उत्तरदायित्वों का भी सफलतापूर्वक निर्वाह करने में असफल

रहे लेकिन फिर भी प्रतिकूल परिस्थितियों में उन्होने कभी हार नहीं मानी। महादेवी लिखती है कि—"जो अपने पथ की सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बाधाओं को चुनौती देता हुआ, सभी आघातो को हृदय पर झेलता हुआ लक्ष्य तक पहुँचता है उसी को युग-स्रष्टा साहित्यकार कह सकते हें। निराला जी ऐसे ही विद्रोही साहित्यकार हैं। जिन अनुभवो के दर्शन का विष साधारण मनुष्य की आत्मा को मूर्च्छित करके उसके सारे जीवन को विषाक्त बना देत है, उसी से उन्होंने सतत् जागरूकता और मानवता का अमृत प्राप्त किया है।'[191]निराला जी के सस्मरण के औचित्य को सिद्ध करते हुए महादेवी ने ठीक ही लिखा है—'निरालाजी के साहित्य की शास्त्रीय विवेचना तो आगामी युगो के लिए भी सुकर रहेगी, पर उस विवेचना के लिए जीवन की जिस पृष्ठभूमि की आवश्यकता होती है, उसे तो उनके समकालीन ही दे सकते हैं।'[192]

यद्यपि कवि प्रसाद से महादेवी का परिचय उनके साहित्य के माध्यम से हो चुका था लेकिन उनके दर्शन महादेवी को कामायनी के द्वितीय सर्ग की रचना के दौरान सुलभ हुए और इस समय तक वे स्वय भी साध्यगीत लिख चुकी थी। महादेवी की कल्पना में प्रसाद एक हृष्ट-पुष्ट थविर के रूप मे विराजमान थे, पर जब वे उन्हें देखती हैं तो इस स्थिति का वर्णन करते हुए वे लिखती है कि—"न वे उतने हृष्ट जान पड़े और न उतने पुष्ट ही। न अधिक ऊँचा न नाटा-मझोला कद, न दुर्बल न स्थूल, छरहरा शरीर, गौर वर्ण, माथा ऊँचा और प्रशस्त, बाल न बहुत घने न विरल, कुछ भूरापन लिये काले, चौड़ाई लिये मुख, मुख की तुलना में कुछ हल्की सुडौल नासिका,आँखों में उज्ज्वल दीप्ति, ओंठों पर अनायास आने वाली बहुत स्वच्छ हँसी, सफेद खादी का धोती-कुरता। उनकी उपस्थित में मुझे एक उज्ज्वल स्वच्छता की वैसी अनुभूति हुई जैसी उस कमरे मे सम्भव है, जो सफेद रग से पुता और सफेद फूलों से सजा है।'[193] अपनी कल्पना मूर्ति के इस प्रकार खण्डित होने पर महादेवी को हँसी आना स्वाभाविक ही था। प्रसाद भारतीय दर्शन, साहित्य और इतिहास आदि के ज्ञाता थे और वैदिक साहित्य और भारतीय दर्शन महादेवी के भी प्रिय विषय होने के कारण, उन दोनों विद्वानों के मध्य चर्चा स्वाभाविक ही थी। उस चर्चा के दौरान महादेवी अनुभव करती है कि 'प्रसाद जी दोनों के सम्बन्ध मे आधुनिकतम ज्ञान ही नहीं अपनी विशेष व्याख्या भी रखते हैं। वे कम शब्दों में अधिक कह सकने की जैसी क्षमता रखते थे वैसी कम साहित्यकारों में मिलेगी।'[194] प्रसाद का सम्पूर्ण जीवन अकेलेपन का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनका जन्म एक प्रतिष्ठित एव ऋण के भार से बोझिल परिवार में हुआ था और उन्हें अल्पायु में ही माता-पिता, बड़े भाई, दो पत्नियों और एकलौते पुत्र की वियोग व्यथा सहन करनी पड़ी थी लेकिन अनेक कष्ट सहकर भी वे साहित्य-रचना में सलग्न रहे। प्रसाद जैसे मनस्वी और सकोची स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए दूसरों से सहानुभूति और सहायता की याचना करना सम्भव नहीं था। इसलिए क्षयरोग से पीड़ित होने पर उसका निदान प्रचुर व्यय साध्य होने के कारण और अपने किशोर

पुत्र के लिए अपने इतिहास की पुनरावृत्ति न होने देने के कारण मृत्यु की निरन्तर समीप अपने वाली पदचाप सुनकर भी वे विचलित नहीं हुए। और जब सम्पूर्ण साहित्य जगत कामायनी के प्रकाशन पर पर्वोत्सव मना रहा था, तभी प्रसाद के महाप्रयाण की सूचना आती है जिसे सुनकर समस्त साहित्य जगत स्तब्ध कर जाता है महादेवी लिखती है कि—"कण-कण कटती हुई शिला के समान उनकी जीवनी-शक्ति रिसती गई और जब उन्होंने जीवन के सब सघर्षो पर विजय प्राप्त कर ली तब वे जीवन की बाजी हार गए, जिसमें हार जाने की सम्भावना भी उनके मन में नहीं उठी थी।'[195] प्रसाद की साहित्यिक प्रतिभा का विस्तार क्षेत्र मधुरगीत, अतुकान्त रचनाएँ, मुक्त छद खड काव्य, लघु कथाओं से लेकर लम्बी कहानी तक, उपनयास, एकाकी, प्रतीक रूपक, गीतिनाट्य, ऐतिहासिक नाटक तथा निबन्धसाहित्य से लेकर 'इन्दु', 'जागरण' जैसी पत्रिका तक था। महादेवी ने प्रसाद की तुलना हिमालय की गर्वीली चोटियों से समता करता हुआ एक सीधे ऊँचे देवदारू के वृक्ष से की है जिसका मस्तक ठिठुराने वाले हिमपात, प्रखर-धूप, और मूसलाधार वर्षा के बीच में भी उन्नत रहा और आँधी और बफीले बवडर के झकोरे सहकर भी वह निष्कम्प निश्चल खड़ा रहा।

सुमित्रानन्दन पन्त को सर्वप्रथम महादेवी ने हिन्दू बोर्डिंग हाउस में होने वाले कवि सम्मेलन में देखा था और उस कोमलकान्त कृशागी मूर्ति को छात्रों और अध्यापकों के बीच मे बैठा हुआ देखकर उन्हे आश्चर्य भी हुआ था। पन्त के व्यक्तित्व की बाह्य विशेषताओं को उद्घाटित करते हुए वे लिखती हैं—'आकण्ठ अवगुण्ठित करती हुए हल्की पीताभ सी चादर, कधों पर लहराते हुए कुछ सुनहले—से केश, तीखे नक्श और गौरवर्ण के समीप पहुँचा हुआ गेहूआ रग, सरल दृष्टि की सीमा बनाने के लिए लिखी हुई-सी भवें, खिचे हुए-से ओंठ, कोमल- पतली उगुलियों वाले सुकुमार हाथ यह सब देखकर मुझे ही नहीं मेरी अन्य सगिनियों को भी भ्रम होना स्वाभविक था। पर हम सब यह देखकर विस्मित हो गए कि वह मूर्ति हमारी ओर न आकर उन्ही के बीच में प्रतिष्ठित हो गयी जो उससे आकार-प्रकार मे उतने ही भिन्न जान पड़ते थे जितनी क्षीण तरल जल रेखा से विशाल कठोर पाषाण खड।'[196] और उनका भ्रम डा धीरेन्द्र वर्मा के विवाह के अवसर पर दूर हुआ, जब उन्होंने अपने कवि मित्र पन्त से महादेवी का परिचय कराया। पन्त के जन्म के समय उनकी माँ की मृत्यु हो जाने पर उन्हें सबका स्नेह, प्यार-दुलार अधिक मिला। परन्तु दूसरों से प्राप्त स्नेह में उनके मातृहीन होने का भाव अनजाने ही घुल जाता है। अत सुमित्रानन्दन के मन का सकोच, उनकी अनतर्मुखी वृत्तियाँ सब उनके असाधारण बालकपन की उपज है। उनका बचपन कौसानी में व्यतीत हुआ। प्रकृति प्रारम्भ से ही पन्त के लिए मुख्य सहचरी रही। उसी की क्रोड में उन्होंने हंसना-रोना सीखा। अतः उन्हें स्वभाव और शरीर में प्रकृति प्रदत्त कोमलता और सुकुमारता विद्यमान रही महादेवी लिखती है कि—"पर जिस नियम से आज के वैज्ञानिक ने मकड़ी के कोमल झीने तन्तु में न टूटने वाली दृढ़ता का पता लगा लिया

है, उसी नियम के अनुसार सुमित्रानन्दन जी के सुकुमार शरीर और कोमल प्रकृति ने सब अग्नि परीक्षाये पार कर ली है।[197] पन्त ने तीसरी कक्षा में ही अपने गोसाईंत्त जैसे कवित्वहीन नाम के स्थान पर सुमित्रानन्दन जैसा श्रुतिमधुर नाम रखकर अपनी सृजनशीलता का परिचय दिया था। पन्त ने सम्पन्नता और विपन्नता के अनेक दौर देखे पर जिस प्रकार उन्हें सम्पन्नता का अभिमान नहीं हुआ उसी प्रकार विपन्नता मे वे विचलित नही हुए। उनकी छायावादी कविताओ में जहाँ कल्पना का रगीन भावलोक है, वहीं आगे चलकर वे यथार्थ की ठोस भावभूमि पर उतर आते हैं। यद्यपि उनके लक्ष्य खोजी मनपर निरन्तर किए जा रहे शरसन्धान से वह थक जाता है, 'पर उनके मन और शरीर दोनों ने अपने-अपनी सीमा में जिस इस्पाती तत्व का परिचय दिया है वह कभी हार स्वीकार नही करता। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर छायावाद को प्रतिष्ठित करवाने मे इन कवियो को निरन्तर आलोचको के कठोर व्यग्यबाणों का सामना करना पड़ा और इस सघर्ष-यात्रा मे सबसे कोमल-सुकुमार कवि पत के प्रति सभी की चिन्ता स्वाभाविक थी, पर महादेवी लिखती है कि 'आँधी के थमने पर हमने देखा कि लचीले बेंत के समान झुककर उन्होने तूफान को अपने ऊपर से बह जाने दिया है और अब वे नये प्रभात के अभिनन्दन के लिए उन्मुख खड़े हैं।'[198] पन्त का उपर्युक्त सस्मरण उनके कोमल, सरल, सहज, निश्छल स्वभाव के साथ ही हठ व्यक्तित्व का भी परिचय देता है।

श्री सियाराम शरण गुप्त के सस्मरण का प्रारम्भ उनके व्यक्तित्व की बाह्य विशेषताओ के रेखाकन द्वारा होता है महादेवी लिखती है कि—"कुछ नाटा कद, दुर्बल शरीर, छोटे और कृश हाथ-पैर, लम्बे उलझे रूखे-से बाल, लम्बाई लिये सूखे मुख, ओंठ और विशेष तरल आँखों के साथ भाई सियारामशरण ऐसे लगते हैं, मानों ठेठ भारतीय मिट्टी की बनी पकी कोई मूर्ति हो, जिसकी आँखों पर स्निग्धता का गाढा रग फेर कर शिल्पी, शेष अगों पर फेरना भूल गया है।[199] भाद्रपूर्णिमा को जन्मे सियारामशरण गुप्त के साथ महादेवी उम्र मे बड़े होने पर भी छोटे भाई का स्नेहपूर्ण सबध जोड़ती हैं। सियाराम अपने भाई-बहनों में न बड़े हैं और न ही छोटे। अत. उनको छोटों को मिलने वाला प्रेम भी सहज ग्राह्य है तथा बड़ों को प्राप्त होने वाला विश्वास भी उपलब्ध है। वे अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि और जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। यद्यपि उन्होंने स्कूली पढ़ाई मिडिल तक ही पास की थी परन्तु बिना कॉलेज गए उन्होंने अपनी बुद्धि का विस्तार इस प्रकार कर लिया था कि महादेवी को विश्वविद्यालय की पढ़ाई निरर्थक जान पड़ती हैं और वे लिखती हैं कि—"पर हाईस्कूल, इण्टर कॉलेज, विश्वविद्यालय, मास्टर, लेक्चरर, प्रोफेसर आदि-आदि की सात समुद्रों से भी गहरी खाइयों के पार जो सरस्वती बैठी थी, उसके चरण तक उन्होंने अपनी विनयपत्रिका बुद्धि के तीर में बाँधकर न जाने कैसे पहुँचा दी और आज जब हम उनके ज्ञान-भण्डार को देखते हैं तो पछतावा होने लगता है कि हम इन खाइयों में वर्षों क्यो डूबते-उतराते रहे।[200] सियाराम शरण गुप्त ने पत्नी और बच्चों की असमय विदाई को भी संयम के साथ

स्वीकार किया और पत्नी से अनन्य प्रेम ओर स्नेह के कारण ही वे कभी दूसरे विवाह के लिए तैयार नही हुए। यद्यपि सियाराम शरण गुप्त परिग्रहहीन, श्वास के रोग से ग्रस्त तथा सत्यान्वेषक रहे हैं पर उन्होने कभी हार नही मानी। यद्यपि सियाराम के बड़े भाई राष्ट्रकवि रहे हैं और बड़े भाई से प्रभावित होना कोई असामान्य बात भी नही थी। परन्तु महादेवी लिखती हैं कि इस पर भी "भाई सियारामजी ने अपने अग्रज की छाया को सम्पूर्ण निष्ठा के साथ स्वीकार किया, पर उसके अतराल से आकाश पाने का ऐसा रन्ध्र निकाल लिया जिससे प्रत्येक प्रभात की किरण उन्हें नवीन कोण से स्पर्श करती है और प्रत्येक सन्ध्या नया रग ढालती है। उनके विचार, साहित्य और साधना में कही अनुकरण नही है। कभी-कभी तो अति परिचित और अतिसाधारण वस्तुओ, व्यक्तियों तथा घटनाओ को वे ऐसे दृष्टि बिन्दु से देखकर उपस्थित करते हैं कि सुनने वाला विस्मित हो जाता है।'[201] सियाराम रवीन्द्र साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे तथा महात्मा गाँधी से भी अत्यधिक प्रभावित थे लेकिन फिर भी वे उनके साथ हिन्दी को लेकर कोई समझौता नहीं करते और ऐसे अवसर पर ही उनकी मानसिक दृढ़ता का परिचय मिलता है। रवीन्द्र और महात्मा गाँधी के उन पर पड़े हुए प्रभाव को महादेवी दूसरे ढग से देखती है। वे लिखती है कि—"उनका साहित्य पढ़कर ऐसा लगता है कि यदि उन्हे महात्मा गाँधी का निकट सम्पर्क कुछ कम प्राप्त होता तो वे इससे अच्छे कवि होते और यदि उन्हे कवीन्द्र के साहित्य का परिचय कम मिला होता तो वे इससे बड़े साधक होते।

दो ध्रुवों पर स्थित महान साधक और महान कवि दोनों ने अपने-अपने वरदान इस प्रकार भेजे हैं कि शिव और सुन्दर इनके जीवन से अपना-अपना दायभाग अलग-अलग माँगते रहते हैं। दोनो की सन्धि कराने मे ही इनकी शक्ति का अधिकाश व्यय होता रहता है।[202] निश्चय ही महादेवी ने सियाराम के व्यक्तित्व की अन्तर्बाह्य विशेषताओं को अत्यन्त आत्मीयता के साथ उद्घाटित करने में सफलता प्राप्त की हैं।

अन्तर्वस्तु के उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि साहित्यकार की रचना में उसके अनुभवों, विचारो तथा मनोभावों की छाप तो रहती ही है पर साथ ही युगीन परिवेश भी पूरी रचना में समाया रहता है। महादेवी ने भी पथ के साथी के आरम्भ में ही लिखा है—"साहित्यकार की साहित्य-सृष्टि का मूल्याकन तो अनेक आगत-अनागत युगों मे हो सकता है, परन्तु उसे जीवन की कसौटी उसका अपना युग ही रहेगा।"[203] 'पथ के साथी' में युगीन परिवेश अपनी पूरी गरिमा के साथ विराजमान है। महादेवी के लिए अपनी रचना में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश से विलग रहना सम्भव भी नहीं था। महादेवी का इन साहित्यकारों में अधिकाश के साथ निजी सम्बन्ध होने के कारण उनके जीवन के कुछ पहलुओं पर इस रचना द्वारा प्रकाश भी पड़ता है।

राजनीतिक परिवेश के अन्तर्गत 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान जनता पर असहनीय अत्याचार हो रहे थे, उसमें देश के साहित्यकारों को भी नहीं बख्शा जा रहा था, जिसका स्पष्ट उल्लेख

मैथिलीशरण गुप्त के सस्मरण मे मिलता है जब उन्हें अपने बड़े भाई के साथ जेल मे डाल दिया गया और कलेक्टर द्वारा यह पूछने पर कि उन्हें कुछ कहना तो नहीं है तो उनका दबा हुआ आक्रोश फूट पड़ता हैं— "आपका दिमाग खराब हो गया है, आपसे क्या बातें करे। आप निर्दोषों को पकड़ते घूमते हैं। हमारा क्या, हम तो लेखक ठहरें यहाँ सब देखेंगे और इसके खिलाफ लिखेंगे।"[204] इस कथन के द्वारा शासन के प्रति साहित्यकारो की निर्भीकता और स्पष्टवादिता द्रष्टव्य है। इसी प्रकार सुभद्रा कुमारी चौहान के सस्मरण मे जेल जीवन को अकित किया है। सुभद्रा के लिए ए क्लास और बी क्लास में कोई अन्तर नही था। जहाँ सम्पन्न परिवार की सत्याग्रही माताओं के बच्चे के लिए बाहर से मेवा मिष्ठान्न आ जाता था जबकि सुभ्रदा को अपनी भूख से रोती हुई बच्ची को महिला कैदियों से थोड़ी सी दाल लेकर भूनकर खिलानी पड़ी थी। इस प्रकार समाज में विद्यमान उच्च और निम्न वर्ग के गरीबी की खाई पाटना आसान नहीं था।

भारतीय जनजीवन को परम्परगत रूढियाँ किस प्रकार आबद्ध किए थी और ये साहित्यकार किस प्रकार उनका विरोध कर रहे थे, इसका सजीव चित्रण सुभद्राकुमारी चौहान के सस्मरण मे मिलता है—जहाँ वे अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर कन्यादान की प्रथा के विरुद्ध खड़ी होती है। सुभद्रा कुमारी चौहान की दृढ़ आवाज सुनाई देती है—"मैं कन्यादान नहीं करूगी। क्या मनुष्य-मनुष्य को दान करने का अधिकारी है? क्या विवाह के उपरान्त मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी।"[205] इसी प्रकार प्रकार चिरप्रचलित परम्पराओ के विरुद्ध सुभद्रा कुमारी चौहान की विद्रोही वाणी पुकार उठती है—"चिरप्रचलित रूढ़ियों और चिरसचित विश्वासों को आघात पहुँचाने वाली हलचलों को हम देखना-सुनना नहीं चाहते। हम ऐसी हलचलों को अधर्म समझकर उनके प्रति आँख मीच लेना उचित समझते हैं, किन्तु ऐसा करने से काम नहीं चलता। वह हलचल और क्रान्ति हमें बरबस झकझोरती है और बिना होश में लाये नहीं छोड़ती।"[206]

निराला के सन्दर्भ मे आधुनिक जीवन प्रणाली के अन्तर्गत अतिथि आगमन के अवसर पर जो दृश्य महादेवी ने खींचा है, वह अपनी यथार्थता के कारण कितना प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। वे वर्तमान समय में घर में अतिथि आगमन के चरित्र के साथ निराला द्वारा किया गया अतिथि सत्कार की तुलना करते हुए लिखती हैं कि—"अब अतिथि पूजा के वैसे अवसर कम ही आते हैं और यदि आ भी पड़े तो देवता के क्षौर, अभिषेक, शृगार आदि सस्कार बेयरा, नौकर आदि ही सम्पन्न करा देते हैं। पुजारी गृहपति को तो भोग लगाने की मेज पर उपस्थिति रहने भर का कर्तव्य सभालना पड़ता है। कुछ देवता इस कर्तव्य से भी उसे मुक्ति दे देते हैं।"[207]

साहित्य सृजन को कभी भी समाज में उच्च स्थान प्राप्त नहीं रहा और 'पथ के साथी' के अन्तर्गत सग्रहीत संस्मरण भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। सुमित्रानन्दन पन्त के संस्मरण में महादेवी

लिखती हैं कि—"कवि पुत्र, परिवार का सबसे बेकार अग माना जाता है।"[208] सुभद्राकुमारी चोहान के सस्मरण मे तो महादेवी ने कविता लेखन को अपराज के अन्तर्गत स्वीकार किया है, वे लिखती हैं कि—"उस युग में कविता रचना अपराध की सूची में था। कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनाने वाले के मुख की रेखाए इस प्रकार वक्र कुचित हो जाती थी। मानो उन्हे कोई कटुतिक्त पेय पीना पड़ा हो।"[209]

'पथ के साथी' के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उस युग में प्राय सभी साहित्यकार आर्थिक विषमता से ग्रस्त रहे। अधिकाश को तो ऋणभार विरासत में प्राप्त हुआ था। जयशकर प्रसाद, निराला पन्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, मैथिलीशरण गुप्त सभी को आर्थिक कठिनाईयो का सामना करना पड़ा था। सुभद्रा कुमारी चौहान को तो अपने बच्चों को दूध के स्थान पर चावल के घोल का सफेद पानी देकर बहलाना पड़ता था। प्रकाशक भी साहित्यकारों का शोषण किया करते थे और स्वय लेखको द्वारा अपनी पुस्तक से अर्थलाभ की बात सोचना कल्पना से परे था।

साहित्यकारो के विषय में यह आम धारणा प्रचलित है कि वे अपने परिवार के विषय मे उदासीन रहते हैं। परन्तु 'पथ के साथी' इस धारणा का निरसन करता है। उनमें केवल अपने परिवारजन के लिए ही नहीं वरन् समाज के निम्न से निम्न वर्ग के प्रति भी सहृदयता, उदारता और आत्मीयता के दर्शन होते हैं। महादेवी लिखती है कि—प्राय, सभी सच्चे कलाकारो में सवेदनशीलता का आधिक्य स्वाभाविक है। पर सबके सुख-दुखो से तादात्म्य का परिणाम उनकी कला ही होती है।"[210]

साहित्यकारों मे दूसरों के दुखो के साधारणीकरण के साथ-साथ स्वाभिमान की मात्रा भी पर्याप्त मात्रा में होती है, जिसका परिचय मैथिलीशरण गुप्त के सस्मरण में मिलता है, वे लिखती है कि—"एक ओर अर्थपति की अवज्ञा स्वाभाविक थी, दूसरी ओर गुप्त जी की नम्रता के तल में छिपे ज्वालामुखी में विस्फोट होना। जब उन्होंने अपनी सप्रयत्न सीखी याचक की भूमिका भूल कर सम्भाव्यदाता को फटकारना आरम्भ किया तब भाई कृष्णदासजी को कुछ पाने की आशा छोड़कर भागने का द्वार खोजना पड़ा।"[211]

महादेवी के बारे में तो यह प्रसिद्ध ही है कि वे बहुत हँसती हैं लेकिन 'पथ के साथी' के अन्तर्गत वर्णित प्राय सभी साहित्यकारों के स्वभाव की प्रमुख विशेषता उनकी मुक्त हसी है जिसका परिचय पग-पग पर मिलता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के सम्बध में महादेवी लिखती हैं— "दृढ़ता का निरन्तर परिचय देने वाले अधरों से जब हँसी का अजस्र प्रवाह बह चलता था तब अभ्यागत की स्थिति वैसी हो जाती थी जैसे अडिग और रन्ध्रहीन शिला से फूट निकलने वाली निर्झर के सामने सहज है।[212] मैथिलीशरण गुप्त के विषय में वे लिखती हैं-वे 'स्वभाव से प्रसन्न और विनोदी है।'[213] सुभद्राजी और महादेवी के विषय में तो प्रसिद्ध ही है —'हम दोनों जब साथ रहती थी, तब बात एक मिनिट और हँसी पाँच मिनिट का अनुपात रहता था।'[214]

साहित्यकारों के मध्य ईर्ष्या, द्वेष और स्पर्धा तो प्राय हर युग मे रही है लेकिन उनके व्यक्तिगत सबध इससे प्रभावित नही होते। 'पंत और पल्लव' पुस्तक की रचना द्वारा पत की कटु आलोचना करनेवाले निराला पंत की मृत्यु की झूठी खबर की सच्चाई जानने के लिए रात भर पार्क मे लेटे रहे। इसी प्रकार सुभद्रा कुमारी चौहान के विषय मे वे लिखती है-"अपने किसी भी परिचित, अपरिचित साहित्य साथी की त्रुटियो के प्रति सहिष्णु और उसके गुणों के मूल्याकन मे उदारता से काम लेना सुभद्राजी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता का उनमे सर्वथा अभाव था।"[215]

'पथ के साथी' के अन्तर्गत वर्णित उपर्युक्त साहित्यकारों के व्यक्तित्व और जीवन दर्शन का परिचय तो महादेवी की लेखनी से साकार हुआ ही है साथ ही महादेवी के व्यक्तित्व का भी इसमे समावेश हो गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी जितनी कुशलता से अपने पात्रो के चरित्र की आन्तरिक और बाह्य विशेषताओ को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं उतनी ही तत्परता के साथ उनके सामाजिक परिवेश और समाज मे उनकी स्थिति के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों की भी विवेचना करती चलती हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि महादेवी इन पात्रों के साथ निरन्तर उपस्थित रही हैं, जैसा कि उन्होंने प्रारम्भ मे ही स्वीकार किया है कि इन पात्रो के साथ निलिप्तता और असगता महादेवी के लिए सभव भी नहीं थी अत उन्होंने पूरी आत्मीयता के साथ 'पथ के साथी' के रूप में इनका स्मरण किया है।

मेरा परिवार:-1972 में प्रकाशित 'मेरा परिवार' महादेवी वर्मा की पाँचवीं गद्यकृति है जिसमें उन्होंने बचपन से ही अपने साथ रहने वाले मानवेतर प्राणियों की एक-एक गतिविधि का निरीक्षण अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ किया है और कालान्तर में इन प्राणियों के प्रति तीव्र सवेदना और व्यापक सहानुभूति के कारण उनके चित्रांकन मे अपनी अद्भुत कला क्षमता का परिचय दिया है। इलाचन्द्र जोशी लिखते हैं कि 'महादेवीजी ने कुछ विशिष्ट मानवेतर प्राणियों के प्रति अपनी जिस सहज, सौहार्द और एकात आत्मीयता की अभिव्यजना का जो अपूर्व कला-कौशल अपने इन चित्रों में व्यक्त किया है, वह केवल उनकी अपनी ही कला की विशिष्टता की दृष्टि से नहीं वरन ससार-साहित्य की इस कोटि की कला के समग्र क्षेत्र में भी बेमिसाल और बेजोड़ हैं। ये कृतिया मानवीय भावज्ञता, संवेदना और कलात्मक प्रतिभा के अपूर्व निदर्शन की दृष्टि से शाब्दिक अर्थ में अपूर्व और अद्भुत कलात्मक चमत्कार के नमूने है।'[216] वस्तुत. महादेवी विशाल परिवार की स्वामिनी है। वे जितनी आत्मीयता और स्नेह अपने सम्पर्क में आये हुए दीन और शोषित प्राणियों का देती है, उतनी ही या सम्भवत उससे भी अधिक आत्मीयता के साथ पशु जगत और पक्षिजगत के प्राणियों का विवेचन करती हैं। वे इन मानवेतर प्राणियों के दुख में दुखी और सुख में सुखी होती हैं। 'मेरा परिवार' की रचना की प्रेरणा बचपन की एक घटना है जिसमें उनके एक कुक्कुट शावक को उनकी नई मिस साहब अपने भोजन के लिए ले जाती है

और महादेवी द्वारा अनवरत् क्रन्दन के बाद ही वह कुक्कुट शावक उन्हें वापस मिलता है और तब से ही वह स्वामित्व-प्रदर्शन के लिए अपने पालतू पशुओं के परिचय चिह्न अकित करती जाती हैं और वे लिखती है कि-'बालकपन की इसी गद्यात्मक अभिव्यक्ति के बीज पर मेरे सारे सस्मरण अकुरित, पल्लवित और पुष्पित हुए हैं।'[217]

अन्तर्वस्तु.- 'मेरा परिवार' का प्रारम्भ नीलकण्ठ मोर और राधा नामक मोरनी से होती है, जिसे वे नखासकोने से लाती हैं तथा जिनके आगमन से उनके घर में ऐसा ही उत्साह होता है, जैसा नववधू के आगमन पर परिवार में स्वाभाविक है। धीरे-धीरे बड़े होने पर वे क्रमश इल्ली से तितली में परिवर्तित होने लगे। महादेवी उनका सौन्दर्याकन करती हुई लिखती हैं-'रगरहित पैरों को गर्वीली गति ने एक नयी गरिमा से रजित कर दिया। उसका गर्दन ऊँची कर देखना, विशेष भगिमा के साथ उसे नीचा कर दाना चुगना, पानी पीना, टेढी कर शब्द सुनना आदि क्रियाओं में जो सुकुमारता और सौन्दर्य था, उसका अनुभव देखकर ही किया जा सकता है। गति का चित्र नहीं आका जा सकता।[218] नीलकण्ठ ने चिड़ियाघर के अन्य जीव-जन्तुओं के लिए सेनापति और सरक्षक की भूमिका स्वीकार की। राधा और नीलकण्ठ हमेशा साथ रहते थे और उनकी प्रिय ऋतु वर्षा ऋतु थी। मेघ की गर्जना के साथ उनके नृत्य का प्रारम्भ होता और रिमझिमाहट जितनी बढ़ती जाती उतना ही उनके नृत्य का वेग बढ़ता जाता। नीलकण्ठ और राधा के परस्पर प्रेम के मध्य व्यवधान कुब्जा नामक अन्य मोरनी के आने पर पड़ा, जो स्वभाव में अपने नाम के अनुरूप थी। उसकी वजह से नीलकण्ठ और राधा को अलग-अलग रहना पड़ा और इसी कारण से एक दिन नीलकण्ठ की मृत्यु हो जाती है। कलह-कोलाहल और द्वेष से परिपूर्ण कुब्जा को भी कजली के आक्रमण से बचाया नहीं जा सका। और राधा नीलकण्ठ का इन्तजार करती हुई अकेली रह जाती है। महादेवी द्वारा किया गया इन पक्षियो का चित्राकन अपने अलग-अलग स्वभाव तथा चारित्रिक विशेषताओं के कारण स्मरणीय बन गया है।

दूसरी कथा गिल्लू गिलहरी की है जो उन्हे घायलावस्था में प्राप्त होता है और अत्यधिक उपचार के बाद ही वह बच पाता है। महादेवी उसे गिल्लू नाम देकर उसकी जातिवाचक सज्ञा को व्यक्तिवाचक का रूप दे देती हैं। गिल्लू उनके साथ दो वर्ष तक रहा। वह उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए कभी उनके कमरें में आते ही सर से पैर तक दौड़ लगाता, कभी घटों मेज पर दीवारों के सहारे खड़े रहता, कभी फूलदान के फूलों में छिप जाता, कभी परदे की चुन्नट में और कभी सोनजुही की पत्तियों में। गिल्लू उनके साथ इतना घुलमिल गया था कि उनके साथ ही वह खाना खाता था। महादेवी लिखती हैं-'मेरे पास बहुत से पशु-पक्षी और उनका मुझसे लगाव भी कम नहीं है, परन्तु उनमें से किसी को मेरे साथ मेरी थाली में खाने की हिम्मत हुई है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता।'[219] गिल्लू में मानवीय संवेदना भी है। मोटर दुर्घटना में महादेवी के घायल होने पर वह बराबर

उनके साथ रहता है। 'महादेवी लिखती है-'मेरी अस्वस्थता मे वह तकिये पर सिरहाने बैठकर अपने नन्हे-नन्हे पजो से मेरे सिर और बालों को इतने हौले-हौले सहलाता रहता कि उसका हटना एक परिचारिका के हटने के समान था'[220] और एक दिन वह महादेवी की उगुली पकड़कर ही मर जाता है। उसे सोनजुही की लता के नीचे समाधि दी जाती है क्योंकि उसे वह लता सबसे प्रिय थी। महादेवी लिखती है-"इसलिए भी कि उस लघुगात का किसी बासन्ती दिन, जूही के पीताम छोटे फूल में खिल जाने का विश्वास, मुझे सतोष देता है।"[221]

महोदेवी के विशाल परिवार में सोना हिरनी का विशेष स्थान था जो आँगन से लेकर छात्रावास तक कुलाँचे भरा करती थी। उसका दिन भर का कार्यक्रम निश्चित था। वह सुबह दूध पीकर और भीगे चने खाकर कम्पाउण्ड में जाती, फिर छात्रावास के हर कमरे का निरीक्षण करती, उसके बाद घास के मैदान मे घूमकर महादेवी के खाने के वक्त उनके पास पहुँच जाती। उनके प्रति स्नेह प्रदर्शन करने के लिए वह उनके सिर के सामने या पीछे से छलाग लगाकर सिर के ऊपर से दूसरी ओर निकल जाती या फिर उनकी साड़ी का छोर मुँह मे भर लेती या फिर उनकी चोटी ही चबा लेती। महादेवी स्वीकार करती हैं कि हिरन को पालने के बाद ही यह जाना जा सकता है कि क्यो इस पशु को सस्कृत-ग्रथों में इतना महत्व दिया गया। वे लिखती है-"पालने पर वह पशु न रहकर ऐसा स्नेह-सगी बन जाता है, जो मनुष्य के एकान्त शून्य को तो भर देता है, परन्तु खीझ उत्पन्न करने वाली जिज्ञासा से उसे बोझिल नहीं बनाता।"[222] सोना हिरनी का अन्त अत्यन्त मार्मिक है। महादेवी की अनुपस्थित में रस्सी से बधी होने के कारण रस्सी की लम्बाई से भी अधिक ऊँची छलाग लगाती है और जमीन पर गिरकर अतिम सास लेती है। सोना की व्यथा-कथा के माध्यम से महादेवी शिकारियों के प्रति भी अपना आक्रोश और रोष व्यक्त करती हैं कि यह वर्ग कोमल और निरीह-प्राणियों को मारने को कैसे मनोरजन के रूप में स्वीकार करता है। महादेवी प्रश्न करती हुई लिखती हैं-'पक्षि-जगत में ही नहीं, पशुजगत में भी मनुष्य की ध्वस-लीला ऐसी ही निष्ठुर है। पशु-जगत में हिरन जैसा निरीह और सुन्दर दूसरा पशु नहीं है, उसकी आँखे तो मानो करुणा की चित्रलिपि हैं। परन्तु इसका भी गतिमय सजीव सौन्दर्य मनुष्य का मनोरजन करने में असमर्थ है। मानव को जो जीवन का श्रेष्ठतम रूप है, जीवन के अन्य रूपों के प्रति इतनी वितृष्णा और विरक्ति और मृत्यु के प्रति इतना मोह और आकर्षण क्यों ?'[223]

महादेवी के इस विचित्र और विशाल परिवार का एक अन्य सदस्य लड़ाकू, दुर्मुख और दुर्वासा जैसी सज्ञाओं से विभूषित खरगोश था। उसे 'लड़ाकू' सज्ञा सजातीय और विजातीय दोनों से ही मेल न रखने के कारण, 'दुर्मुख' कटखन्ने स्वभाव के कारण और 'दुर्वासा' अकारण क्रोधी प्रवृत्ति के कारण प्राप्त थी। उसके रूप का वर्णन महादेवी इस प्रकार करती हैं-'कुछ बड़े-बड़े सघन, कोमल और चमकीले फर के रोमों से उसका शरीर आच्छादित था, पूँछ छोटी और सुन्दर तथा पंजे स्वच्छ थे, जिनसे वह हर समय अपना मुख साफ करता रहता

था। कान विलायती खरगोशों के कानो के समान कुछ कम लम्बे थे, परन्तु उनकी सुडौलता और सीधे खड़े रहने मे विशेष सौन्दर्य था।'[224] उसका एक कान काला और एक सफेद था तथा काले कान की ओर की आँख काली तथा सफेद कान की ओर की आँख लाल थी, जो ऐसी लगती थी 'मानो दो भिन्न खरगोशों का आधा-आधा शरीर जोड़कर एक बना दिया गया हो और आँखों में एक ओर नीलम और दूसरी ओर रूबी का चमकीला मनका जड़ दिया हो। स्वजाति की सतर्कता और आतकित मुद्रा का उसमें सर्वथा अभाव था।[225] क्रोधी स्वभाव के कारण वह अपने दो बच्चों को मार डालता है तथा साँप पर भी अकारण झपट पड़ने के कारण अपने जीवन से उसे हाथ धोना पड़ता है। दुर्मुख की इस कथा से हमें खरगोश के स्वभाव की कुछ जानकारी भी होती है जैसे 'खरगोश जैसे जीव मिट्टी खोदकर अपने लिए निवास बनाकर ही प्रसन्न होते हैं' अथवा 'प्राय खरगोश की गध से साँप आ जाते हैं क्योकि वह उसके प्रिय खाद्यो मे से एक है।' महादेवी के खरगोश विषयक ज्ञान से हम विस्मित हुए बिना नहीं रहते।

महादेवी का विशाल परिवार तब तक सम्पूर्ण नहीं होता जब तक उसमे गौरागाय का प्रवेश नहीं होता क्योंकि गाय भारतीय समाज में हमेशा से आदरणीय रही हैं। महादेवी के घर मे गाय के पहुँचने पर गुलाबो की माला डालकर, केशर-रोली का टीका लगाकर आरती उतारी जाती है। उस समय की सुषमा का वर्णन करते हुए महादेवी लिखती हैं-'उसकी बड़ी चमकीली और काली आँखों मे जब आरती के दिये की लौ प्रति-फलित होकर झिलमिलाने लगी, तब कई दियों का भ्रम होने लगा। जान पड़ा जैसे रात में काली दिखने वाली लहर पर किसी ने कई दिये प्रकाशित कर दिये हों।'[226] गौरा शीघ्र ही सबसे हिलमिल गई और पशु पक्षी अपनी लघुता तथा उसकी विशालता का अन्तर भूलकर उसके पास खेलने लगे। गौरा ने एक वर्ष बाद गेरू जैसे लाल रग के बछड़े को जन्म दिया जिसके माथे पर पान के आकार का श्वेत तिलक और चारों पैरो में खुरो के ऊपर सफेद वलय ऐसे लगते थे, मानो गेरू की बनी वत्समूर्ति को चाँदी के आभूषणों से अलकृत कर दिया गया हो। फिर महादेवी के घर दुग्धोत्सव प्रारम्भ होता है और आसपास रहने वाले बालगोपाल से लेकर पशु पक्षी तक सभी को दूध मिलने लगता है और एक दिन महादेवी का ग्वाला गाय को गुड़ में सुई रखकर खिला देता है, जिससे रक्त-सचार रुक जाने के कारण गाय की मृत्यु हो जाती है।उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा की घड़ियाँ अत्यन्त कठिन हो जाती है। महादेवी उस स्थिति का वर्णन निम्न शब्दों में करती हैं-"निरुपाय मृत्यु की प्रतीक्षा का मर्म वही जानता है, जिसे किसी असाध्य और मरणासन्न रोगी के पास बैठना पड़ता हो।'[227]

महादेवी के परिवार का एक अन्य सदस्य नीलू कुत्ता था जो अल्सेशियन माँ और भूटिया पिता की सन्तान था उन दोनों की विशेषताओं का उसमें जो समावेश था, उसकी ओर सकेत करती हुई महादेवी लिखती हैं कि- 'सिर ऊपर की ओर अन्य कुत्तों के सिर से बड़ा और चौड़ा था और नीचे लम्बोतरा, पर सुडौल। पूँछ

अल्सेशियन कुत्तों की पूँछ के समान सघन रोगों से युक्त, पर ऊपर की ओर मुड़ी कडलीदार थी। पैर अल्सेशियन कुत्ते के पैरो के समान लम्बे पर पजे भूटिये के समान मजबूत, चौड़े और मुड़े हुए नाखूनो से युक्त थे। शरीर मे ऊपर का भाग चौड़ा, पर नीचे का पतले पेट के कारण हल्का और तीव्रगति का सहायक था। आँखे न काली थी, न भूरी और न कजी। उन गोल और काली कोर वाली आँखो का रग शहद के रग के समान था, जो धूप में तरल सुनहला हो जाता था और छाया में जमें हुए मधु सा पारदर्शी लगता था।''[228] नीलू मे स्वाभिमान भी था। यदि उसे अवज्ञा के साथ भोजन दिया जाय तो वह उसकी ओर देखता भी न था। इसके अतिरिक्त उसमे अन्य कुत्तों के समान खाने के लिए लालायित रहना, कृतज्ञता ज्ञापन के लिए अपने स्वामी को चाटना, याचक के समान पीछे-पीछे घूमना आदि विशेषताओं का अभाव था। परोपकारिता के कारण वह खरगोशो को जगली बिल्ले से बचाने के लिए रात भर सुरग के मुहाने पर खड़ा रहता है। महादेवी के साथ वह 14 वर्ष तक रहा था। उसकी मृत्यु भी दीनता से रहित थी। महादेवी लिखती हैं-''कुत्ते की मौत मरना कहावत है, परन्तु यदि नीलू के समान शात निर्लिप्त भाव से कोई मृत्यु का सामना कर सके तो ऐसी मृत्यु मनुष्य को भी काम्य होगी।''[229]

महादेवी की स्मृति मे मानवेतर प्राणियो में तीन ऐसे जीव सुरक्षित हैं जो बचपन में उनके साथ रहे। रोजी कुत्ती, निक्की नेवला तथा रानी घोड़ी। महादेवी में पशुप्रेम का आविर्भाव भी रोजी के साहचर्य से ही जाग्रत हुआ था जो उनके पाचवे जन्मदिन पर पिता के राजकुमार विद्यार्थी द्वारा भेंट मे दी गई थी। वह महादेवी के कमरे मे उनके साथ रहा करती थी। रोजी का रूप वर्णन तथा चारित्रिक विशेषता का वर्णन करते हुए वे लिखती हैं-'रोजी सफेद थी, किन्तु उसके छोटे सुडौल कानों के कोने, पूँछ का सिरा, माथे का मध्यभाग और पजों का अग्राश कत्थई रग का होने के कारण उसमें कत्थई किनारे वाली सफेद साड़ी की सबल रगीनी का आभास मिलता है। वह छोटी पर तेज है, टैरियर जाति की कुत्ती थी और कुछ प्रकृति से और कुछ हमारे साहचर्य से श्वान दुर्लभ विशेषताए उत्पन्न हो जाने के कारण घर में उसे बच्चों के समान ही वात्सल्य मिलता था।[230] रोजी भ्रमण में तथा हर शैतानी के समय उनके साथ थी। ये सभी पिता के कॉलेज जाने तथा माता के गृहकार्य में व्यस्त रहने पर दोपहर में खिड़की के रास्ते निकलकर आम के वृक्ष से घिरे सूखे पोखर को विश्रामालय बनाते थे। वहीं से एक दिन रोजी कच्ची अबिया के स्थान पर एक नेवले को उठा लाती है। महादेवी उस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखती हैं-'उनकी नकुल सृष्टि का कोई लघु, परन्तु हमारे ही समान अराजकतावादी सदस्य, अपने सृजनकर्ताओं की दृष्टि बचाकर सूखी पत्तियों के समुद्र में ऊपर तैर आया था। पत्तियों से छोटा मुँह निकालकर उसने जैसे ही बाहर के ससार पर विस्मित दृष्टि डाली, वैसे ही अपने-आपको रोजी के छोटे और अधेरे मुख-विवर में आया।[231] आकार में गिलहरी के समान नेवले को लेकर वे उसे घर लेकर आए और माता द्वारा उपदेश दिए

जाने पर उसे वापस उसके बिल में रखने भी गए। नेवले के माध्यम से महादेवी ने बालस्वभाव का मनोहारी चित्रण किया है-'छोटे से बिल मे रात दिन पड़े माता-पिता को सामने बैठे रहने मे जो कष्ट बच्चे को हो सकता है, उसका हम अनुमान कर सकते थे। यदि एक छोटे कमरे में हमें सामने बैठाकर बाबूजी रातदिन पढ़ाते रहे और माँ सिलाई-कढ़ाई में लगी रहें, तो हमारा क्या हाल होगा। ऐसी ही कोई अप्रिय स्थिति बिल में रही होगी, नही तो यह इतना छोटा बच्चा भागता ही क्यों?'[232] और बिल के न मिलने पर वह निराश होने के स्थान पर खुश होकर वापस आए। इस प्रकार उनके लघु परिवार मे एक लघुतम सदस्य शामिल हो जाता है।

निक्की महादेवी के साथ रहता था और स्कूल जाने पर वह स्कूल के बाहर उनकी प्रतीक्षा किया करता था। निक्की के माध्यम से नेवले की विशेषताओं का उल्लेख करती हुई वे लिखती हैं -'नेवला बहुत स्नेही और अनुशासित जीव है। गिलहरी के खाने योग्य कीट, पतग, फल, फूल आदि कोई भी खाद्य खाकर वह अपने पालने वाले के साथ चौबीस घटों रह सकता है। जेब में, कन्धे पर, आस्तीन मे, बालो मे जहा कहीं भी उसे बैठा दिया जावे, वह शान्त स्थिर भाव से बैठकर अपनी चचल पर सतर्क आँखों से चारों ओर की स्थिति देखता-परखता रहता है।'[233] नेवले की सर्प से दुश्मनी भी अत्यन्त पुरानी है। महादेवी नेवले के बारे में बताती है कि नितान्त निर्विष होने पर भी उसमे विषधर साँपों को मार डालने की अद्भुत शक्ति रहती है। साँप को मारने पर भी नेवला स्वय साँप के विष से नहीं मरता और न साँप के साथ हुए सघर्ष में परास्त होता है।

इसी समय महादेवी के परिवार में बच्चों की सवारी के लिए रानी घोड़ी शामिल की जाती है, जो अत्यत सुन्दर है। उसकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए महादेवी लिखती हैं कि-"हल्का चाकलेटी चमकदार रग, जिस पर दृष्टि फिसल जाती थी। खड़े छोटे कानों के बीच में माथे पर झूलता अयाल का गुच्छा, बड़ी, काली, स्वच्छ और पारदर्शी जैसी आँखें, लाल नथुने, जिन्हें फुला-फुलाकर वह चारों ओर की गन्ध लेती रहती।"[234] उस पर सवारी के लिए सभी का समय निश्चित था लेकिन महादेवी की विद्रोही प्रकृति इतने से सतुष्ट न थी और वे सबसे छुपाकर उस पर सवारी करती थी। एक दिन महादेवी के रानी घोड़ी पर बैठने पर उनका छोटा भाई उसे मार देता है। रानी घोड़ी नदी, नाले, सड़क, पेड़ आदि को पीछे छोड़ते हुए अत्यन्त तीव्रगति से दौड़ती है और महादेवी उसके ऊपर से गिर जाती हैं और उनके गिरने पर रानी पश्चाताप से मर जाती है-स्वस्थ होने पर, जब वह रानी के पास जाती है तो वह ऐसी करुण पश्चाताप भरी दृष्टि से उन्हें देखकर हिनहिनाने लगती कि उनके आँखों मे आँसू आ जाते हैं। रानी उनके भाई के खोये हुए सोने के कड़े भी खोज देती है। कुछ समय बाद सभी पढ़ने के लिए बाहर चले जाते हैं और उनके वापस आने तक निक्की मर जाता है, रानी और उसका बच्चा किसी को दे दिए जाते हैं और रोजी अकेली रह जाती है।

'मेरा परिवार' में वर्णित पशुपक्षियो के इस विवरण से स्पष्ट है कि महादेवी ने अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ इनकी चारित्रिक तथा स्वभावगत विशेषताओं का उल्लेख किया है। उनमे निरीक्षण शक्ति अत्यन्त प्रबल है। वे प्रत्येक चरित्र के रूप का वर्णन बड़ी बारीकी से करती हैं, जो उनके अद्भुत कला-कौशल का उत्कृष्ट नमूना है। इलाचन्द्र जोशी ने उचित ही लिखा है कि-"इन गद्यचित्रो के पात्र भले ही मानव न हों, पर हैं वे सब मानवीय सवेदना के सूक्ष्मतर अनुभूति से ओतप्रोत हैं उन सभी मानवेतर पात्रो की गतिविधि की सचालिका के रूप में कवयित्री का व्यक्तित्व इन चित्रों में अपनी परिपूर्ण मानवीयता के साथ उभरकर पग-पग पर पाठक की चेतना के अणु-अणु में अपने अमृत-स्पर्श का सचार करता चला जाता है।"[235] वास्तव मे 'मेरा परिवार' हिन्दी साहित्य की दुर्लभ कृति है।

गद्य रचनाएँ : भाषा और शिल्प

युग मे आए हुए परिवर्तन के साथ विचारधाराये भी बदलती है और विचारधारा मे हुए परिवर्तनो का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है। हमारे आधुनिक काल के साहित्य की भी यही गति है। यद्यपि आधुनिक काल के साहित्य में पुरानी विधाए तो सर्वस्वीकृत रही हैं, परन्तु साथ ही कुछ नई विधाओ ने भी साहित्य जगत मे अपना स्थान बनाया। प्राचीन काव्य और कथा साहित्य मे विषयगत तत्वों का जितना प्राधान्य था, अब वही स्थान आत्मगत तत्वो को मिल गया है। इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम सस्मरण विधा है। सस्मरण मे घटनाएँ स्वाभाविक रूप से क्रमबद्ध ढग से सामने नहीं आती, वरन् कोई घटना अथवा विषय स्मृति को इस प्रकार प्रभावित करता है कि स्मृति को अचानक उस विषय से सम्बधित अतीत की अनेक भूली हुई बाते याद आ जाती हैं। वह उन्मुक्त भाव से अतीत में विचरण करने लगती है और अतीत की भूली हुई एक-एक घटना को हमारे सामने उसी प्रकार प्रस्तुत करती है, जिस प्रकार ककड़ी की चोट से जल मे जमा हुआ तत्व सतह पर उतराने लगता है।

समय की माँग के अनुसार जैसे-जैसे साहित्य में भावानुभूति प्रधान होने लगी है, वैसे ही उसको व्यक्त करने के साधन-भाषा तथा शैली मे भी पर्याप्त अन्तर आ गया। वैज्ञानिक विकास ने जहाँ मानव को जीने के अनेक साधन सुलभ कराये, वहाँ उसके भावानुभवों को इतना उलझा दिया कि इन उलझी हुई भाव स्थितियों को व्यक्त करने के लिए शैली तथा भाषा में आए हुए परिवर्तन को सभी ने स्वीकार कर लिया। भाषा और शैली प्रत्येक लेखक की निजी विशेषता होती है। सभी लेखक एक ही बात को समान ढग से व्यक्त नहीं करते। हर एक का ढग अलग-अलग होता है। इस अलग-अलग ढग से विचार प्रकट करने का तरीका ही शैली कहलाती है तथा विचार प्रकट करने के साधन को भाषा कहते हैं। जिस प्रकार महादेवी का गद्य साहित्य अपनी विषयगत

प्रवृत्तियों के कारण अनुपम बन पड़ा है उसी प्रकार उनकी भाषा शैली भी अभूतपूर्व है। महादेवी का गद्य कई प्रकार का है, अत भाषा और शैली भी विषय के अनुसार कई प्रकार का है। सस्मरणात्मक साहित्य की भाषा जहाँ सहज, सरल और सरस है वहीं आलोचनात्मक निबधो में उनकी भाषा सस्कृतगर्भित एव क्लिष्ट भी हो गई है। नारी विषयक निबन्धों में विषयानुरूप वे उत्तेजित हो जाती हैं और इस उत्तेजना का प्रभाव उनकी भाषा और शैली पर भी पड़ता है, भाषा वहाँ ओजपूर्ण और कहीं-कही व्यग्यात्मक भी हो गई है। महादेवी के गद्य साहित्य की भाषा के सम्बध मे हर्षनदिनी भाटिया के विचार हैं कि -"उनके गद्य में उनके कवि हृदय की विशालता, उनकी कल्पना-शक्ति, उद्भावना-वृत्ति इतनी घुलमिल गई है कि उनका परिष्कृत गद्य जहा एक ओर चिन्तनपूर्ण हो गया है, वहाँ दूसरी ओर भावमय।"[236]

कोई भी कवि जब गद्य लेखन के क्षेत्र में प्रवृत्त होता है तो उसकी भाषा में काव्यात्मकता का आना स्वाभाविक ही है। महादेवी की कवित्व-प्रतिभा ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलकारों का आश्रय लेकर सस्मरण की है। निबध दोनों मे ही बड़ी भावपूर्ण व्यजना की है। उनकी कवित्व शक्ति के बल पर प्रकृति उनकी इन रचनाओ में कितनी सजीव हो उठी है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-"फागुन की गुलाबी जाड़े की वह सुनहरी सध्या क्या भुलायी जा सकती है सबेरे के पुलक पखी वैतालिक एक लयवती उड़ान में अपने-अपने नीड़ों की ओर लौट रहे थे। विरल बादलो के अतराल से उन पर चलाए हुए सूर्य के सोने के शब्दवेधी बाण उनकी उन्मद गति में ही उलझकर लक्ष्य भ्रष्ट हो रहे थे।"[237]

सध्या समय गोधूलि के वातावरण को भी निम्न पक्तियों ने जैसे हमारी आँखो के सम्मुख सजीव चित्र ही प्रस्तुत कर दिया गया है-"सध्या के लाल सुनहली आभा वाले उड़ते हुए दुकूल पर रात्रि ने मानो छिपकर अजन की मूठ चला दी थी।"[238]

निबधों में विचारात्मकता एव आलोचनात्मकता का तत्व प्रधान होने के कारण भाषा क्लिष्ट तत्सम प्रधान एव सस्कृतगर्भित हो गई है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-"परिवर्तनों के कोलाहल में काव्य जब से मुकुट और तिलक से उतरकर मध्यवर्ग के हृदय का अतिथि हुआ तब से आज तक वही है और सत्य कहें तो कहना होगा कि उस हृदय की साधारणता ने कवि के नेत्रों से वैभव की चकाचौंध दूर कर दी और विषाद ने कवि को धर्मगत सकीर्णताओं के प्रति असहिष्णु बना दिया।"[239]

सस्मरणात्मक साहित्य की भाषा सहज, सरस, सयत, परिष्कृत एव प्रौढ़ है। कबीर की भाँति बात को दरेरा देकर कहने की प्रवृत्ति भी उनमें विद्यमान है। प्रसग के अनुकूल भाषा में हास्य, व्यग्य और विनोद का भी समावेश हो जाता है। व्यग्यात्मकता का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है- "वृद्ध जीवन के कम से कम 54 बसत और

पतझड़ देख चुके होंगे। दो अर्धांगिनियाँ मानों उनके जीवन की द्रुतगति से पग न मिला सकने के कारण ही उनका संग छोड़ गयी हैं। उनसे मिले उपहार स्वरूप दो पुत्रों में से एक कलकत्ते में कोई व्यवसाय करता है और दूसरा ससुराल की धरोहर बन गया है। दो मकान और कुछ धन है, इसी से वानप्रस्थ आश्रम को भी कुछ सरस बनाए रखने के लिए वृद्ध महोदय को एक संगिनी ढूँढने की आवश्यकता जान पड़ी।''240

महादेवी ने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए अन्य भाषाओं के शब्दों को भी निस्संकोच अपनी भाषा में स्थान दिया है। इसलिए उनकी भाषा में स्थान-स्थान पर संस्कृत, तत्सम, तद्भव, अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं।-

संस्कृत शब्द— समृद्ध, आकुल, अवगुण्ठन, यवनिका, अरण्यरोदन, नवोढ़ा, अचिन्त्य, मूर्तिमत्ता, अनभिज्ञ, प्राचीर, कृश, तारुण्य, क्षुत्क्षाम, यथार्थवादी आदि शब्द।

फारसी शब्दी— लबालब, चीज़, हुलिया, निशान, शबनम, शबरात, बेहोशी, गुंजाइश, मर्सिया, मौलवी साहब, फिजूलखर्ची आदि शब्द।

अंग्रेजी शब्द— इंलार्जमेंट, कम्पाउण्ड, पेरिसप्लास्टर, ड्रामा, स्कूल, मास्टर, क्लेमॉडल, फोटोग्राफी, फ्लोरा, पोस्ट-आफिस, फिलॉसफी आदि शब्द।

आंचलिक शब्द— अपनन खौं, बींदनी, ओहीका, होइके, सियारन, ए मताई, छोड़ियो, मेहरारू, पथरौठी, बरेठिन, मचिया, बचिया, बांभनी, पथती, आदि शब्द।

शब्दयुग्म— लेखा-जोखा, टोने-टोटके, लिपे-पुते, भेंट-अंकवार, माँग-जाँच, बची-खुची, धूल-धूसरित, कल्याण-कामना आदि शब्द।

स्पष्ट है कि महादेवी की भाषा शब्द बिन्यास की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। उनका मुख्य लक्ष्य अपनी बात को स्पष्ट करना रहा है और विभिन्न भाषाओं के शब्दों द्वारा उन्हें इसमें महारत भी प्राप्त हुई है। इतना ही नहीं, वरन् कहीं-कहीं तो वे नये नये शब्द भी गढ़ लेती हैं जैसे धृतराष्ट्रता। श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा किये गए प्रश्न के उत्तर में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया हैं-''कोश उठाकर देखिए, कितने शब्द बनाए हैं। कितने शब्द माँजे हैं हमने। हर शब्द को तपाया है हमने, अपनी अनुभूति में उसे ढाला है।''[241]

वाक्य-विन्यास के दृष्टिकोण से भी महादेवी की भाषा समृद्ध रही है। वाक्य विचारों के अनुसार रहे हैं। जब वे किसी विषय पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करती हैं तो जैसे वाक्य एक दूसरे से गुँथे हुए चले आते हैं। ऐसे स्थानों पर न तो उनके विचारों की श्रंखला भंग होती है और न ही अनवरत् चले आ रहे वाक्यों का क्रम भंग

होता है। ऐसे में वाक्य निश्चय ही लम्बे हो गए हैं। निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है, उन्होंने गगा के किनारे पानी भरने आई हुई ग्रामीण युवतियो का चित्रण इस प्रकार किया है-

"किसी के कान मे लाख की पैसे वाली तरकी धोती से कभी-कभी झाक लेती है और किसी के ढारे लम्बी जजीर से गला और गाल एक करती रहती हैं। किसी के गुदना गुदे गेहुँए पैरो मे चाँदी के कड़े सुडौलता की परिधि से लगते हैं और किसी की फैली उगुलियों और सफेद एडियो के साथ मिली हुई स्याही रागे और काँसे के कड़ों को लोहे की साफ की हुई बेड़ियाँ बना देती हैं।"[242]

कही-कही छोटे वाक्यो के द्वारा भी उन्हें अपनी बात को स्पष्ट करने मे सफलता मिली है। जैसे निम्न उदाहरण में देखिए—"मैं हार तो मानना नहीं चाहती थी, परन्तु पाँव थक चुके थे और मिठाइयों से सजे थालो में कुछ कम आकर्षण नहीं था।"[243] महादेवी के शब्द चयन और वाक्य-विन्यास पर श्री सूर्य प्रसाद दीक्षित की टिप्पणी कितनी सारगर्भित है। वे लिखते है कि-"शब्दावली से सयुक्त छोटे-छोटे वाक्यो में गुँथी भाषा मे प्रवाह और चुटीलापन दोनो हैं। अनेक स्थलों पर काव्यमय उपमानों से अलकृत वाक्य योजना उसके कवि हृदय का परिचय भी देती चलती है।"[244] महादेवी के निबधों की भाषा जहा सस्कृतनिष्ठ हैं वहीं पर सस्मरण की भाषा लालित्यमय और कोमलकात पदावली से भी युक्त है-एक उदाहरण द्रष्टव्य है-"चारों ओर से नीले आकाश को खींच कर पृथ्वी से मिलाता हुआ क्षितिज, रुपहले पर्वतों से घिरा रहने के कारण बादलों के घेरे जैसा जान पड़ता था।"[245]

महादेवी ने अलकार योजना का भी सफल प्रयोग किया है। उनके गद्य साहित्य में स्थान-स्थान पर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलकार अपनी छटा बिखेर देते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1 "साँप के पेट जैसी सफेद हथेली और पेड़ की टेढ़ी मेढ़ी गाँठदार टहनियों जैसी उगुलियों वाले हाथ की रेखा-रेखा हमारी जानी बूझी थी।"[246]

2 "मानो वह सेनापति की आज्ञा का उल्लघन करने वाला मूर्ख सेनापति हो।"[247]

3 "जहाँ तक हमारी कविता और कलाओं का प्रश्न है, वे अनाथालय के जीवों के समान सब द्वारों पर अपना अनाथपन गाने के स्वतत्र रहीं"[248]

इस विवरण से स्पष्ट है कि महादेवी की भाषा भावानुरूपिणी है। वह विषय के अनुसार स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं। कल्पनाशक्ति के द्वारा विषयानुकूल शब्द चयन उसमें अपने आप ही समावेशित हो जाता है। कथन को वक्रता के साथ प्रस्तुत करने में महादेवी को सफलता मिली है। विषयभेद के अनुसार भाषा का साहित्यिक

रूप भी स्थान-स्थान पर उपलब्ध होता है। भाषा के कारण ही महादेवी का गद्य साहित्य ओज ओर माधुर्य का अद्‌भुत सम्मिश्रण प्रस्तुत करता है।

भाषा के समान महादेवी की शैली भी विविधरूपिणी है। अपनी शैली के माध्यम से महादेवी किसी स्थान विशेष, घटना विशेष अथवा किसी पात्र के भावविशेष को लक्ष्य बनाकर बड़ी सफलता से पाठक के सामने रखती है। जैसे-घीसा को पढ़ाते वक्त उसके द्वारा उनको एकटक देखना शैली के माध्यम से ही मूर्तिमान हो उठा है-वे लिखती हैं कि-''उसकी सचेत आँखों में न जाने कौन-सी जिज्ञासा भरी थी। वे निरन्तर घडी की तरह खुली मेरे मुख पर टिकी रहती थीं। मानों मेरी सारी विद्या-बुद्धि को सीख लेना ही उनका ध्येय था।''[249]

महादेवी केवल भावविशेष अथवा घटना विशेष का ही वर्णन नही करती वरन् उस पृष्ठभूमि का भी भौतिक चित्रण प्रस्तुत करतीं है, जो घटना के साथ मिलकर उस वातावरण को और भी सजीव कर देती है। जैसे-पुरूष द्वारा छली गई बाल बिधवा को देखने जाते समय उनका ध्यान शहर की गदगी की ओर भी जाता है ओर इस गदगी का, उस सामाजिक गदगी से, (जिसे महादेवी देखने जा रही हैं) मिलाकर देखने पर घटना का वातावरण के साथ बड़ा ही सटीक सामजस्य निम्न पक्तियो मे देखने को मिलता है-''नगर की शिराओं के समान फैली और एक दूसरे से उलझी हुई गलियों से जिनमे दूषित रक्त जैसा नालियों का मैला पानी बहता है और रोग के कीटाणुओं की तरह नगे-मैले बालक घूमते हैं।''[250]

वर्णनात्मक शैली के अलावा महादेवी की शैली की एक अन्य विशेषता विवरणात्मकता भी है, जिसमे विवरण को बिल्कुल सतही ढग से प्रस्तुत कर दिया जाता है। जहा भावुकता का प्रधान्य हो गया है, वहाँ सरल भाषा में चित्र प्रस्तुत कर दिया गया है। जैसे निम्न उदाहरण में देखिए-''छोटी लाल कली जैसा मुँह नींद मे खुल गया था और उस पर एक विचित्र-सी छोटी मुस्कराहट थी, मानों कोई सुदर स्वप्न देख रहा हो। इसके आने से कितने भरे हृदय सूख गये, कितनी सूखी आँखों में बाढ़ आ गई और कितनो को जीवन की घड़ियाँ भरना दूभर हो गया, इसका इसे कोई ज्ञान नहीं।''[251]

इस शैली में कविता में पाई जाने वाली दुरूहता नहीं है। जनसाधारण में प्रचलित मुहावरों एव लोकोक्तियो द्वारा एव बोलचाल के शब्दों द्वारा शैली ओर भाषा में आत्मीयता आ गई है। ऐसा लगता है, "जैसे भागते हुए भाव रूपात्मकता या मूर्तिमत्ता की पकड़ में बाँध कर बिठा दिये जाते हैं, वैसे ही उफनते हुए विचार सूक्तियों के समास में बँधकर विलक्षण तीक्ष्णता धारण कर लेते हैं, गागर में सागर भर जाता है, बिहारी के दोहरों की भाँति।[252]

चित्रात्मकता महादेवी की शैली की प्रमुख विशेषता है। चाहे वह पात्र का हो या घटना अथवा स्थानविशेष का। पात्रों का चित्रण करते समय उसके व्यक्तित्व अथवा उसके अगों के एक-एक पहलू का वे

चित्रण नहीं करती वरन् पहली दृष्टि में वे जैसे दिखाई देते हैं वैसा ही महादेवी उनका चित्राकन कर देती है। वे उसके रूप को अवश्य इस प्रकार सामने ले आती हैं कि पाठको के आगे उस पात्र की बिल्कुल सजीव मूर्ति ही गढ़ दी जाती है। सविया का उदाहरण दृष्टव्य है, जिसमे शब्दों के द्वारा महादेवी ने उसका चित्र खीचा है-''उसका मुख चिकनी काली मिट्टी से गढ़ा जान पड़ता था, परन्तु प्रत्येक रेखा मे साँचे की वैसी ही सुडौलता थी, जैसी प्राय पेरिस प्लास्टर की मूर्तियों में देखी जाती है। आँखों की गढ़न लम्बी न होकर गोल-गोल होने के कारण उनमे मेले में खोये बच्चे जैसी चकित दृष्टि थी। हाथ-पैर मे मोटे-मोटे चमकहीन गिलट के कड़े उसे कैदी की स्थिति में डाल देते थे।''[253]

इसी प्रकार सुभद्रा कुमारी चौहान का चित्र महादेवी इन शब्दो मे प्रस्तुत करती हैं-''कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओंठ और दृढ़तासूचक ठुड्डी सब कुछ मिलाकर एक अत्यन्त निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे।''[254]

महादेवी वातावरण को पूरी सजीवता के साथ प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त है।'अतीत के चलचित्र'के अन्तर्गत जहाँ घीसा का चित्रण है, वहीं पर महादेवी ने पूरे ग्रामीण वातावरण को उपस्थित किया है। पानी भरने के लिए आई उन स्त्रियों की एक एक वस्तु पर महादेवी की दृष्टि जाती है। इस चित्राकन मे महत्वपूर्ण बात महादेवी की अतर्दृष्टि तो है ही, जो पात्रों की बाह्य विशेषताओ के साथ-साथ उनकी आतरिक विशेषताआ का भी उद्घाटन कर देती है परन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात इन पात्रो के प्रति महादेवी की आत्मीयता तथा सहानुभूति है, जिसके कारण इनका निर्माण महादेवी ने कला के दृष्टिकोण से नहीं किया है, वरन् स्नेह के वशीभूत होकर किया है।

महादेवी के सस्मरणात्मक साहित्य की एक मुख्य विशेषता उसकी आत्मकथात्मक शैली है, जिसमे बनावट के लिए कोई स्थान नहीं है। इस शैली में जब तक लेखक अपने हृदय को पूर्णतया खोलकर सामने नही रखता तब तक सहृदय जन उसके साथ आत्मीयता का अनुभव नहीं करते। महादेवी ने इस विधा में अपने हृदय की सीवन को उधेड़ कर रख दिया है। उनके हृदय में करुणा की जो अजस्रधारा विद्यमान है, उसका स्रोत रामा, घीसा, अलोपी से शुरू होकर सबिया, बिट्टो, बिन्दा, लछमा, बिबिया, गुगिया आदि के पास से होते हुए अपने समकालीन कवियों को भी उसमें बहा ले जाता है।

महादेवी सूक्तियों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं, जो अत्यन्त सारगर्भित है। निबध साहित्य हों या संस्मरणात्मक साहित्य -महादेवी ने सूक्ति शैली का जमकर उपयोग किया है-

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1 छायावाद व्यथा का सवेरा है।[255]

2 कवि का दर्शन जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।[256]

3 मनुष्य स्वय एक सजीव कविता है।[257]

4 पुरुष समाज का न्याय है, तो सत्री दया, पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्त्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभूति ।[258]

इतना ही नही, कहीं कहीं तो वे अध्याय की समाप्ति भी सूक्ति के माध्यम से करती है। जैसे अलोपी के सस्मरण मे। अधे अलोपी का जीवन प्रकृति का क्रूर मजाक तो था ही उस पर पत्नी द्वारा किए विश्वासघात से तो उसका अन्त हो गया-महादेवी लिखती हैं कि-"नियति के व्यग्य से जीवन और ससार के छल से मृत्यु पाने वाला अलोपी क्या मेरी ममता के लिए प्रेत होकर मडराता रहेगा।"[259]

महादेवी की शैली में भावात्मकता का वहाँ प्राधान्य हो गया है, जहाँ उन्होने करुणा और सहानुभूति से प्रेरित होकर चित्र खींचे है। निम्न उद्धरण में महादेवी द्वारा अनुभूत करुणा से पाठक का भी साधारणीकरण होता है। वे लिखती हैं कि-"स्मरण नहीं आता वैसी करुणा मैंने कहीं और देखी है। खाट पर बिछी मैली दरी, सहस्त्रो सिकुड़न भरी मलिन चादर और तेल के कई धब्बे वाले तकिये के साथ मैंने जिस दयनीय मूर्ति से साक्षात किया उसका ठीक चित्र दे सकना सम्भव नहीं है।[260]

महादेवी के सस्मरणात्मक साहित्य के अधिकाश पात्र ग्रामीण क्षेत्रों से आए हुए हैं। इसलिए इन पात्रो के मनोभावो के सजीव चित्रण के लिए महादेवी ने सवाद शैली का आश्रय लिया है और सवाद भी उनकी अपनी बोली में, जिससे सम्पूर्ण वातावरण ही जीवन्त हो उठता है। 'स्मृति की रेखाएँ' में मुन्नू के सस्मरण मे महादेवी द्वारा गाँव जाकर एक ग्रामीण स्त्री से यह पूछने पर, यह किसका घर है? और उत्तर-"तोहका का करै का है। शहराती मेहरारुन के कामकाज नाहिन बा जौन हियाँ-उहाँ गस्ता घूमै चल देती है?" और भक्तिन द्वारा उसको दिया गया उत्तर-"शहर माँ शोर परा है कि ई गाँव की मलका कण्डा बिनती है, गोबर पथती है, तौन के उनही के दरसन बरे दौरत आइत है। अउर का।"[261] पूरे ग्रामीण वातावरण को सजीव कर देता है और पाठक इस वार्तालाप से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

शैली तो जैसे महादेवी की दासी बन गई है। व्यग्य की तेज धार से समाज की सारी ढोंग से भरी हुई गम्भीरता को वे लाक्षणिकता के साथ उधेड़ कर रख देती है। वेश्या पुत्री के सम्बध में वे समाज पर अत्यन्त

चुटीला व्यग्य कसती हैं-वे लिखती हैं कि-"वह पतित कही जाने वाली माँ की पुत्री है और बिना समाज के प्रवेशपत्र के ही साध्वी स्त्रियों के मदिर मे प्रवेश करना चाहती थी। उसे पता नही कि समाज के पास वह जादू की छड़ी है, जिससे छूकर वह जिस स्त्री को सती कह देती है, केवल वही सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है।"262

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महादेवी भाषा और शैली के क्षेत्र में पूर्ण निपुण है। पद्य के क्षेत्र से जब वह गद्य क्षेत्र में आती हैं तो भाव में परिवर्तन के साथ उनकी भाषा शैली में परिवर्तन लक्षित होता है। प्रारम्भ में लिखे गए सस्मरणात्मक साहित्य में जहाँ उनकी भाषा कवित्वपूर्ण, तत्सम-तद्भव शब्दो से अलकृत है, वही पर जब व निबध के क्षेत्र में आती हैं तो भाषा में प्रौढता के साथ शैली भी और विकसित हो जाती है। अलकर, सूक्तिकथन, लाक्षणिक-वैचिव्य, कथनवक्रता आदि के द्वारा वे अपनी बात को स्पष्ट करती हें। सूर्य प्रसाद दीक्षित ने ठीक ही लिखा है-"वह भावानुकूल भाषा का निर्माण करने मे समर्थ है। हास्य रसपूर्ण प्रसगो मे उनका प्रत्येक शब्द क्रीड़ा करता है।"[263] इसी प्रकार उनकी शैली के सम्बध मे वीणा पत्रिका मे की गई निम्न टिप्पणी अत्यन्त महत्वपूर्ण है-"लट्ठमार शैली मे, धधकते हुए शब्दो मे समाज के नगेपन के चित्र या कैरिकेचर हिन्दी मे इतने अधिक खीचे गए कि जिस सयत शैली से महादेवी ने इस विषय पर कलम उठायी वह न केवल अपने उद्देश्य में सफल ही होती है, बल्कि विषय को एक नवीन पहलू से हमारे सामने उपस्थित करती है।"[264]

महादेवी के गद्य को लेकर उठाए गए विवाद-

पद्य साहित्य के समान महादेवी का गद्य साहित्य भी आलोचकों की दृष्टि से ओझल न हो सका और विद्वान आलोचकों ने गद्य कृतियों के वर्ण्यविषय के सम्बध में अनेक विवाद उठाये हैं। यह विवाद उनके सस्मरणात्मक साहित्य पर तो है ही, साथ ही निबध साहित्य भी इनसे नहीं बच सका। महादेवी के गद्य साहित्य में नारी के प्रति जो एक सम्मानित दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है, उसका कारण अधिकाश विद्वानों ने दाम्पत्यजीवन की असफलता से जोड़ा है। डा0 प्रेमलता कुमारी ने अपने लेख में लिखा है-"कुछ विद्वानों ने महादेवी पर यह आक्षेप किया है कि दाम्पत्यजीवन की असफलता के कारण ही नारी के प्रति उनकी भावनाएँ बहुत पक्षपातपूर्ण है और पुरुष के प्रति वे सदा आक्रोश और विद्रोह से भरी रहती हैं।"[265]

महादेवी पर लगाया गया यह आक्षेप पूर्णतया निराधार है। महादेवी की सहानुभूति एव सवेदना सिर्फ नारी-वर्ग तक ही सीमित नहीं है वरन् पुरुष वर्ग भी सहज ही उनकी ममता का अधिकारी रहा है। रामा, चीनी फेरीवाला, अलोपी, ठकुरी बाबा, घीसा, बदलू कुम्हार और जगिया तथा धनसिह के पात्रों का चरित्राकन भी महादेवी ने उतनी ही आत्मीयता के साथ किया है जितनी आत्मीयता के साथ सबिया, विधवा भाभी, बिन्दा,

बिट्टो, वेश्यापुत्री आदि का चित्राकन किया है। हाँ! महादेवी के 'शृखला की कड़ियाँ' नामक निबध मे प्रथम दृष्टया ऐसा लग सकता है कि वे पुरुषों के प्रति पक्षपातपूर्ण रही हैं पर यहाँ पर भी इस दृष्टि की ओर आलोचकवर्ग का ध्यान नहीं जाता कि आधुनिक नारी को वे अपने कर्तव्य पालन के लिए निरन्तर सचेत भी करती चलती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है- 'अच्छा होता यदि स्त्री प्रतिद्वदिता के क्षेत्र में बिना उतरे हुए ही अपने उपयोगिता के बल पर स्वत्वों की माग सामने रखती।''[266] यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि स्त्रियो को निर्देश देते वक्त उनकी वाणी सयम में बँधी है। पुरुषप्रधान समाज पर स्त्रियो पर होने वाले अत्याचारों का वर्णन करते समय वह विद्रोही और तेज हो जाती है। ऐसा लगता है कि-उस समाज में स्त्रियो की वस्तु स्थिति ही ऐसी थी कि उनका चित्रण करने वाले किसी भी सच्चे चिन्तक में उनके प्रति सहानुभूति का उदय हो जाना स्वाभाविक ही था।

महादेवी पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि उन्होने समस्या को ज्यो का त्यो सामने रख दिया है, उसके समाधान के प्रति वे पूर्णतया उदासीन रहती हैं। आनन्द माधव मिश्र अपने एक लेख में लिखते है-"उनके कला कुशल कलाकार ने बड़ी ही मार्मिक भाषा और शैली मे उनके चित्र उतारे हैं पर उनकी स्थिति समाधान के नाम पर उनकी समस्याओं के हल के प्रश्न पर उनका कलाकार पलथी मारकर मौन सन्यासी की नाईं बैठ जाता है। वह किसी स्पष्ट सामाजिक हल की ओर न इशारा करता है और न प्रयास। उसकी इस अवगुण्ठा के पीछे या उनका काव्यदर्शन है, जो उन्हें रहस्य के गहरे अधेरे में भुलावा देता है या उनके कलाकार की साहित्य के शिव पक्ष की साधना की ओर से उदासीनता, जिसके तल मे युगीन जीवन दर्शन का अभाव निहित है। सत्यम्-सुन्दरम् के साथ शिव का भी कला में उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है। यह कहना कोई अनर्गल प्रलाप न होगा कि महादेवी का सस्मरणात्मक साहित्य जितना अपने सत्यम् और सुन्दरम् के लिए धनी है, उतना शिवम् के लिए नहीं।''[267]

इन समस्याओं के समाधान की जहाँ तक बात है, महादेवी ने व्यावहारिक जीवन के आधार पर कुछ समस्याओं का हल तो प्रस्तुत किया है। परन्तु यह सच है कि वे सर्वत्र ऐसा कर पाने में असफल रही हैं। यद्यपि अपनी विरोधभरी वाणी द्वारा उन्होंने नारी शक्ति को जाग्रत करने का प्रयास तो निरन्तर किया है। अतीत के चलचित्र मे एक स्थान पर बड़े ही विश्वास के साथ उन्होंने लिखा है-"फिर भी स्त्री को हारा हुआ मेरा मन कैसे स्वीकार करे, जब तक उसके परिस्थितियों से चूर-चूर हृदय मे भी आलोक की लौ जल रही है।''[268] इन समस्याओं का एकमात्र समाधान स्त्री द्वारा आत्मशक्ति जाग्रत करना है और जब तक वह समर्थ होकर पुरुष के इन अत्याचारों का विरोध करते हुए स्वावलम्बी नहीं बनती, तब तक उसकी स्थिति में सुधार की कोई सम्भावना नहीं है।

प्राय आलोचक वर्ग वर्तमान समय में दो जीवन धाराओं का विकास होना मानते हैं। इनम से एक जीवन के प्रश्नों का हल अध्यात्म मे ढूँढती है और दूसरी द्वन्द्वात्मक ढग से जीवन के प्रश्नो को देखती हें ओर उनका समाधान करती हैं। लेकिन इसी सन्दर्भ में आनन्दमाधव मिश्र का विचार है कि "महादेवी जी सब कुछ स्वान्त सुखाय ही लिखती जाती है। इन दोनो धाराओ से अलिप्त अछूती रहकर। जहाँ उनके कलाकार ने कुछ विचारने का प्रयास किया, वहाँ भावुकता ने चिन्तन को गहरा न होने देकर कल्पना के पखो पर ही उडाकर कलाकार को उस ठोस भूमि से टकराने से बचा लिया है।"[269]

महादेवी ने अक्सर इन स्त्रियों की समस्याओ के समाधान के विषय मे कुछ कहा भी है तो वहाँ वे सिर्फ उनकी करुणा और सवेदना से प्रेरित होकर ही कहती है इसी विचार की दृष्टि से आनन्दमाधव मिश्र का निम्न वक्तव्य जहाँ वे महादेवी के गद्य साहित्य से ही एक उदाहरण लेकर लिखते हैं कि- "यदि ये स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद मे लेकर साहस से कह सकें कि "बर्बरो, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देगी, तो इनकी समस्यायें तुरन्त सुलझ जावें।" क्या यह कवि कल्पना सी सहज उड़ान नही है? नारी की समस्या यही तक सीमित नहीं है- न अवैध सतान वाली माँ की, न रूप व्यापार करने वाली वेश्या की, न समाज के पहिए में पिसने वाली एक पतिव्रता की। उनकी समस्याओ की जड़ तो सामाजिक व्यवस्था के मूल में है, जिसमें आमूल परिवर्तन हुए बिना कुछ भी, किसी के लिए सभव नही है।"[270]

वास्तव में इन समस्याओं का समाधान तभी सम्भव हो सकता है जब एक तो सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो, पुरुषो को सार्वभौमिक समझने की मनोवृत्ति का अन्त हो, समाज मे विद्यमान आर्थिक असमानता का दुष्चक्र टूटे और यह भी सच है कि इसके लिए प्रथम प्रयास भी नारी को ही करना होगा। महादेवी के समय मे विद्यमान समस्याये दशकों का व्यवधान पार करने के बाद भी आज ज्यों की त्यो है। हाँ! समस्या के मूल स्वरूप में थोड़ा अन्तर अवश्य आया है। लेकिन लक्ष्य केवल कुछ स्त्रियों को स्वतन्त्रता, समानता देना नही है, वरन् जब तक सम्पूर्ण नारी जाति को ये अधिकार नहीं मिलते तब तक कुछ नारियों द्वारा स्वय को स्वतन्त्र मानना एक आधा अधूरा बदलाव मात्र है।

महादेवी पर एक आक्षेप यह लगाया जाता है कि छायावादी महादेवी प्रगतिवादी नहीं बन पाई हैं अथवा प्रगतिवाद अथवा प्रयोगवाद पर उनकी आस्था नहीं है, और यह कहा जाता है कि युग चेतना के अनुरूप वह विद्रोहिणी नही है। इस आक्षेप का जवाब ओंकार राही इन शब्दों में देते हैं -"गद्यकार महादेवी वादों से मुक्ति पा गई है और विशेषकर इन तीन सग्रहों में-क्योंकि उनकी मार्मिक करुणा में शाश्वत नारीत्व का रूप अधिक प्रभावोत्पादक बन गया है। महादेवी ने कुछ शाश्वत पात्रों का चयन किया है। यथा चीनी फेरी वाला, रामा, बदलू कुम्हार -ये सभी युग के प्रतिनिधि हैं।"[271]

महादेवी नारी की हीनदशा पर जहाँ आक्रोश अथवा विद्रोह व्यक्त करती हैं, उसे अधिकाश आलोचको ने भावुकता से प्रेरित माना है क्योकि जब स्वय महादेवी को एक ऐसा अवसर उपलब्ध होता है तो वे समाज के डर से पीछे हट जाती है। उसी समाज से- जिसकी पुरुष प्रधान प्रवृत्ति को वे ढोग मानती है, जिसकी अपने ग्रथों मे कटु आलोचना करती है। वह स्थल है-अतीत के चलचित्र में "वेश्यापुत्री द्वारा उनसे काम मागने के लिए उनके पास जाना और वे लिखती हैं-"उस रात कितनी देर तक मैं इस समस्या मे उलझी रही, यह याद नही आता, पर कोई समाधान न निकल सका। अपने पति की प्रतिष्ठा के लिए और अपने आत्मसम्मान के लिए भी वह दान नहीं स्वीकार करेगी और काम देने की बात स्मरण कर मेरे ओठो मे एक व्यग्य की हँसी आये बिना न रह सकी। वह क्या जाने उसकी उपस्थिति क्या-क्या अनर्थ कर सकती है।"[272] क्या महादेवी उसकी सहायता करके एक आदर्श उपस्थित नहीं कर सकती थीं। क्या महादेवी द्वारा उसे ऐसे काम दिया जाना, जिनकी कोई महत्ता ही न थी, उचित था। उन्होंने लिखा है-"तब मैंने क्या किया, इसकी कथा मनोविज्ञान सम्बधी मेरे अज्ञान को प्रकट करती है। कभी कोई ऐसा लेख नकल करने के लिए दे दिया, जिसके पृष्ठों का कोई उपयोग ही शेष न रहा था। कभी कोई ऐसा पत्र लिखवा दिया जिससे रद्दी कागजो की टोकरी का ही गौरव बढता था।[273] क्या महादेवी द्वारा काम देने का यह अभिनय किया जाना उचित था।

प्रो0 अशोक भी अपने लेख मे महादेवी की विद्रोही वाणी को भावुकता से प्रेरित मानते हैं। वे लिखते है -"उसका रुख समाज के प्रति शात उपेक्षा का है, अधिक से अधिक समाज उससे व्यग्य प्राप्त कर सकता है। फिर समाज की नैतिकता क्या है! सस्कार की जड़ता। उसके जादू भरे दायरे के बाहर के प्राणी को सहज मानवता का भी अधिकार नही है, जब समाज के निर्मम बहिष्कार से विवश नारी जिसका दोष यह था कि वह पतिता की पत्नी थी, उसके पास, अपने उस पति की बीमारी के कारण, जिसने एक ऊपर उठते हुए प्राणी की उगली पकड़ने का महत्व प्राप्त किया है, सहायता मागने आती है, तो लेखिका उसके दुस्साहस पर ही आश्चर्य करती है, समाज पर रोष नहीं।"[274]

रेखा अवस्थी महादेवी की गद्य कृतियों में व्यक्त यथार्थवादी रुझान को तो स्वीकार करती हैं। लेकिन वे मानती है कि इन शोषित की पीड़ा के कारण को महादेवी स्पष्ट नहीं करती। रेखा अवस्थी इसी को महादेवी की सीमा मानती हैं। वे लिखती है "अपने भाववादी दर्शन के कारण लेखिका 'घरों को लीपने के लिए सदैव तत्पर रहती है, घीसा, मुन्नू और विविया जैसे चरित्रों से उन्हें सहज ममता हो जाती है। भाभी की दुर्दशा देख मन व्यथित हो उठता है और रगीन कपड़ों से सदा के लिए वितृष्णा हो जाती है। परन्तु घीसा, भाभी, लछमा, मुन्नू की माई क्यो उत्पीड़ित हैं, उन्हें किसने उत्पीड़ित बना रखा है, इनकी इन दयनीय स्थितियों के लिए जिम्मेदार कौन हैं- इसका उल्लेख या सकेत इन स्केचों में ढूँढने पर भी नही मिलता है। अर्थात इन वस्तुन्मुखी

स्केचो में वर्गशत्रु की पहचान गायब है। वर्गशत्रु पर चोट करने के स्थान पर नियति एव भाग्य की विडम्बना जैसे जुमलो से शोषकों की विचारधारा का ही प्रचार मिलता है।''[275]

महादेवी अपनी इन गद्य कृतियों में उत्पीड़ित वर्ग द्वारा अपनी मुक्ति के लिए किये जा रहे सामूहिक प्रयत्नों का कहीं उल्लेख नहीं करती। इसी सन्दर्भ में रेखा अवस्थी आगे लिखती हैं- यह महादेवी वर्मा के सकुचित दृष्टिक्षेत्र एव मध्यवर्गीय सस्कारों का दोष है कि वे मुन्नू जैसे मेधावी बालको का भविष्य 'अपराध क्षेत्र' में देख पाती है या लछमा के मुँह से ''हम तो ऐसे ही जगली हैं हमे क्या चाहिए'' जैसे वाक्य कहलाकर मध्यवर्ग के अहम् को सतुष्ट करना चाहती है।''[276]

'पथ के साथी' के सबध में रेखा अवस्थी का विचार है कि '' विशिष्ट व्यक्तियों के विशिष्ट सस्मरण होने के कारण तथा उनके सामाजिक सम्बधो का टाइप चित्रण न होने के कारण इन स्केचों मे सवेदना एव भावमयता का अभाव प्रतीत होता है।''[277]

'मेरा परिवार' में महादेवी ने अपने पशुपक्षियो के साथ जैसी आत्मीयता प्रदर्शित की है वैसी ही आत्मीयता प्रेमचन्द की अपने पशुओं के प्रति रहीं है। अन्तर सिर्फ इतना है कि प्रेमचन्द का इन पात्रो के साथ रोजी रोटी का सम्बध रहा है, यद्यपि महादेवी ने भी उसी सवेदना को गिल्लू, गौरा और नीलकठ मे उभारने की कोशिश की, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। रेखा अवस्थी का विचार है कि ''यह उनकी पूँजीवादी करुणा ही है, जिसका प्रसार मनुष्य से लेकर जानवरों के बीच हो गया है।''[278]

अमृतराय का विचार है कि महादेवी नारी स्वाधीनता से सम्बधित प्रश्नों पर समाजवाद से प्रभावित हैं। वे लिखते हैं कि ''नारी की परवशता का जो मूल कारण समाजवाद बतलाता है, महादेवी भी अपने धर्मक्षेत्र के आधार पर उससे सहमत है। जीवन के प्रति महादेवी का दृष्टिकोण भी स्वस्थ गाधीवादी है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु नारी स्वाधीनता के प्रश्न पर समाजवाद के ही अधिक समीप हैं। गाधीवाद में नारी को घर ही में सीमित रखने का जो आग्रह है, उसे महादेवी स्वीकार नहीं करती।[279]

लेकिन अमृतराय के विचार के ठीक लेकिन विपरीत रामविलास शर्मा का मत है कि ''महादेवी जी में जनसाधारण के प्रति बौद्धिक सहानुभूति ही नहीं है, उन्हें पीड़ित जनता से हार्दिक सहानुभूति है। पतजी 'ग्राम्या' में बौद्धिक सहानुभूति की रेखा तक आकर वापस लौट गये। महादेवी जी अपने गद्य में इस ओर उनसे कहीं अधिक आगे बढी है। छायावादी कवियों में केवल 'चतुरी चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' का रचयिता निराला उनसे इस बात में आगे हैं। महादेवी जी की यह सहानुभूति बड़ी मूल्यवान है। उसके बल पर वह समाज में पीड़ित जनों के अनेक मर्मस्पर्शी चित्र दे सकी हैं। फिर भी इस सहानुभूति की सीमाओं को न पहचानना और

नारी समस्या के प्रति उनके दृष्टिकोण को लेनिन के दृष्टिकोण से तुलना करना अपने को और दूसरे को धोखा देना है।"[280]

महादेवी का निबध साहित्य भी विवादो से परे नहीं रहा है। 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध मे महादेवी ने जहाँ निबन्ध का आश्रय लेकर अपनी काव्यगत मान्यताओं को स्पष्ट किया है और साथ ही छायावाद की आलोचना को शान्त करने का प्रयास किया है, वहीं विद्वान आलोचकों ने उसमें भी विवादो के लिए जगह बना ही ली है। डा0 नगेन्द्र का महादेवी के आलोचनात्मक निबन्धों पर यह आक्षेप है-"महादेवी के साहित्यिक भाव नैतिकता के बोझ से काफी दबे हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसमें उनका स्त्रीत्व बाधक हुआ है, जो मर्यादा से बाहर जीवन की मुक्ति खोजने का अभ्यासी नहीं है और वास्तव मे अभी महादेवी की दृष्टि पूर्ण सामजस्य की अधिकारिणी भी नहीं हो पाई है क्योंकि उसमें पुरुषत्व से भिन्न नारीत्व की इतनी प्रखर चेतना वर्तमान है कि वह पुरुष को आततायी प्रतिद्वदी के अतिरिक्त और कुछ कठिनाई से ही समझ पाती है। महादेवी जैसे उन्नत व्यक्तित्व में यह भाव अवश्य ही किसी ग्रन्थि की ही अभिव्यक्ति है, जो अभी उलझी रह गई है।[281]

महादेवी की छायावाद सबधी उद्‌भावना की आलोचना करते हुए विद्वान आलोचक का मत है कि "महादेवी ने छायावाद की तन्वी कविता पर दर्शन का बोझ कुछ अधिक ही लाद दिया है।[282] डा0 नगेन्द्र ने छायावाद को द्विवेदी युगीन स्थूल प्रवृत्तियों के विरोध में जगी हुई जीवन के प्रति एक रोमाटिक प्रतिक्रिया मानते हैं, जिसमें रहस्य की ओर उन्मुख भावुकता अधिक थी। डा0 नगेन्द्र ने छायावाद के जन्म का मूलकारण व्यक्तिगत कुण्ठा और अवृप्तियों के दमन में देखते हैं। उनका माना है कि "गत युद्ध के बाद जिन कवियों के ह्रदय से छायावाद की कविता उद्‌भूत हुई उन पर किसी प्रकार आध्यात्मिक अनुभूति का आरोप नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त उस अवस्था में तो कोई विशेष परिष्कृति भी सम्भव नहीं थी—वह उन कवियो का तारुण्य था जब मन की सहज भावनायें अभिव्यक्ति के लिए आकुल हो रहीं थी। बाद में प्रसाद या महादेवी भारतीय अध्यात्म दर्शन के सहारे, अथवा पन्त देश विदेश के भौतिक सर्वहित वादी दर्शनों के आधार पर, उसे परिशुद्ध एव सस्कृत भले ही कर पाये हो, परन्तु आरम्भ से कोई दिव्य प्रेरणा उन्हें थी, यह मानना असत्य होगा।"[283]

नगेन्द्र आगे लिखते हैं कि "महादेवी ने कविता की तात्विक परिभाषा में छायावाद को कुछ ऐसा फिट कर दिया है कि वह कविता के परिपूर्ण क्षणों की वाणी ही लगता है—यह स्वभावत असत्य है। छायावाद की अपनी सीमायें हैं। उसकी कविताओं में जितनी सूक्ष्मता है, उतनी शक्ति नहीं है, जितनी सकुकुमारता है उतनी तीव्रता नहीं है, जितना अरुप चिन्तन है उतना मांसल रस नहीं आ सका है। इसका निषेध कैसे किया जा सकता है। हमारे दो प्रतिनिधि कवि पन्त और महादेवी जीवन में पूरी तरह से उतर ही नहीं पाए। जब

जीवन की भूख तड़पती थी, तब तो परिस्थितिवश वे उसे झुठलाते रहे और जब भूख मन्द पड़ गई, तब वे जीवन मे उतरे, पर इस समय उसका सस्कार करने के अतिरिक्त उनके पास दूसरा कोई उपाय नहीं रहा। सस्कार में रस तभी आता है, जब उसके द्वारा खौलती हुई वासनाओं से सघर्ष कर उन पर विजय प्राप्त की जाती है। प्रासाद और निराला मे स्थान-स्थान पर यह भूख हुँकार उठी है और वहीं वे महान काव्य की सृष्टि कर सके हैं।''[284]

इस प्रकार महादेवी और छायावाद को लेकर आलोचकों की दो दृष्टियाँ हमारे सामने आती हैं एक वर्ग वह है जो महादेवी के समर्थन मे खड़ा है और दूसरी ओर वह वर्ग है जो निरन्तर इनकी आलोचना में प्रवृत्त था। उस समय उठाए गए छायावाद सम्बधी विवाद प्रसाद, पत, निराला और महादेवी के रचनाससार के सन्दर्भ मे थे। निश्चय ही महादेवी की गद्य रचनाओ में जो प्रगतिशील चितन का तत्त्व विद्यमान है वह प्रश्न के रूप मे ही हमारे सामने आते हैं। कुछ हद तक उनके प्रति सहानुभूति भी मिलती है किन्तु वे प्रश्न अपने समाधान की पूर्णता को प्राप्त करने में असफल ही रहे हैं। यह महादेवी के आदर्शात्मक चिन्तन की प्रक्रिया तो हो सकती है किन्तु यह यथार्थ चिन्तन की भावभूमि से प्राय सघन ढग से जुड़ती हुई नही दिखती।

* * *

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृष्ठ सख्या—63

2 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृष्ठ सख्या—62

3 महादेवी साहित्य समग्र, भाग-एक (स) निर्मला जैन, 'भूमिका से'।

4 महादेवी साहित्य समग्र, भाग-एक (स) निर्मला जैन, 'भूमिका से'।

5 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृष्ठ स —7

6 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृष्ठ स —7

7 आधुनिक कवि, महादेवी वर्मा, पृ स —36

8 दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृष्ठ स —56

9 'चिन्तन के क्षण में' महादेवी वर्मा 'महादेवी साहित्य समग्र—3' स - निर्मला जैन, पृ स 404

10 महादेवी साहित्य समग्र, भाग-एक महादेवी वर्मा (स) निर्मला जैन, 'भूमिका से'।

11 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा पृ स —11

12 महादेवी साहित्य समग्र-3 स निर्मला जैन, पृ.स—412

13 महादेवी, (स -इन्द्रनाथ मदान) ले -सूर्य प्रसाद दीक्षित, पृ. स —197

14 महादेवी साहित्य समग्र-3 स निर्मला जैन, पृ स—414

15 नीहार, महादेवी वर्मा, पृ स —43

16 सान्ध्यगीत, महादेवी वर्मा,पृ स —31

17. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ सं —56

18 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ सं.—21

19 नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ सं.—30

20 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —55

21 महादेवी साहित्य समग्र-1,स निर्मला जैन, 'भूमिका से'

22 साहित्य सदेश, दिसम्बर 1966, लेखिका – प्रा0 कु0 प्रेमलता, पृ स 213

23 साहित्य सदेश, रेखाचित्र और सस्मरण, डा विश्वनाथ शुक्ल, पृ स 80

24 शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, द्वितीय भाग, गोविन्द त्रिगुणायत पृ स —497

25 सस्मरण, महादेवी वर्मा, 'आत्मकथ्य' से

26 गद्यकार महादेवी वर्मा, वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला, पृ स 86

27 गद्यकार महादेवी वर्मा, वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला, पृ स 86

28 गद्यकार महादेवी वर्मा, वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला, पृ स 104

29 गद्यकार महादेवी वर्मा, वीरेन्द्र कुमार बड़ सूवाला, पृ स 138

30 महादेवी और उनकी गद्य रचनाएँ, माधवी राजगोपाल, पृ स 25

31 महादेवी और उनकी गद्य रचनाएँ, माधवी राजगोपाल, पृ स 25

32 महादेवी और उनकी गद्य रचनाएँ, माधवी राजगोपाल, पृ स 40

33 महादेवी का सस्मरणात्मक गद्य, चरनसखी शर्मा,पृ स —30

34 महादेवी का गद्य एक मूल्याकन, डा विजय प्रकाश उपाध्याय पृ स —48

35 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय, पृ स —327

36 महादेवी (स) इन्द्रनाथ मदान, पृ स —218

37 शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, द्वितीय भाग, गोविन्द त्रिगुणायत पृ स —496

38 ले महादेवी रेखाचित्र-एक विश्लेषण, श्री ओंकार राही, पत्रिका साहित्य सदेश, अप्रैल, 1963 पृ स —405

39 महादेवी रेखाचित्र-एक विश्लेषण, श्री ओंकार राही, पत्रिका साहित्य सदेश, अप्रैल, 1963 पृ स —407

40 महादेवी. रेखाचित्र-एक विश्लेषण, श्री ओंकार राही, पत्रिका साहित्य संदेश, अप्रैल, 1963 पृ स.—408

40 (1) विशाल भारत, दिसम्बर, 1944, प्रकाश चन्द्र गुप्त

41 महादेवी जी के रेखाचित्र और सस्मरण, श्री घ.गो वेद, साहित्य संदेश, अगस्त 1961, पृ सं.—108

42 महादेवी का सस्मरण साहित्य, कृष्ण कुमार शर्मा, साहित्य-सदेश जुलाई-अगस्त, 1966 पृ स 26

43 क्या महादेवी के रेखाचित्र सस्मरण भी है?, प्रा कु प्रेमलता, साहित्य सदेश, दिसम्बर-1966 पृ स —216

44 महादेवी के गद्य का मानवतावादी धरातल, श्री रामशरण तिवारी साहित्य सदेश, अप्रैल 1962, पृ स —476

45 महादेवी साहित्य समग्र-भाग-दो, स निर्मला जैन, पृ स 9

46 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स 9

47 सस्मरण, महादेवी वर्मा, आत्मकथ्य

48 शृखला की कडियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स —7

49 साहित्य सदेश, फरवरी 1955 ले -आनन्द माधव मिश्र, पृ स —303

50 साहित्य सदेश, फरवरी 1955 ले -आनन्द माधव मिश्र, पृ स —304

51 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —27

52 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —27

53 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —28

54 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —35

55 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —41

56 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —50

57 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —56

58 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —72

59 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —71

60 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स.—71-72

61 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —93

62 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स.—95

63 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—101

64 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स.—12

65 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —18

66 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —44

67 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —56

68 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —100

69 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —20

70 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —63

71 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —67

72 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —77

73 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —77

74 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —83

75 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —23

76 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —22

77 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —22

78 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —37

79 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —38

80 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —81

81 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —80

82 महादेवी के रेखाचित्रों मे उपेक्षित तत्व, लेखिका-डा प्रेमलता वर्मा प -साहित्य सन्देश, अप्रैल, 1968 पृष्ठ स —415

83 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —26

84 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ सं.—51

85 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.स —56

86 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —72

87 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —43

88 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —101

89 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —50

90 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —51

91 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —44

92 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —28

93 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स.—58

94 महादेवी का सस्मरणात्मक साहित्य, लेखक-आनन्द माधव मिश्र,पत्रिका,साहित्य सदेश, फरवरी 1955, पृ स —304

95 महादेवी साहित्य समग्र-2 स , निर्मला जैन, पृ स —349

96 महादेवी साहित्य समग्र-2 स , निर्मला जैन, पृ स —352

97 चिन्तामणि-भाग-2, रामचन्द्र शुक्ल

98 शृखला की कड़ियाँ, 'समर्पण', महादेवी वर्मा

99 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –7

100 महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय, पृ स—332

101 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –13

102 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –20

103 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.स –26

104 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –36

105 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स.–36

106 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.स –37

107 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स.–46

108 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.स.–48

109 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –61

110 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –70

111 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –83

112 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स.–83

113 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –80

114 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –90

115 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स.–101

116 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –110

117 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –119

118 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –129

119 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –131

120 शृखला की कडियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –148

121 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –148

122 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –151

123 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –19

124 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स.–60

125 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.स –93

126 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स –7

127 महीयसी महादेवी, गगाप्रसाद पाण्डेय पृ स —332

128 महीयसी महादेवी, गगाप्रसाद पाण्डेय पृ.स —334

129 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.स —24

130 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं —30

131 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.स —30-31

132 (1) साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —36

133 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —57

134 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —57

135 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —82

136 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —83

137 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —100

138 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —102

139 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —103

140 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —118

141 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —124

142 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —124

143 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —127

144 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —130

145 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —149

146 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —149

147 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —151

148 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —170

149 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ स —171

150 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.स.—174

151 वीणा, जुलाई 1944, पृ.स —464, वीरेन्द्र कुमार एम ए

152 विशाल भारत, अप्रैल-1944, नगेन्द्र-पृष्ठ स —262

153 महादेवी साहित्य समग्र-3 स ,—निर्मला जैन, पृ.स —15

154 महादेवी साहित्य समग्र-3 स.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—16

155 महादेवी साहित्य समग्र-3 स ,—निर्मला जैन, पृ स —11

156 महादेवी साहित्य समग्र-3 स ,—निर्मला जैन, पृ स —11

157 महादेवी साहित्य समग्र-3 स ,—निर्मला जैन, पृ स —285

158 महादेवी साहित्य समग्र-3 स ,—निर्मला जैन, पृ स —286

159 महादेवी साहित्य समग्र-3 स ,—निर्मला जैन, पृ स —121

160 महादेवी साहित्य समग्र-3 स ,—निर्मला जैन, पृ.स —124

161 महादेवी साहित्य समग्र-3 स ,—निर्मला जैन, पृ स —126

162 महादेवी साहित्य समग्र-3 स ,—निर्मला जैन, पृ स —430

163 महादेवी साहित्य समग्र-3 स ,—निर्मला जैन, पृ स —433

164 क्षणदा, महादेवी वर्मा, पृ स —68

165 क्षणदा, महादेवी वर्मा, पृ स —71

166 क्षणदा, महादेवी वर्मा, पृ स —76

167 महादेवी साहित्य समग्र-3 स , निर्मला जैन, पृ स —554

168 महादेवी साहित्य समग्र-3 स , निर्मला जैन, पृ स —555

169 महादेवी साहित्य समग्र-3 स , निर्मला जैन, पृ स —72

170 महादेवी साहित्य समग्र-3 स , निर्मला जैन, पृ स —190

171 पथ के साथी, 'दो शब्द' महादेवी वर्मा

172 पथ के साथी, 'दो शब्द' महादेवी वर्मा, पृ स —9

173 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —13

174 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —13

175 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —15

176 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —17

177 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं —21

178 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —22

179 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —23

180 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.स —24

181 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —32

182 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —34

183 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —35

184 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —38

185 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —39

186 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —41

187 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —43

188 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —45

189 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —47

190 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —50

191 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —52

192 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —53

193 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —57

194 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —58

195 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —59

196 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —67

197 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —69

198. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स.—71

199. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —73

200 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ सं.—76

201 पथ के साथी,महादेवी वर्मा, पृ स —77

202 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —76

203 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, 'दो शब्द' से उद्धृत

204 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —28

205 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —39

206 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —38

207 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —45-46

208 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —71

209 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —33

210 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —29

211 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —26

212 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —10

213 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —22

214 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —21

215 पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ स —41

216 मेरा परिवार 'उच्छ्वास', महादेवी वर्मा, पृ स —6

217 मेरा परिवार 'आत्मिका' महादेवी वर्मा, पृ सं —18

218 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —27

219 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —40

220 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —40

221 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —41

222 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —50

223 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ सं —47

224 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —61

225 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —61

226 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —70

227 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —75

228 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —82

229 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —86

230 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —89

231 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —92

232 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —93

233 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —93

234 मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ स —99

235 मेरा परिवार, 'उच्छवास' महादेवी वर्मा, पृ स —9

236 महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ, स-देवदत्त शास्त्री, पृ स —230

237 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —52

238 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —60

239 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध,महादेवी वर्मा, पृ स —58

240 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —47

241 उत्तर प्रदेश, 'महादेवी वर्मा अक' सितम्बर—1988, पृ स —141

242 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —58-59

243 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —16

244 महादेवी, स -इन्द्रनाथ मदान, पृ स —228

245. महादेवी साहित्य समग्र-3, स. निर्मला जैन, पृ स —119

246 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ सं —11

247 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —15

248 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध,महादेवी वर्मा, पृ स —43

249 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —61

250 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —53

251 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —55

252 वीणा, जुलाई 1942 ले प्रो अशोक, एम ए पृ स —816

253 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —38

254 पथ के साथी, महादेवी वर्मा पृ स —34

255 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध,महादेवी वर्मा, पृ स —113

256 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध,महादेवी वर्मा, पृ स —37

257 रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ स —5

258 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा,पृ स —13

259 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —84

260 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —55

261 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ स —43

262 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स.—71

263 महादेवी, स इन्द्रनाथ मदान, पृ स —200

264 वीणा, जुलाई 1942 पृ स —819

265 साहित्य सन्देश, नवम्बर-1966, डा प्रेमलता कुमारी पृ स —419

266 शृखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ स —46

267 साहित्य सन्देश, फरवरी-1955, आनन्द माधव मिश्र, पृ स —305

268 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —51

269 साहित्य सन्देश, फरवरी-1955, आनन्द माधव मिश्र, पृ स —305

270 साहित्य सन्देश, फरवरी-1955, आनन्द माधव मिश्र, पृ स —305

271 साहित्य सन्देश, अप्रैल-1963, ओकार राही, पृ स —407

272 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —72

273 अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ स —72

274 वीणा, जुलाई 1942, प्रो अशोक, पृ स —818-819

275 आलोचना, जुलाई-सितम्बर 1973, रेखा अवस्थी, पृ स —96

276 आलोचना, जुलाई-सितम्बर 1973, रेखा अवस्थी, पृ स —96

277 आलोचना, जुलाई-सितम्बर 1973, रेखा अवस्थी, पृ स —96

278 आलोचना, जुलाई-सितम्बर 1973, रेखा अवस्थी, पृ स —96

279 महोदवी वर्मा, काव्य कला और जीवन दर्शन, शचीरानी गुर्टू पृ स —122

280 महादेवी, स परमानन्द श्रीवास्तव, पृ स —182

281 विशाल भारत, अप्रैल 1944, नगेन्द्र पृ स —261

282 विशाल भारत, अप्रैल 1944, नगेन्द्र पृ स —262

283 विचार और अनुभूति, डा नगेन्द्र पृ स —56-57

284 विशाल भारत, अप्रैल 1944, नगेन्द्र पृ स —262

* * *

उपसंहार

महादेवी वर्मा का साहित्य लेखन मे प्रवेश स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे होता है। इसी समय गद्य लेखन मे प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, यशपाल जैसे मूर्धन्य कथाकार जीवन की छोटी से छोटी समस्याओ से लेकर राष्ट्रीय स्तर की समस्याओ को अपनी रचनाओ का विषय बना रहे थे, वही दूसरी ओर काव्य के क्षेत्र में प्रसाद, निराला और पन्त जैसे कवि छायावादी काव्य प्रवृत्तियो को उसके शीर्ष तक पहुँचा चुके थे। महादेवी इसी परम्परा की अगली कड़ी के रूप मे साहित्य में प्रवेश करती ह। इस समय साहित्य मे जहाँ एक ओर समष्टि की चिन्ता से लेखक जूझ रहे थे, वही दूसरी ओर वैयक्तिक सुख-दुख की पीड़ा भी कवियो की अभिव्यक्ति का आधार बन रही थी। यह युग छायावाद का युग था, जिसे अपने अस्तित्व-स्थापन के लिए आलोचना की कठिन परीक्षा से गुजरना पड़ रहा था।

यद्यपि महादेवी के काव्यक्षेत्र में प्रवेश तक छायावाद पूर्णतया प्रतिष्ठापित तो हो चुका था, लेकिन छायावाद की निरन्तर की जा रही आलोचना अब छायावाद से हटकर उसके प्रमुख कवियों को अपने घेरे मे ले रही थी और यही कारण है कि महादेवी की प्रथम काव्यरचना 'नीहार' के साथ ही उनकी आलोचना भी शुरू हो जाती है, जो उनकी अतिम काव्यरचना 'दीपशिखा' तक चलती रही। आज हम महादेवी के आलोचको के दो वर्ग देखते हैं-एक वर्ग उनके काव्य मे छायावादी प्रवृत्तियो का पूर्ण परिपाक मानता है और दूसरा वर्ग उनके काव्य को छायावादी प्रवृत्तियों से शून्य मानता है लेकिन अब यह तो निश्चित हो चुका है कि महादेवी की कविता पूरी तरह से छायावादी कविता है। 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक उनमे काव्यानुभूतियों का प्रौढ से प्रौढ़तम विकास देखा जा सकता है।

महादेवी की कविता पर सबसे बड़ा आरोप एकरसता का लगाया गया है और कहा गया है कि उसमे वैविध्य नही है, बस एक जैसी भावभूमि ही सभी रचनाओं में मिलती है। अन्तर है तो सिर्फ इतना कि किसी मे अनुभूति का तत्व प्रबल हो जाता है और किसी में चिन्तन का तत्त्व हावी हो जाता है। हम यदि इस दृष्टि से उन रचनाओं की विषयवस्तु का विवेचन करें तो निश्चय ही उसमें एकरसता है लेकिन एक ही अनुभूति को इतनी गहराई और व्यापकता से व्यक्त किया गया है कि विषय की एकरसता की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। इसी प्रकार महादेवी ने जहाँ आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति लौकिक रूपकों के माध्यम से की है, वहाँ भी आलोचकों ने इस अभिव्यक्ति के बीज को दमित कामवासना और अतृप्त इच्छाओं में ढूँढा है। लेकिन जो कवयित्री बचपन से ही बौद्ध भिक्षुणी बनने का स्वप्न देख रही हो और एक स्थान

पर वे स्वय इस बात की पुष्टि भी करती हैं,- 'आप आज से साठ वर्ष पहले की कल्पना कीजिए, कि जब एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की लड़की कहती है कि वह गृहस्थ नही होगी, वह भिक्षु होगी। कल्पना कीजिए, उसने कितना कष्ट, कितना सघर्ष झेला होगा, लेकिन सघर्ष ने मुझे कभी पराजित नहीं किया।'' अत उनके काव्य की ऐसी आलोचना उचित नहीं है। फिर फ्रायडीय दृष्टि से कविता की आलोचना हमारे यहाँ की अवधारणा नही है। यह तो पश्चिम से उधार ले ली गई अवधारणा है, जिसे आज पश्चिम मे ही साहित्यजगत से बहिष्कृत किया जा चुका है। महादेवी की कविता प्रारम्भ से ही अपने रहस्यमयी स्वरूप के कारण आलोचको के मध्य विवाद का विषय बनी रही है। उनके आलोचक और प्रशसक दोनो ही यह नहीं समझ पा रहे थे कि आध्यात्मिक सस्पर्श से युक्त होते हुए भी कोई कविता अपने रूढ़ अर्थ मे रहस्यवादी नहीं है। महादेवी भी अन्य छायावादी कवियो के समान व्यक्तिगत सुख-दुख के सस्पर्श से अपनी कविता को प्राणशक्ति देती हैं। कविता के सम्बन्ध में उनका मानना था कि, ''सभवत अतर्जगत मे बहुत कुछ ऐसा रहस्यमय है, जिसे हम कविता में व्यक्त करे तो हमको कुछ बल मिलता है।'' लेकिन यह रहस्यमय अतर्जगत, जिसे महादेवी कविता में व्यक्त करती हैं, प्रतीक और सकेत के माध्यम से अभिव्यक्त पाता है और इस कारण वह निगूढ ही बना रहता है। महादेवी के व्याख्याकार उनकी कविता मे व्यक्त सर्वनाम और अस्पष्ट विम्बों के द्वारा असीम और ससीम के बीच होने वाली आँखमिचौनी की समानता मध्ययुगीन रहस्यवाद से करते हैं और महादेवी को उन कवियो की कोटि में बिठा देते हैं। फिर उन्हे आधुनिक युग की मीरा के रूप मे स्थापित किया जाने लगता है। यद्यपि विद्रोह और समकालीन परिस्थितियों से सघर्ष की दृष्टि से तो महादेवी और मीरा को समान स्तर पर रखा जा सकता है। मीरा मध्यकालीन समाज में लोकलाज के समस्त बधनों को तोड़कर साधु-सतों के बीच जा बैठती है। राजघराने से सम्बद्ध होने के कारण तथा राजपरिवार की मर्यादा की बेड़ियों को तोड़ने के कारण मीरा द्वारा किया गया विद्रोह अधिक कठिन था। महादेवी भी आधुनिक युग की महिला थी और इस युग में भी स्त्रियों को वेदाध्ययन और सस्कृत पढने का अधिकार प्राप्त नहीं था। महादेवी वेद और सस्कृत पढ़ने की जिद करती हैं। वे स्वय स्वीकार करती हैं कि -''स्त्रियों का वेदाध्ययन तो व्यर्थ था हमारे यहाँ। कोई पडित सुनते ही अप्रसन्न हो जाता था।'' लेकिन महादेवी उन रूढियों के विरुद्ध सघर्ष कर के वेदों का भी अध्ययन करती हैं और सस्कृत भी पढ़ती है, इसलिए विद्रोह और सघर्ष दोनों मे ही है। अन्तर दोनों में यह है कि मीरा जहाँ भक्ति में तन्मय होकर सुधबुध खो बैठती हैं, वही महादेवी मे भक्ति का तत्व तो है, लेकिन सुधबुध खो देने की स्थिति वहाँ निश्चय ही नहीं है। एक सचेष्टता है अपने साहित्य के प्रति, अपने समाज के प्रति, नारी वर्ग के प्रति और अपनी संस्कृति के प्रति और इसे हम युग की बदली हुई मान्यताओं के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। दूसरी ओर अधिकांश आलोचकों

द्वारा यह कहा जाना कि महादेवी मे अनुभूति की वह गहनता नही जो मीरा मे मिलती है तथा वे महादेवी के गीतों को कलात्मक गीतों की कोटि में रख देते हैं। उनका मानना है कि चूँकि महादेवी अपने गीतों को सधे हुए शिल्पी के आश्चर्यचकित कर देने वाले कौशल के साथ अभिव्यक्त करती हैं अत वहाँ कला ही प्रधान हो गई है। लेकिन इस ओर हमारा ध्यान नहीं जाता कि मीरा के गीतों मे कलात्मक तत्व गौण हैं और रागात्मक तत्व प्रमुख है इसलिए जब भी मीरा के गीतों की चर्चा होती है तो उसकी अनुभूति की ही बात की जाती है और महादेवी के गीतो के सम्बन्ध में स्थिति भिन्न है, वहाँ अनुभूति के साथ-साथ कला भी प्रधान है। अत कलात्मक तत्वों के प्रमुख होने के कारण उनके गीतो के रागात्मक तत्व के प्रति सदेह व्यक्त करना निश्चय ही उचित नही है। इस प्रकार आलोचकों द्वारा महादेवी को आधुनिक मीरा सिद्ध करने की जो कोशिश की गई, उस अत्यधिक प्रशसा ने उनकी काव्यानुभूति की बनावट को समझने में सहायता तो नहीं की वरन् इसके स्थान पर उसकी विश्वसनीयता के बारे मे सदेह अधिक पैदा कर दिया।

अपने जीवन मे धार्मिक आडम्बरो को पूर्णतया नकारने वाली महादेवी अपनी कविता के विषय मे एक ओर तो यह कहती हैं-"क्या पूजा क्या अर्चन रे।" और दूसरी ओर कविता के सम्बन्ध में उनकी धारणा है कि- कविता एक प्रकार से मेरे लिए आत्मा की अभिव्यक्ति भी है और पूजा अद्यनि भी।" महादेवी की कविता इसी आत्मा की अभिव्यक्ति है और सामान्य मानव के दुख को वे अपने काव्य विषय के रूप मे चुनती हैं। वे लिखती हैं कि- मनुष्य मेरे लिए, मेरे निकट निरन्तर बड़ा है, लेकिन इसलिए बड़ा है कि कोई और भी उसके भीतर है।" यह 'कोई और' ही उनकी कविता में बार-बार अभिव्यक्त होता है। गद्य को वे स्वय ही काव्य से सर्वथा अलग स्वीकार करती हैं। वे लिखती हैं कि-हाँ! गद्य में कुछ और कहती हूँ, पद्य में वह न कहूँ, यानी वही बात कहूँ जो गद्य मे कहती हूँ तो मुझे बल नही मिलेगा। मेरा अन्तर्जगत दूसरे प्रकार की अभिव्यक्ति चाहता है।" महादेवी के इस प्रकार के कथन के प्रति प्राय आलोचकों में विवाद की स्थिति देखी गई है। महादेवी द्वारा स्वय अपने काव्य और गद्य के मध्य वैचारिक अन्तर को स्वीकार करने को लेकर निरन्तर की जा रही उनकी आलोचना को बल मिलता है।

महादेवी के काव्य मे अन्तर्व्याप्त पीड़ा को लेकर आलोचकों ने अनेक प्रश्न उठाए हैं कि पीड़ा का ऐसा प्रसार उनके काव्य में सर्वत्र क्यो दिखाई पड़ता है। महादेवी इसका कारण अपने परिवार द्वारा प्राप्त अतिशय प्यार दुलार को मानती है जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप ही उन्हें पीड़ा मधुर लगने लगी है। वे 'रश्मि' की भूमिका मे अपने दुखवाद की अवधारणा पर भी पर्याप्त प्रकाश डालती हैं तथा आलोचकों द्वारा लगाई जा रही अटकलों को शान्त करने का प्रयास करती हैं। वे लिखती हैं कि -"दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा

काव्य है जो सारे ससार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असख्य सुख हमे चाहे मनुष्यता की पहली सीढी तक भी न पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नही गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता हे, परन्तु दुख सबको बाँटकर-विश्वजीवन मे अपने जीवन को, विश्ववेदना मे अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।

मुझे दुख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के सवेदनशील हृदय को सारे ससार से एक अविच्छिन्न बन्धन मे बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।'' और वे सिर्फ भूमिका मे ही नहीं वरन् कविता में भी कह उठती है कि -''कहता जग दुख को प्यार न कर।' आलोचकों द्वारा उनकी अनुभूति को लेकर जो प्रश्नचिह्न लगाए जाते हैं तो वे कह उठती है कि -

''जाने क्यो कहता है कोई
मैं तम की उलझन मे खोई।''

इसी प्रकार महादेवी के काव्य में अव्यक्त, अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर रहस्यात्मकता का आवरण जो चारों ओर तना हुआ सा दिखाई देता है उसमे भी आलोचक विद्वान अतृप्त कामवासना और दमित कुण्ठा के दर्शन करते हैं लेकिन महादेवी से युगो पीछे कबीर जैसे विध्वसक कवि के काव्य मे भी उसी अज्ञात, अव्यक्त प्रिय को सम्बोधित करके लिखे गए पद मिलते हैं। यद्यपि दोनो में थोड़ा अन्तर है, कबीर की रहस्यात्मकता साधनात्मक है और महादेवी की भावात्मक। लेकिन कबीर के पदों में किसी भी आलोचक ने अतृप्त कामवासना (पैराग्राफी) और दमित कुण्ठा का आरोपण नहीं किया।

महादेवी के काव्य मे वैयक्तिक भावों की प्रधानता है परन्तु सामाजिक मुक्ति की आकाक्षा भी अत्यत प्रबल रही है, जिसकी आलोचक वर्ग द्वारा प्राय उपेक्षा कर दी जाती है। महादेवी की कविता में 'मैं' और 'मेरा' का जो सन्दर्भ बार-बार अभिव्यजित होता है जैसे 'मैं' नीरभरी दुख की बदली' उसे व्यक्तिगत निष्ठा और समष्टिगत निष्ठा से जोड़कर देखने की जरूरत है, तभी निश्चित परिणाम उभरकर हमारे सामने आएगे और इसी चिन्तन प्रक्रिया के चलते महादेवी के आलोचको की दो कतारें हमें सामने खड़ी मिलती हैं- एक तो वह है जो उनकी व्यक्तिगत करुणा दुख और वेदना में समष्टि का आभास पाता है और दूसरा वह जो उनकी व्यक्तिगत, विरह, वेदना, कातरता आदि को नितात निजी एकान्त क्षणों की अनुभूति मानता है, जहाँ समष्टि का कोई हस्तक्षेप नहीं है।

1942 में 'दीपशिखा' के प्रकाशन के पश्चात महादेवी काव्य के क्षेत्र मे पूर्ण विराम लगा देती हैं। परमानन्द श्रीवास्तव भी अपने एक व्याख्यान मे स्वीकार करते हैं कि— "1942 में महादेवी ने दीपशिखा की लम्बी भूमिका लिखी और अपने कविकर्म का आदर्शीकरण करके जैसे वे काव्य से विदा ले रही हो।" यद्यपि महादेवी के अन्य समानधर्मा कवि प्रगतिवाद से प्रभावित होकर उस ओर उन्मुख हो गए लेकिन महादेवी इस विचारधारा को स्वीकार नहीं कर पाई। वे लिखती भी है कि- 'मुझसे जहाँ ठहराया गया, वहाँ मैं ठहरी। मैंने प्रयत्न भी नहीं किया कि लोग मुझको प्रगतिशील माने या न माने, यह चिता मैंने कभी नहीं की।" सम्भवत महादेवी को प्रगतिवाद के अन्तर्गत यथार्थ का स्थूल वर्णन स्वीकार न हुआ और वे गद्य क्षेत्र की ओर उन्मुख हो जाती हैं। जिस प्रगतिवाद की उनकी कविता में बार-बार उपेक्षा की गई है, वही प्रगतिशील तत्व गद्य के विविध आयामों की रचना के आधार बनते हैं। हमें उनकी गद्यरचनाओं मे यथार्थ के विविध रूप एक ही स्थान पर मिल जाते है तथा ये तत्व निरन्तर प्रगतिशीलता का ढ़िढोरा पीटने वाले लेखको की रचनाओं मे भी नहीं मिलते। प्रगतिवाद का प्रतिनिधित्व करने वाले रामा, भक्तिन, सबिया, रधिया, बदल, अलोपी आदि सस्मरणात्मक रेखाचित्र उस समय लिखे गए जब प्रगतिशील लेखन की शुरुआत भी नही हुई थी। महादेवी इन पात्रों का चित्रण जितनी आत्मीयता, लगाव और सलग्नता से करती है, उनको पढ़ने वाला हर पाठक भी उन पात्रों के साथ वैसी ही आत्मीयता और लगाव का अनुभव करता है। बस इसके लिए जिस विशेषता का उसके व्यक्तित्व में समावेश होना आवश्यक है, वह सवेदनशीलता का गुण है। लेकिन इन सस्मरणात्मक रेखाचित्रों मे एक कमी अवश्य खटकती है। वहाँ महादेवी इन पात्रो की समस्याओं को केवल उजागर मात्र कर देती हैं। वे हमें किसी समस्या का समाधान करती हुई अथवा उस समाधान की ओर सकेत करती हुई नही मिलती। क्या कारण है कि महादेवी उन समस्याओ की ओर सकेत मात्र करती है? उन्हे हल करने का प्रयास नही करती। यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है।

महादेवी का निबन्ध लेखन उनके गहन अध्ययन, चिन्तन एव मनन का परिणाम है। वे गवेषणात्मक दृष्टि से अपने विषय का पूर्ण ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत करती है। अपने निबन्धों के माध्यम से छायावाद को लेकर लगाई जा रही विभिन्न अटकलों को शान्त करने का प्रयास करती हैं और निश्चय ही, इसमें महादेवी को पूरी सफलता मिली है। 'मेरा परिवार' की रचना द्वारा महादेवी मानवेतर प्राणियों के प्रति अपनी सवेदना और सहानुभूति व्यक्त करती है। अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के द्वारा वे उनकी छोटी-छोटी बातों पर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। निश्चय ही परिवार की यह अवधारणा ही मानवता की सच्ची अवधारणा है और सृष्टि के प्रति गहरा एकात्म भाव प्रदर्शित करती हैं।

हम इक्कीसवी सदी को स्त्री मुक्ति के दशक के रूप में मना रहे हैं, कई कार्यक्रम मे भाग ले रहे हैं सेमिनार आयोजित करवा रहे हैं, लेकिन आज जब हम महादेवी की 1942 में प्रकाशित रचना 'शृखला की कड़ियाँ' की विषयवस्तु का अध्ययन करते हैं तो उसमें व्यक्त स्त्री के सम्बन्ध मे महादेवी की बेचैनी और चिन्तन हमे गहरे आश्चर्य में डाल देती है। स्त्री को लेकर जिस स्वाधीनता की बात हम आज कर रहे हैं वह महादेवी में 30 के दशक में विद्यमान थी। 'शृखला की कड़ियाँ' एक स्त्री द्वारा स्त्री को नये दृष्टिकोण से देखने का सफल प्रयास है। आज इस रचना की प्रासगिकता और भी बढ़ गई है। हम स्त्री की सामाजिक-आर्थिक स्थिति मे भले ही सुधार के लक्षण देख रहे हों लेकिन उसके तनाव, उसकी जटिलताये, घर और बाहर दोनों मोर्चों मे सामजस्य बिठाती हुई स्त्री के अपने भय और भी विकराल रूप धारण कर चुके हैं। गगन गिल अपने एक व्याख्यान मे स्वीकार करती है कि- "महादेवी ने अपने जीवनकाल मे, अपनी रचनायात्रा में एक स्त्री की सामाजिक स्थिति के कितने ही छिलके उतारे हों, बदला अब भी कुछ नहीं है, बल्कि अनेक अर्थों मे हम अपनी रूढियों में, अपनी अपेक्षाओ और मान्यताओ मे पीछे ही जाते गए हैं। हमारी खिड़कियाँ खुलने की बजाय और जाम ही हुई हैं।"

महादेवी को समसामयिक परिस्थितियों से जोड़ने वाले ग्रन्थ 'बगदर्शन' और 'हिमालय' है जिनके द्वारा वे देश मे आए हुए सकट के क्षणों में देश के साथ खड़ी हुई दिखाई देती हैं फिर वे अनुवाद कार्य में सलग्न होती है और 'सप्तपर्णा' में सस्कृत साहित्य के कुछ मधुर अशों का हिन्दी में अनुवाद करती है इस प्रकार वे सस्कृत न जानने वाले हिन्दी भाषी को समृद्ध सस्कृत साहित्य से परिचय करवाती है। महादेवी सपादन कार्य से भी जुडी रहती है। सामाजिक क्षेत्र में भी वे सक्रिय रहती है, इस प्रकार वे अपने व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करती हैं। हम महादेवी के समग्र साहित्य में एक विचित्र स्थिति पाते हैं। महादेवी ने जिस विधा को अपनाया, उस विधा को छोड़ने के बाद वह उस विधा में वापस नहीं आती। उन्होंने काव्य से शुरुआत की और 'दीपशिखा' के बाद सस्मरणात्मक रेखाचित्र लिखे, फिर शृखला की कड़ियाँ जैसा निबन्ध आया, आलोचनात्मक और ललित निबन्ध भी लिखे, अनुवाद कार्य किया लेकिन काव्य से विमुख हो जाने पर वे पुन काव्य सृजन की ओर प्रवृत्त नहीं होती। सस्मरणात्मक रेखाचित्र लिखने के बाद इस तरह की रचना उनके साहित्य में दूसरी नहीं मिलती, यद्यपि 'पथ के साथी' की रचना करती है लेकिन विषयभूमि सर्वथा भिन्न है। ऐसा लगता है कि मानो वे जिस विधा को अपनाती हैं, उसमें लिखने के बाद उस विधा पर विराम लगा देती हैं कि अब वापस यहाँ नहीं आना और आगे बढ़ जाती हैं।

अन्त मे, महादेवी के समग्र साहित्य के इस विश्लेषण के पश्चात एक प्रश्न अवश्य मन में कौंधता है कि क्या हम हमेशा महादेवी को आलोचना के उन्हीं चिरपरिचित खाँचों में बिठाते रहेंगे और इसी परम्परा

प्रचलित आधार पर उनके साहित्य का मूल्याकन करते रहेंगे। निश्चय ही, आज महादेवी के समग्र साहित्य के सम्बन्ध मे वाद विवाद से ऊपर उठने की आवश्यकता है तथा एक नये प्रगतिशील दृष्टिकोण से उनके साहित्य को देखने की आवश्यकता है जिससे समाज को उनके साहित्य द्वारा जो जीवनदिशा प्राप्त हुई है, उसका सम्यक् अनुशीलन हम साहित्यिक सन्दर्भों मे कर सकें। महादेवी के काव्य पर लगाए गए अनेक आरोप क्या आलोचको की पुरुष प्रधान प्रवृत्ति का परिचय नहीं देते। जो समाज स्त्रियों को वेदाध्ययन के अधिकार से भी वचित रखना चाहता है, कहीं यह सत्य वास्तविकता तो नहीं कि महादेवी की इतनी कटु आलोचना उसी वर्ग द्वारा निर्धारित प्रतिमानों के आधार पर की गई हो। अन्यथा क्या कारण है कि समान भावभूमि को स्वीकार करने पर भी अन्य छायावादी कवि जैसे प्रसाद, पन्त, निराला की कविताएँ उस तरह से आलोचना के घेरे में नहीं आती जिस तरह से महादेवी की कविताएँ आती है। क्या महादेवी के काव्य पर आलोचको द्वारा लगाए गए अनेक आरोपों पर उनका नारी व्यक्तित्व हावी हो गया है। यदि हम तत्कालीन समाज में व्याप्त सक्रमण की दशा और युगीन परिवेश को दृष्टिगत रखे तो महादेवी के काव्य की भावभूमि को और भी अधिक गहराई के साथ समझ सकते हैं। यदि तत्कालीन आलोचकों द्वारा महादेवी के नारी व्यक्तित्व को परे रखकर उनके काव्य का मूल्याकन करने मे कुछ उदारता का परिचय दिया जाता तो उनकी काव्यगत प्रवृत्तियों के अनेक बद आयाम खुल जाते। प्रगतिवाद का जोर होने पर और सभी प्रमुख कवियो द्वारा प्रगतिवाद की ओर अग्रसर हो जाने पर भी महादेवी ने काव्य मे छायावाद का दामन नही छोडा और उनका काव्य छायावाद से प्रारम्भ होकर छायावाद में ही समाप्त हो जाता है। 'दीपशिखा' के पश्चात जब महादेवी गद्य क्षेत्र मे आती हैं तो उनके गद्य मे काव्य से सर्वथा भिन्न भावभूमि को देखकर हम आश्चर्य मे पड़ जाते हैं कि काव्य में बिल्कुल एकाकी रहने वाली महादेवी गद्य साहित्य में आकर पूर्णतया सामाजिक और यथार्थोन्मुखी कैसे हो जाती है। केवल भावभूमि के क्षेत्र में ही नहीं वरन् अभिव्यजना शिल्प के क्षेत्र में भी नई भाषा और शिल्प को स्वीकार करके चलती हैं। लेकिन यदि हम उनकी कविताओं का अध्ययन पूर्वाग्रह से मुक्त होकर करे तो उनकी 'जाग तुझको दूर जाना'', 'पथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला', 'तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?' कह दे माँ अब क्या देखूँ, रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ', 'कीर का प्रिय आज पिजर खोल दो' जैसी पक्तियों में गद्य में विद्यमान सामाजिकता और यथार्थता के सृजनबीज अकुरित होना प्रारम्भ हो चुके थे।

महादेवी के काव्य-रचना-ससार और गद्य रचना ससार में व्याप्त इन तमाम अतर्विरोधों के साथ ही उनको पढ़ने, समझने और उन पर किसी भी प्रकार की सवाद योजना की आवश्यकता है। निश्चय ही, परमानन्द श्रीवास्तव का यह कथन पूरे सन्दर्भ में अत्यन्त सार्थक है- "परिचित और ज्ञात महादेवी में एक

दूसरी कम ज्ञात महादेवी को खोजकर पुन पढ़ने की जरूरत है। उन्होंने अपनी कविताओं मे, कहानियो में, कथात्मक विवरणों मे, रेखाचित्रों मे, गद्य के रूप प्रकार में, अपने व्याख्यानों में, अपने सामाजिक कर्म में किस तरह अपने एक व्यक्तित्व को विकसित करने की कोशिश की और कुछ न कुछ मोर्चे तो ऐसे है, जिन पर महादेवी की सक्रियता अन्त तक बनी रही, वह अपने आप मे महत्वपूर्ण है। ऐसी एक लेखिका को उसे समग्र रूप मे पढने के लिए उसके अपने अतर्विराधों को भी शायद देखने की जरूरत बनी रहती है।

* * *

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

महादेवी साहित्यः

काव्य कृतियॉ-

1 **नीहार** (1930), साहित्यभवन प्रा0 लिमिटेड, इलाहाबाद

2 **रश्मि** (1932), साहित्यभवन प्रा0 लिमिटेड, इलाहाबाद

3 **नीरजा** (1934) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

4 **सांध्यगीत** (1936) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

5 **दीपशिखा** (1942) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

6 **बंग दर्शन** (1943-44) प्रयाग महिला विद्यापीठ की ओर से

7 **हिमालय** (1962), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

8 **आधुनिक कविः** महादेवी वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

9 **सन्धिनी** (1964), महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

गद्य रचनाएँ

10. **अतीत के चलचित्र** (1941), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

11. **स्मृति की रेखाएँ**, (1943) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

12. **श्रृंखला की कड़ियाँ** (1942), भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

13. **पथ के साथी** (1956), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

14. **मेरा परिवार** (1971), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

15. **साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध**, चयन-गंगा प्रसाद पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (1960)

16. **संकल्पिता**, सेतु प्रकाशन, झाँसी (1969)

17. **क्षणदा**, प्रयाग भारती, इलाहाबाद (1956)

18. **महादेवी साहित्य समग्र**- 1,2,3, सपादन -निर्मला जैन, (प्रथम सस्करण-1969), सेतु प्रकाशन, झाँसी

सहायक ग्रन्थ-

1 **महादेवी सस्मरण ग्रन्थ** (स0) सुमित्रानन्दन पन्त शान्ति जोशी, लोकभारती प्रकाशन, (प्र0स0- 24 मार्च 1967 ई0)

2 **महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ**, (स0) देवदत्त शास्त्री, भारती परिषद प्रयाग

3 **उत्तर प्रदेश (दिसम्बर 1988), 'महादेवी वर्मा अक'**, सूचना एव जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

4 **महादेवी. चिंन्तन व कला, इन्द्रनाथ मदान**, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, (सस्करण-1973)

5 **महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय**, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (प्रथम सस्करण-1969)

6 **महादेवी वर्मा. काव्यकला और जीवन दर्शन**, (स0) शचीरानी गूर्टू आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, (सस्करण 1963)

7. **महादेवी, स0 परमानन्द श्रीवास्तव**, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (द्वितीय सस्करण-1997)

8. **महादेवी वर्मा, कुमार विमल**, पराग प्रकाशन, पटना (सस्करण-1962)

9. **महादेवी का काव्य सौष्ठव, कुमार विमल**, अनुपम प्रकाशन, (प्रथम सस्करण-1983)

10. **महादेवी. नया मूल्यांकन, गणपति चन्द्र गुप्त**, लोकभारती प्रकाशन, (द्वितीय सस्करण-1997)

11. **महादेवी का काव्यः एक विश्लेषण**, डा0 **दुर्गाशंकर मिश्र**, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, (प्रथम सस्करण-1979)

12. **महादेवी वर्मा साहित्यः कला, जीवनदर्शन, रामचन्द्र गुप्त**, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा (प्रथम सस्करण-1955)

13. **महादेवी वर्माः कवि और गद्यकार, डा0 लक्ष्मण दत्त** गौतम, कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली (प्रथम सस्करण- 1972)

14. **महादेवी की काव्यचेतना,** डा0 **राजेन्द्र मिश्र,** तक्षशिला प्रकाशन लखनऊ, (प्रथम सस्करण- 1979)

15. **महादेवी की काव्यसाधना, सत्यपाल चुघ,** विश्वभारती प्रेस पहाड़गज, नई दिल्ली।

16. **महादेवी की रहस्य साधना, विश्वम्भर मानव,** बनबटा मुरादाबाद (सस्करण-1944)

17. **महादेवी की रचना प्रक्रिया, कृष्णदत्त पालीवाल,** पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, (सस्करण- फरवरी 1971)

18. **महादेवी का काव्य वैभव** (स0) **रमेशचन्द्र गुप्त,** प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली (प्रथम सस्करण-1968)

19. **महादेवी. सृजन और शिल्प, रणजीत सिंह,** जयभारती प्रकाशन, मुट्ठीगज इलाहाबाद (प्रथम सस्करण-1997)

20. **महादेवी वर्मा के काव्य मे प्रतीक योजना, अरविन्द मोरे,** अनुभव प्रकाशन कानपुर, (सस्करण-1987)

21. **महादेवी का बिम्बबोध और प्रतीक सृजन,** डा0 **सन्तोष शर्मा,** आर्यबुक डिपो, करोलबाग नई दिल्ली (सस्करण-1985)

22. **महादेवी वर्मा और उनका आधुनिक कवि, सुरेश चन्द्र गुप्त,** हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली (प्रथम सस्करण-1957)

23. **महादेवी की कविताः संशय और समाधान, ब्रजलाल गोस्वामी**

24. **छायावाद और महादेवी, नन्द कुमार राय**

25. **कवयित्री महादेवी वर्मा, शोभनाथ यादव,** बम्बई, 19(

26. **महादेवी का काव्य-परिशीलन, भागीरथी दीक्षित**

27. **महादेवी का वेदना-भाव, जयकिशन प्रसाद**

28. **महादेवी. विचार और व्यक्तित्व, शिवचन्द्र नागर**

29. महादेवी की साहित्य साधना, सुरेश चन्द्र गुप्त

30. महादेवी और उनका काव्य, गगा प्रसाद पाण्डेय

31. महादेवी के काव्य में लालित्य विधान, ड0 मनोरमा शर्मा, मराठवाड़ा (1974)

32. गद्य लेखिका महादेवी, योगराज थानी, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली

33. महादेवी का संस्मरणात्मक गद्य, चरनसखी शर्मा, शोध -प्रबन्ध प्रकाशन दिल्ली।

34. महादेवी और उनकी गद्य रचनाएँ, माधवी राजगोपालन रजन प्रकाशन, आगरा (1968)

35. महादेवी का गद्य-एक मूल्यांकन , डा0 विजय प्रकाश उपाध्याय, रेणुका प्रकाशन, आगरा (जून 1988)

36. गद्यकार महादेवी, वीरेन्द्र कुमार बडसूवाला

37 छायावाद, नामवर सिह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1995)

38. छायावादः पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानन्दन पन्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

39. छायावाद, स0-उदयभानु सिह, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली

40 छायावाद के आधार स्तम्भ, गगा प्रसाद पाण्डेय, लिपि प्रकाशन, दिल्ली।

41. छायावादः एक पुनर्मूल्याकन, डा0 रवीन्द्र भ्रमर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1971)

42. छायावादी काव्य, डा0 कृष्णचन्द्र वर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (1972)

43. छायावाद की भाषा, डा0 रमेशचन्द्र गुप्त, प्रवीण प्रकाशन मेहरौली, दिल्ली (1984)

44. छायावाद की प्रासगिकता, रमेशचन्द्र शाह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

45. छायावादःउत्थान, पतन, पुनर्मूल्यांकन, डा0 देवराज, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ (1973)

46. छायावाद और प्रगतिवाद, देवेन्द्रनाथ शर्मा, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना।

47. छायावाद युग, शम्भूनाथ सिह, सरस्वती मन्दिर, बनारस (प्र0स0-1952)

48. छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य (स0) धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, राजप्रकाशन पटना (1955)

49. छायावादः विश्लेषण और मूल्याकन, दीनानाथ शरण नवयुग ग्रन्थकार, लखनऊ (प्र0स0-1958)

50. छायावाद की काव्यसाधना, प्रो0 श्रीपाल सिंह क्षेम, साहित्यग्रन्थमाला कार्यालय, बनारस।

51. छायावाद की सही परख-पहचान, सूर्यप्रसाद दीक्षित

52. छायावादः नया मूल्यांकन, नित्यानंद पटेल

53. छायावाद और रहस्यवाद, गंगा प्रसाद पाण्डेय, रामनारायण लाल पब्लिशर और बुकसेलर, इलाहाबाद (1941)

54. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (संवत-2040)

55. हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, (प्र0सं0-1952)

56. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद (संस्करण- 1991)

57. हिन्दी साहित्यकोश, भाग-1,2, सं0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी (प्र0सं0-आश्विन संवत् 2029)

58. हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, नन्द दुलारे बाजपेई, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (संस्करण- 1995)

59. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद (नवीन संस्करण- 1994)

60. आधुनिक कविता का मूल्यांकन, इन्द्रनाथ मदान, हिन्दी भवन, जालंधर (मार्च 1962)

61. आधुनिक साहित्य, नन्ददुलारे बाजपेई

62. आज का भारतीय साहित्य, अज्ञेय

63. आधुनिक कविः पन्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

64. चिन्तामणि-2 रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग (1939)

65. पल्लव, सुमित्रानन्दन पन्त, राजकमल प्रकाशन दिल्ली

66. परिमल, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

67. काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, जयशंकर प्रसाद, गीता प्रेस गोरखपुर।

68. राग-विराग (सं0) रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, (द्वितीय संस्करण-1979)

69. देखा-परखा, इलाचन्द्र जोशी, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली (प्रथम सस्करण-1957)

70. विचार और अनुभूति, नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, दिल्ली

71. विचार और विश्लेषण, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली (1955)

72. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, गोविन्द त्रिगुणायत, भारतीय साहित्य मन्दिर दिल्ली (1959)

73. साहित्यचिन्ता, देवराज

74. काव्यधारा (स0) शिवदान सिंह चौहान, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली (1955)

75. साहित्यिकी - शान्तिप्रिय द्विवेदी

76. सामयिकी, शान्तिप्रिय द्विवेदी

77. स्मृतियॉ और कृतियाँ, शान्ति प्रिय द्विवेदी, चौखम्भा विद्यापीठ वाराणसी (1966)

78. जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धात, लक्ष्मीनारायण सुधांसु

79. प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, प्रस्तुतकर्ता-वाचस्पति पाठक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

80. निराला की कविताएँ और काव्य भाषा, रेखा खरे

पत्र पत्रिकाएँ -

1 चॉद

2 सरस्वती

3 सुधा

4 माधुरी

5 विशाल भारत

6 साहित्य सन्देश

7 वीणा

8 रूपाभ

9 अवन्तिका

10 आजकल

11 आलोचना